अगस्त, 2014

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

वक्फ अधिनियम, 1995 (1995 का 43) – धारा 6 और 7 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 9] – वक्फ संपत्ति से बेदखली के लिए वाद – वक्फ संपत्ति से संबंधित अभिधारी के विरुद्ध बेदखली के लिए वाद अनन्य रूप से सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय है और अधिनियम में अधिकरण द्वारा बेदखली के विवाद का अवधारण करने के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है।

फसीला एम. बनाम मुन्नेरुल इस्लाम मदरसा
समिति और एक अन्य 194

संसद् के अधिनियम

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 का हिन्दी में
प्राधिकृत पाठ (1) – (19)

पृष्ठ संख्या 155 – 311

[2014] 3 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह, सचिव, विधायी विभाग	श्री लालजी प्रसाद, सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.
श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग	श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल, सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.
डा. बी. एन. मणि, सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार, विधि मंत्रालय	श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय, प्रधान संपादक
प्रो. डा. वैभव गोयल, सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ विधि विभाग	श्री महमूद अली खां, संपादक
डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय	श्री जुगल किशोर, संपादक
डा. ऋषिपाल सिंह, सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड	डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय, संपादक

सहायक संपादक	: सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान
उप-संपादक	: सर्वश्री दयाल चन्द गोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास
मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है। इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है। उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है। तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

**विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि
पाठ्य पुस्तकों की
सूची**

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन - ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

**विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001**

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अगस्त, 2014 [पृष्ठ संख्या 155 – 311]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
इंदू एयरवेज प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और अन्य बनाम मगनम एविएशन प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य	300
ऐलायस वुबेन और एक अन्य बनाम योगेश मेहरा और अन्य	239
खीम सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य	284
चेन्नई मैट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड और अन्य बनाम टी. टी. मुरली बाबू	170
धरम देव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	206
फसीला एम. बनाम मुन्नेरुल इस्लाम मदरसा समिति और एक अन्य	194
स्टेनज़ेन टोयोटेट्सु इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) बनाम गिरीश वी. और अन्य	155
<u>संसद् के अधिनियम</u>	
ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (19)

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14)

– अनुसूची 32, मद 6 – दांडिक और अनुशासनिक कार्यवाहियों का एक-साथ चलना – अनुशासनिक कार्यवाहियों पर रोक – यह सुस्थापित है कि अनुशासनिक कार्यवाहियों और दांडिक विचारण के एक साथ चलने पर कोई विधिक वर्जन नहीं है तथापि, अनुशासनिक कार्यवाहियों पर रोक तभी उचित होगी यदि दांडिक आरोप गंभीर है और अनुशासनिक कार्यवाहियों के जारी रहने के कारण दांडिक विचारण में प्रतिरक्षा-पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ।

स्टेनज़ेन टोयोटेट्सु इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) बनाम गिरीश वी. और अन्य

155

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 और 201 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27] – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – अपीलार्थी द्वारा मृतका की हत्या किया जाना और अपने ही घर में उसका शव छिपाना – अपराध में फंसाने वाली प्रत्येक परिस्थिति विश्वसनीय और ठोस साक्ष्य से साबित होना – परिस्थितियों से घटनाओं की ऐसी शृंखला बनना, जिससे केवल अभियुक्त के दोषी होने का निष्कर्ष निकलता है – अभियुक्त को पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया गया ।

धरम देव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

206

– धारा 302 – हत्या – बर्बरतापूर्ण अपराध किए जाने का साक्ष्य न होना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का न होना – यदि हत्या के मामले में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि अपराध बर्बरतापूर्ण किया गया है और उसका कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी भी नहीं है, तब हत्या का अपराध विरल

से विरलतम मामले की कोटि में नहीं आएगा निचले न्यायालयों द्वारा दिए गए मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया गया ।

धरम देव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

206

— धारा 302 — हत्या — पारिस्थितिक साक्ष्य — अभियुक्त का अपनी पत्नी (मृतका) के चरित्र पर संदेह होने के कारण उनके बीच अक्सर झगड़ा होना, घटना की रात्रि में अभियुक्त का अपने मकान से गायब हो जाना और सुबह अपने मकान पर वापस आने पर गायब रहने का स्पष्टीकरण देने में असफल रहने का उसका आचरण, उसके बताने पर मकान के अंदर से रक्तरंजित कुल्हाड़ी बरामद होना, अभियुक्त और मृतका के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध न होने की बात की संपुष्टि साक्षियों के मौखिक साक्ष्य से होना ऐसी परिस्थितियां हैं, जिनकी श्रृंखला पूर्ण है और इन पर एक साथ विचार करने पर केवल अभियुक्त की दोषिता का निष्कर्ष निकलता है, इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई, मान्य है ।

खीम सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य

284

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26)

— धारा 138 — चैक का अनादरण — माल का प्रदाय करने के क्रय आदेशों के संबंध में क्रेता द्वारा विक्रेता को अग्रिम रकम के रूप में आगे की तारीख लिखा हुआ चैक जारी किया जाना — क्रेता द्वारा संदाय रोक देने के कारण चैक का अनादरण — धारा 138 के अधीन अपराध को लाने के लिए लेखीवाल पर चैक लिखने की तारीख को अस्तित्वयुक्त कोई ऋण या दायित्व का होना अत्यावश्यक है और क्रय आदेश के संबंध में अग्रिम रकम के रूप में जारी किए गए चैक को अस्तित्वयुक्त ऋण या दायित्व के लिए जारी किया गया नहीं कहा जा

सकता है और चैक के अनादरण पर कोई आपराधिक दायित्व सृजित नहीं होता है ।

**इंदू एयरवेज प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और अन्य
बनाम मगनम एविएशन प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स)
और एक अन्य**

300

— धारा 138 — चैक का अनादरण — माल का प्रदाय करने की संविदा में अग्रिम रकम के संदाय की शर्त होना — क्रेता द्वारा विक्रेता को आगे की तारीख लिखा हुआ चैक जारी किया जाना — क्रेता द्वारा संदाय रोक देने के कारण चैक का अनादरण — चैक के अनादरण के कारण संविदा की ऐसी शर्त का भंग होने पर विक्रेता को हुई हानि की भरपाई क्रेता द्वारा करनी होगी किंतु इससे धारा 138 के अधीन आपराधिक दायित्व का सृजन नहीं होता है ।

**इंदू एयरवेज प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और अन्य
बनाम मगनम एविएशन प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स)
और एक अन्य**

300

पेटेंट अधिनियम, 1970 (1970 का 39)

— धारा 25 और 64(1) — पेटेंट अनुदत्त करने के लिए विरोधी कार्यवाहियां — पेटेंट अनुदत्त करने से पूर्व धारा 25(1) के अधीन “कोई व्यक्ति” पेटेंट अनुदत्त के विरुद्ध अभ्यावदेन दे सकता है, किंतु पेटेंट अनुदत्त करने के पश्चात् केवल “कोई हितबद्ध व्यक्ति” ही धारा 25(2) के अधीन नियंत्रक को विरोध की सूचना के माध्यम से या धारा 64(1) के अधीन अपील बोर्ड के समक्ष प्रतिसंहरण की अर्जी फाइल करके या वादी द्वारा उच्च न्यायालय में फाइल किए गए पेटेंट के अतिलंघन वाद में प्रत्यर्थी द्वारा “प्रतिदावे” के माध्यम से चुनौती दी जा सकती है ।

**एलायस वुबेन और एक अन्य बनाम योगेश मेहरा
और अन्य**

239

– धारा 25, 64(1) और 2(1)(न) – “हितबद्ध व्यक्ति” अभिव्यक्ति का अर्थ – हितबद्ध व्यक्ति के अंतर्गत ऐसा व्यक्ति सम्मिलित है, जिसका किसी पेटेंट में प्रत्यक्ष, वर्तमान और वास्तविक हित हो और पेटेंट अनुदत्त किए जाने से उसके अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो ।

ऐलायस वुबेन और एक अन्य बनाम योगेश मेहरा और अन्य

239

– धारा 64(1) और 25 – पेटेंट का प्रतिसंहरण – “किसी हितबद्ध व्यक्ति” को उपलब्ध उपचार – यदि “किसी हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा धारा 25(2) के अधीन कोई पेटेंट अनुदत्त करने के विरुद्ध कार्यवाहियां फाइल की गई हैं, तो उसी व्यक्ति को धारा 64(1) के अधीन उसी पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए अर्जी फाइल करने तथा पेटेंटधारी द्वारा पेटेंट के अतिलंघन के लिए फाइल किए गए वाद में उसी व्यक्ति द्वारा प्रतिवादी की हैसियत से प्रतिदावे के माध्यम से पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करने का अधिकार नहीं होगा, क्योंकि धारा 64(1) में प्रयुक्त शब्द “या” द्वारा भिन्न-भिन्न उपचारों को अलग किया गया है तथा पेटेंट का अवधारण समय के हिसाब से पहले फाइल की गई कार्यवाही में किया जाएगा ।

ऐलायस वुबेन और एक अन्य बनाम योगेश मेहरा और अन्य

239

– धारा 64(1) और 25(2) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 10 और 151] – पेटेंट का प्रतिसंहरण – यदि “किसी हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा उसके विरुद्ध पेटेंट के अतिलंघन का वाद फाइल होने से पूर्व पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए अर्जी फाइल की गई है, तो वह विधि की दृष्टि से उस अतिलंघन वाद में प्रतिदावे के माध्यम से प्रतिसंहरण की ईप्सा करने का हकदार नहीं होगा ।

ऐलायस वुबेन और एक अन्य बनाम योगेश मेहरा और अन्य

239

– धारा 64(1) और 25(2) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 10 और 151] – पेटेंट का प्रतिसंहरण – यदि पेटेंटधारी द्वारा पेटेंट के अतिलंघन के लिए वाद फाइल किया गया है और प्रतिवादी द्वारा “किसी हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत से पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए प्रतिदावा फाइल किया गया है, तो वह इसके पश्चात् “किसी हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत से उसी पेटेंट के लिए उसी व्यक्ति के विरुद्ध प्रतिसंहरण अर्जी फाइल नहीं कर सकता है क्योंकि प्रतिदावे की प्रकृति एक स्वतंत्र वाद की होती है और जहां प्रतिवादी ने उसी वाद हेतुक के आधार पर वादी के विरुद्ध पहले ही कोई वाद संस्थित किया है, तो प्रतिदावे को जारी रखने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है।

**ऐलायस वुबेन और एक अन्य बनाम योगेश मेहरा
और अन्य**

239

– धारा 64(1) और 25(2) – पेटेंट को चुनौती – पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए अर्जी – वाद लाने का अधिकार – यदि किसी पेटेंट के अनुदत्त करने के पश्चात् धारा 25(2) के अधीन “किसी हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा नियंत्रक के समक्ष विरोध कार्यवाहियां आरंभ की गई हों और उसी व्यक्ति द्वारा धारा 64(1) के अधीन उसी पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए अपील बोर्ड के समक्ष प्रतिसंहरण अर्जी फाइल की गई हो तथा पेटेंटधारी द्वारा उच्च न्यायालय में पेटेंट के अतिलंघन के लिए फाइल किए गए वाद में प्रतिदावे के माध्यम से भी पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा की गई हो, तो उस स्थिति में उपचार उनके संस्थित किए जाने की तारीख पर निर्भर करेगा और पक्षकारों को एक मंच/उपचार चुनने की स्वतंत्रता देने और उनके द्वारा सहमति देने पर किसी अतिरिक्त मंच/न्यायालय के समक्ष प्रतितोष पाने का

अधिकार नहीं होगा ।

**ऐलायस वुबेन और एक अन्य बनाम योगेश मेहरा
और अन्य**

239

वक्फ अधिनियम, 1995 (1995 का 43)

– धारा 6 और 7 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 9] – वक्फ संपत्ति से बेदखली के लिए वाद – वक्फ संपत्ति से संबंधित अभिधारी के विरुद्ध बेदखली के लिए वाद अनन्य रूप से सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय है और अधिनियम में अधिकरण द्वारा बेदखली के विवाद का अवधारण करने के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है ।

**फसीला एम. बनाम मुन्नेरुल इस्लाम मदरसा समिति
और एक अन्य**

194

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 226 और 311 – विलंब और प्रमाद – अप्राधिकृत अनुपस्थिति के कारण पदच्युति – पदच्युति को चुनौती देने में चार वर्ष का विलंब – विलंब और प्रमाद के सिद्धांत की अकारण उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए क्योंकि विलंब साम्या के मार्ग में बाधक होता है इसलिए न्यायौचित्य के बिना विलंब को अनदेखा नहीं किया जा सकता है और विलंब के आधार पर आवेदन खारिज किया जा सकता है ।

**चेन्नई मेट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड
और अन्य बनाम टी. टी. मुरली बाबू**

170

– अनुच्छेद 311 – पदच्युति – आनुपातिकता का सिद्धांत – एक कनिष्ठ इंजीनियर द्वारा एक वर्ष और सात मास तक अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहना और अपनी अनुपस्थिति के दौरान नियोजक की संसूचनाओं का उत्तर

न देकर अड़ियल रुख अपनाना – पदच्युति का दंड – याची द्वारा धारित पदीय हैसियत और उससे प्रत्याशित अनुशासन को ध्यान में रखते हुए पदच्युति के दंड को अननुपाती नहीं कहा जा सकता है और उसका आभ्यासिक रूप से अनुपस्थित न रहना भी उसके दंड में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं हो सकता है ।

**चेन्नई मेट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड
और अन्य बनाम टी. टी. मुरली बाबू**

170

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 27 और धारा 6 – पारिस्थितिक साक्ष्य – अपीलार्थी को मृतक के साथ अंतिम बार देखा जाना – यदि अभियुक्त और मृतक को अंतिम बार एक साथ जीवित देखे जाने और मृतक के मृत पाए जाने के बीच समयांतराल इतना कम हो कि अभियुक्त के सिवाय अन्य किसी व्यक्ति का अपराधी होना असंभव हो जाए, तब इस आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है ।

धरम देव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

206

– धारा 27 – पुलिस अभिरक्षा – अभियुक्त द्वारा किया गया प्रकटीकरण सही पाया जाना – धारा 27 में उल्लिखित “अभिरक्षा” अभिव्यक्ति का अर्थ औपचारिक अभिरक्षा नहीं है और यदि अभियुक्त को उस समय गिरफ्तार नहीं किया गया था जब उसने जानकारी दी थी तब भी सभी व्यावहारिक प्रयोजनों से अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में ही समझा जाएगा और इस प्रकार की गई बरामदगी न्यायोचित होगी ।

धरम देव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

206

[2014] 3 उम. नि. प. 155

स्टेनज़ेन टोयोटेट्सु इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स)

बनाम

गिरीश वी. और अन्य

21 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति विक्रमजीत सेन

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14) – अनुसूची 32, मद 6 – दांडिक और अनुशासनिक कार्यवाहियों का एक-साथ चलना – अनुशासनिक कार्यवाहियों पर रोक – यह सुस्थापित है कि अनुशासनिक कार्यवाहियों और दांडिक विचारण के एक साथ चलने पर कोई विधिक वर्जन नहीं है तथापि, अनुशासनिक कार्यवाहियों पर रोक तभी उचित होगी यदि दांडिक आरोप गंभीर है और अनुशासनिक कार्यवाहियों के जारी रहने के कारण दांडिक विचारण में प्रतिरक्षा-पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ।

प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी-कंपनी आटोमोबाइल पुर्जे का विनिर्माण करने में लगी हुई है जबकि प्रत्यर्थी उक्त कारखार के संबंध में अपीलार्थी द्वारा नियोजित किए गए कर्मकार हैं । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि अपीलार्थी-कंपनी के कर्मचारी, जिनमें प्रत्यर्थी भी हैं, औद्योगिक कर्मचारी (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 के अधीन प्रमाणित स्थायी आदेशों द्वारा शासित होते हैं । अपीलार्थी का पक्षकथन यह है कि प्रत्यर्थियों ने ट्रेड यूनियन के अन्य कृत्यकारियों की सहायता से एक दुर्घटना का मंच प्रबंधन किया जिससे यह प्रतीत हुआ कि मानो एक कर्मचारी प्रेस क्षेत्र में फिसलकर गिर गया । यह अभिकथित किया गया है कि इस दुर्घटना का प्रयोग प्रत्यर्थियों द्वारा एक चाल के रूप में किया गया जो अभिकथित गिरने वाले स्थान की ओर केवल उपद्रव करने के लिए भागे । अपीलार्थी का आगे पक्षकथन यह है कि यद्यपि उस कर्मचारी को कोई क्षति नहीं पहुंची थी तथापि, उसे अपीलार्थी-कंपनी की एम्बुलेंस में अस्पताल भेज दिया गया था और यह कि अभिकथित घटना के पश्चात् प्रत्यर्थियों ने कार्य आरंभ करने की बजाय उत्पादन गतिविधि रोक दी और अपने वरिष्ठ अधिकारियों को गाली-गलौज करना आरंभ कर दिया, कंपनी की संपत्ति को नुकसान

पहुंचाया और वरिष्ठ प्रबंधकीय कार्मिकों पर हमला भी किया । इन अनुशासनहीन कृत्यों के कारण कारखाने में भय और तनाव का वातावरण पैदा हो गया और इससे उत्पादन गतिविधि रुक गई । अपीलार्थी के अनुसार, घटना में क्षतिग्रस्त वरिष्ठ प्रबंधकीय कार्मिक उन पर हुए हमले के कारण लगभग 15 दिनों तक कार्य पर आने में असमर्थ रहे । सक्षम प्राधिकारी ने इस घटना और अनुशासनहीनता के उन कृत्यों को ध्यान में रखते हुए जो स्थायी आदेशों के अनेक उपबंधों के अधीन अवचार की कोटि में आते थे, प्रत्यर्थियों को निलंबित कर दिया और उनके विरुद्ध आरोप-पत्र जारी किए । चूंकि प्रत्यर्थियों द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण असंतोषजनक पाया गया था इसलिए एक अनुशासनिक जांच आरंभ की गई थी । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रश्नगत घटना के संबंध में अपीलार्थी-कंपनी के एक कर्मचारी द्वारा, जो कि उसमें साक्षी था, पुलिस को भी रिपोर्ट की गई थी जिसके परिणामस्वरूप रामनगर ग्रामीण पुलिस थाने में भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 143, धारा 147, धारा 323, धारा 324, धारा 356, धारा 427, धारा 504, धारा 506 और धारा 114 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए 2011 का अपराध सं. 173 रजिस्ट्रीकृत किया गया था । जबकि अनुशासनिक जांच और दांडिक मामला दोनों लंबित थे, प्रत्यर्थियों ने मूल वाद फाइल किए जिनमें उन्होंने अपीलार्थी और जांच अधिकारियों के विरुद्ध दांडिक मामले का निष्कर्ष निकाले जाने तक जांच में कार्यवाही करने से उन्हें अवरुद्ध करते हुए एक स्थायी व्यादेश के लिए प्रार्थना की थी । उक्त वादों में चालू जांच के विरुद्ध प्रत्येक वाद में अस्थायी व्यादेश की ईप्सा करते हुए अंतर्वर्ती आवेदन भी फाइल किए गए थे । यद्यपि इन आवेदनों का अपीलार्थी-कंपनी द्वारा विरोध किया गया था तथापि, वे मंजूर कर लिए गए थे और प्रत्यर्थियों के विरुद्ध लंबित विभागीय जांच पर दांडिक मामले का निपटारा होने तक रोक लगा दी गई थी । अपीलार्थी द्वारा उक्त आदेश के विरुद्ध फाइल की गई प्रकीर्ण अपीलें असफल हो जाने पर अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल कीं, जो कि असफल रहीं और जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा एक सामान्य आदेश के निबंधनानुसार खारिज कर दिया गया है और जिसे प्रस्तुत अपीलों में आक्षेपित किया गया है । परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थियों के विरुद्ध लंबित अनुशासनिक जांच पर दांडिक विचारण समाप्त होने तक रोक लगी रही । प्रस्तुत अपीलों में उक्त निर्णय और आदेशों की शुद्धता को चुनौती दी गई है । अतः, इन अपीलों में जो संक्षिप्त प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय तथा निचले न्यायालयों का यह अभिनिर्धारित

करना सही था कि अपीलार्थी-कंपनी द्वारा अपने कर्मचारियों (जो कि इस मामले में प्रत्यर्थी हैं) के विरुद्ध आरंभ की गई अनुशासनिक कार्यवाहियां प्रत्यर्थियों के विरुद्ध उसी घटना की बाबत संस्थित किए गए दांडिक मामले का निष्कर्ष निकाले जाने तक रुकी रहनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – जबकि अनुशासनिक कार्यवाहियां और दांडिक विचारण साथ-साथ चलाने में कोई विधिक वर्जन नहीं है, किन्तु अनुशासनिक कार्यवाहियों को रोक देना ऐसे मामलों में उपयुक्त मार्ग हो सकता है जहां कर्मचारी के विरुद्ध दांडिक आरोप गंभीर है और अनुशासनिक कार्यवाहियों के जारी रहने से दांडिक न्यायालय के समक्ष उनकी प्रतिरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है। तथापि, प्रश्न का निर्धारण करने के लिए आरोप की गंभीरता तब तक अपने आप में पर्याप्त नहीं होती है जब तक कि आरोप में विधि और तथ्य संबंधी जटिल प्रश्न अंतर्वलित न हो। इस प्रश्न की परीक्षा करने वाले न्यायालय को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दांडिक विचारण विशेष रूप से वहां अनिश्चितकाल तक लंबित रखे जाते हैं जहां विचारण के लिए दोषारोपित अभियुक्तों की संख्या अधिक होती है जैसा कि प्रस्तुत मामले में है और इसी प्रकार अभियोजन-पक्ष द्वारा बुलाए गए साक्षियों की संख्या भी अधिक हो जाती है। अतः, न्यायालय को एक ओर अभियुक्त के ऋजु विचारण की आवश्यकता और दूसरी ओर चालू अनुशासनिक कार्यवाहियों को शीघ्र पूरा करने की प्रतिस्पर्धी मांग के बीच संतुलन बनाए रखना होगा। इस न्यायालय ने यह पाया है कि अनुशासनिक कार्यवाहियों का शीघ्र पूरा किया जाना स्वयमेव कर्मचारियों के हित में होता है। (पैरा 13)

अनुशासनिक कार्यवाहियां अनिश्चितकाल तक लंबी अवधि के लिए स्थगित नहीं रखी जा सकती हैं। ऐसे अत्यधिक विलंब न तो अपीलार्थी-कंपनी के और न ही उन प्रत्यर्थियों के हित में है जो कि निलंबनाधीन हैं और जो निर्वाह-भत्ते पर जीवनयापन कर रहे हैं। मामले में आलिप्त अभियुक्तों की संख्या भी बहुत अधिक है। वह घटना मात्र इस कारण मिथ्या नहीं मान ली जानी चाहिए कि घटना में इतनी बड़ी संख्या में लोग भागीदार नहीं हो सकते हैं। किन्तु सामान्य प्रवृत्ति जाल का व्यापक रूप से प्रसार करने और ऐसे लोगों को भी आलिप्त करने की है जिनका अपराधों के करने से संबंध नहीं है या जो हालांकि वहां उपस्थित होते हैं किन्तु उन्होंने ऐसा कोई प्रकट कार्य नहीं किया है जिससे यह दर्शित होता हो कि

वे जमाव के सामान्य उद्देश्य में भागीदार थे या वे अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के उपद्रवी व्यवहार के लिए उत्तरदायी थे। ऐसे अभियुक्तों के हित की भी, जो कि निर्दोष हों, अनदेखी नहीं की जा सकती है और न ही उन्हें मात्र इस कारण अनिश्चितकाल तक कष्टग्रस्त रखा जा सकता कि कुछ अन्य व्यक्तियों ने कोई अपराध किए हैं। (पैरा 15)

इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि सभी तीन निचले न्यायालयों ने चालू अनुशासनिक कार्यवाहियों को रोक देने के पक्ष में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है, उक्त आदेश को सीधे ही बातिल करना उपयुक्त नहीं है। न्याय के हितों की तब पर्याप्त रूप से पूर्ति हो जाएगी यदि प्रत्यर्थियों के विरुद्ध दांडिक आरोपों पर कार्यवाही करने वाले न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वे उन कार्यवाहियों को यथासंभव शीघ्र किन्तु हर हालत में इस आदेश की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर पूरा करें। तथापि, यदि विचारण उन कदमों के बावजूद जिन्हें उठाने के लिए विचारण न्यायालय को निदेश दिया गया है, इस आदेश की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर पूरा नहीं होता है तो प्रत्यर्थियों के विरुद्ध आरंभ की गई अनुशासनिक कार्यवाहियां पुनः आरंभ हो जाएंगी और संबंधित जांच अधिकारी द्वारा पूरी कर ली जाएंगी। उस दशा में आक्षेपित आदेश इस आदेश की तारीख से एक वर्ष की अवधि के अवसान पर बातिल हो जाएंगे। (पैरा 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 1 एस. सी. सी. 442 : प्रभागीय नियंत्रक, कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम एम. जी. विट्टल राव ;	9
[2005]	(2005) 10 एस. सी. सी. 471 : एच. पी. सी. एल. बनाम सर्वेश बेरी ;	11
[1999]	(1999) 3 एस. सी. सी. 679 : कैप्टन एम. पाल एंथोनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड ;	10,12
[1997]	(1997) 2 एस. सी. सी. 699 : डिपो प्रबंधक, आन्ध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम मोहम्मद युसुफ मियां ;	9

[1996] (1996) 6 एस. सी. सी. 417 :
 राजस्थान राज्य बनाम बी. के. मीना । 12
 अपील (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं.
 763-768.

2012 की रिट याचिका सं. 8487-8491 और 2012 की रिट याचिका सं. 9381 में कर्नाटक उच्च न्यायालय की बंगलौर न्यायपीठ के तारीख 15 जून, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एस. एस. रामदास, ज्येष्ठ अधिवक्ता, शांता कुमार महाले, राजेश महाले, प्रदीप स्वाकर और कनकराज

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री ई. सी. विद्या सागर, (सुश्री) ख्याली सरकार और अनंतराम

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर ने दिया ।

न्या. ठाकुर – इजाजत दी जाती है ।

2. इन अपीलों में जो संक्षिप्त प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय तथा निचले न्यायालयों का यह अभिनिर्धारित करना सही था कि अपीलार्थी-कंपनी द्वारा अपने कर्मचारियों (जो कि इस मामले में प्रत्यर्थी हैं) के विरुद्ध आरंभ की गई अनुशासनिक कार्यवाहियां प्रत्यर्थियों के विरुद्ध उसी घटना की बाबत संस्थित किए गए दांडिक मामले का निष्कर्ष निकाले जाने तक रुकी रहनी चाहिए ।

3. अपीलार्थी-कंपनी मैसर्स स्टेनज़ेन टोयोटेट्सु इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के नाम और अभिनाम से आटोमोबाइल पुर्जे का विनिर्माण करने में लगी हुई है जबकि प्रत्यर्थी उक्त कारबार के संबंध में अपीलार्थी द्वारा नियोजित किए गए कर्मकार हैं । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि अपीलार्थी-कंपनी के कर्मचारी, जिनमें प्रत्यर्थी भी हैं, औद्योगिक कर्मचारी (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 के अधीन प्रमाणित स्थायी आदेशों द्वारा शासित होते हैं ।

4. अपीलार्थी का पक्षकथन यह है कि तारीख 19 मार्च, 2011 को लगभग 10.30 बजे अपराह्न में प्रत्यर्थियों ने ट्रेड यूनियन के अन्य कृत्यकारियों की सहायता से एक दुर्घटना का मंच प्रबंधन किया जिससे यह

प्रतीत हुआ कि मानो श्री कुसुमधारा नामक कर्मचारी प्रेस क्षेत्र में फिसलकर गिर गया । यह अभिकथित किया गया है कि इस दुर्घटना का प्रयोग प्रत्यर्थियों द्वारा एक चाल के रूप में किया गया जो अभिकथित गिरने वाले स्थान की ओर केवल उपद्रव करने के लिए भागे । अपीलार्थी का आगे पक्षकथन यह है कि यद्यपि श्री कुसुमधारा को कोई क्षति नहीं पहुंची थी तथापि, उसे अपीलार्थी-कंपनी की एम्बुलेंस में अस्पताल भेज दिया गया था और यह कि अभिकथित घटना के पश्चात् प्रत्यर्थियों ने कार्य आरंभ करने की बजाय उत्पादन गतिविधि रोक दी और अपने वरिष्ठ अधिकारियों को गाली-गलौज करना आरंभ कर दिया, कंपनी की संपत्ति को नुकसान पहुंचाया और वरिष्ठ प्रबंधकीय कार्मिकों पर हमला भी किया । इन अनुशासनहीन कृत्यों के कारण कारखाने में भय और तनाव का वातावरण पैदा हो गया और इससे उत्पादन गतिविधि रुक गई । अपीलार्थी के अनुसार, घटना में क्षतिग्रस्त वरिष्ठ प्रबंधकीय कार्मिक उन पर हुए हमले के कारण लगभग 15 दिनों तक कार्य पर आने में असमर्थ रहे ।

5. सक्षम प्राधिकारी ने इस घटना और अनुशासनहीनता के उन कृत्यों को ध्यान में रखते हुए जो स्थायी आदेशों के अनेक उपबंधों के अधीन अवचार की कोटि में आते थे, प्रत्यर्थियों को निलंबित कर दिया और उनके विरुद्ध आरोप-पत्र जारी किए । चूंकि प्रत्यर्थियों द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण असंतोषजनक पाया गया था इसलिए एक अनुशासनिक जांच आरंभ की गई थी और प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अभिकथनों की जांच करने के लिए जांच अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी । पीठासीन अधिकारियों ने प्रत्येक जांच में एक साक्षी की परीक्षा की है ।

6. ऐसा प्रतीत होता है कि प्रश्नगत घटना के संबंध में अपीलार्थी-कंपनी के एक कर्मचारी द्वारा, जो कि उसमें साक्षी था, पुलिस को भी रिपोर्ट की गई थी जिसके परिणामस्वरूप रामनगर ग्रामीण पुलिस थाने में भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 143, धारा 147, धारा 323, धारा 324, धारा 356, धारा 427, धारा 504, धारा 506 और धारा 114 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए 2011 का अपराध सं. 173 रजिस्ट्रीकृत किया गया था । उक्त रिपोर्ट के अनुसरण में एक आरोप पत्र फाइल किया गया था और अन्वेषण लंबित है जिसमें प्रत्यर्थी ऊपर उल्लिखित अपराध कारित करने के अभियुक्त हैं ।

7. जबकि अनुशासनिक जांच और दांडिक मामला दोनों लंबित थे, प्रत्यर्थियों ने 2011 के मूल वाद सं. 326-331 फाइल किए जिनमें उन्होंने

अपीलार्थी और जांच अधिकारियों के विरुद्ध दांडिक मामले का निष्कर्ष निकाले जाने तक जांच में कार्यवाही करने से उन्हें अवरुद्ध करते हुए एक स्थायी व्यादेश के लिए प्रार्थना की थी। उक्त वादों में चालू जांच के विरुद्ध प्रत्येक वाद में अस्थायी व्यादेश की ईप्सा करते हुए अंतर्वर्ती आवेदन भी फाइल किए गए थे। यद्यपि इन आवेदनों का अपीलार्थी-कंपनी द्वारा विरोध किया गया था तथापि, वे प्रधान सिविल न्यायाधीश और जे. एम. एफ. सी. रामनगर द्वारा तारीख 13 अक्टूबर, 2011 के आदेश द्वारा मंजूर कर लिए गए थे और प्रत्यर्थियों के विरुद्ध लंबित विभागीय जांच पर 2011 के दांडिक मामला सं. 1005 में दांडिक मामले का निपटारा होने तक रोक लगा दी गई थी।

8. अपीलार्थी द्वारा उक्त आदेश के विरुद्ध प्रधान ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रामनगर के समक्ष फाइल की गई 2011 की प्रकीर्ण अपील सं. 56 और 61 असफल हो जाने पर अपीलार्थी ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष 2012 की रिट याचिका सं. 8487-8491 (जी. एम.-सी. पी. सी.) और 2012 की रिट याचिका सं. 9381 (जी. एम.-सी. पी. सी.) फाइल की, जो कि असफल रहीं और जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 15 जून, 2012 के सामान्य आदेश के निबंधनानुसार खारिज कर दिया गया है और जिसे प्रस्तुत अपीलों में आक्षेपित किया गया है। परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थियों के विरुद्ध लंबित अनुशासनिक जांच पर दांडिक विचारण समाप्त होने तक रोक लगी रही। प्रस्तुत अपीलों में, जैसा कि पहले अवेक्षा की गई है, उक्त निर्णय और आदेशों की शुद्धता को चुनौती दी गई है।

9. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेल की विस्तारपूर्वक सुनवाई की है। उपर्युक्त पृष्ठभूमि में जो एकमात्र प्रश्न अवधारणार्थ उद्भूत होता है, वह यह है कि निचले न्यायालयों का प्रत्यर्थियों के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत और फाइल किए गए दांडिक मामले में विचारण पूरा होने तक चालू अनुशासनिक कार्यवाहियों पर रोक लगाना न्यायोचित था अथवा नहीं। उस प्रश्न का उत्तर प्रमुख रूप से इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या कर्मचारियों के विरुद्ध ऐसी किसी घटना पर आधारित अनुशासनिक कार्यवाहियों को जारी रखने में कोई विधिक वर्जन है जो कि ऐसे कर्मचारियों के विरुद्ध दांडिक मामले की विषयवस्तु भी है। यह कर्मचारियों के विरुद्ध फाइल किए गए दांडिक मामले में आरोपों की प्रकृति पर भी निर्भर करेगा और क्या उस मामले में विधि और तथ्य संबंधी जटिल प्रश्न अंतर्वलित हैं अथवा

नहीं। दांडिक मामले में अभियुक्त कर्मचारियों पर समानांतर अनुशासनिक जांच चालू रहने के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना एक ऐसा अन्य आयाम है जिसे ऐसी अनुशासनिक जांच कार्यवाहियों को अनुज्ञात करने या रोकने के समय ध्यान में रखना होगा। समरूप विवादों के लिए इस विषय पर विधि उचित रूप से सुस्थापित है और इस पर इस न्यायालय ने भिन्न-भिन्न तथ्यात्मक स्थितियों में अपना ध्यान आकृष्ट किया है। यद्यपि, इस न्यायालय के निर्णयों में सभी मामलों में कोई अनम्य फार्मूला विहित नहीं किया गया है तथापि, इस न्यायालय ने ऐसे मामलों में अपना जाने वाले व्यापक दृष्टिकोण को परिलक्षित किया है जिसमें संबंधित न्यायालयों पर ऐसे प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्य और परिस्थितियों के आधार पर जो उनके समक्ष आते हैं, समुचित दृष्टिकोण अपनाने की छूट दी है। यह कहना पर्याप्त होगा कि इस समस्या का कोई संक्षिप्त समाधान नहीं है। तथापि, जो कुछ ऋजु रूप से सुस्थापित है और जिसके संबंध में हमारे समक्ष भी कोई विवाद नहीं किया गया है, वह यह है कि अनुशासनिक कार्यवाहियों और दांडिक विचारण के साथ-साथ चलने पर कोई विधिक वर्जन नहीं है। **डिपो प्रबंधक, आन्ध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम मोहम्मद युसुफ मियाँ¹** वाले मामले में इस न्यायालय ने यह घोषित किया है कि विभागीय कार्यवाहियों में अंतर्निहित प्रयोजन उस प्रयोजन से सुभिन्न रूप से पृथक् है जो अपराधियों का उनके द्वारा अपराध कारित किए जाने के लिए अभियोजन चलाने के पीछे होता है। जबकि किसी अपराध के लिए दांडिक अभियोजन उस कर्तव्य के अतिक्रमण के लिए चलाया जाता है जो अपराधी का समाज के प्रति होता है किन्तु विभागीय जांच का उद्देश्य सेवा में अनुशासन और दक्षता बनाए रखना होता है। एक ओर सबूत के मानक और साक्ष्य के नियम लागू करने और दूसरी ओर लागू न होने के बीच अंतर स्पष्ट किया गया था और उस पर केवल यह स्पष्ट करने के लिए जोर दिया गया था कि वैचारिक रूप से ये दोनों भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त होते हैं और ये विशिष्ट रूप से भिन्न प्रयोजनों को पूरा करने के लिए आशयित हैं। **प्रभागीय नियंत्रक, कर्नाटक राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम एम. जी. विट्टल राव²** वाले मामले में इस न्यायालय का अपेक्षाकृत हाल ही का विनिश्चय उन सिद्धांतों का समयोचित अनुस्मारक है जो इन स्थितियों में लागू होते हैं जिनका सारांश

¹ (1997) 2 एस. सी. सी. 699.

² (2012) 1 एस. सी. सी. 442.

सारगर्भित रूप से निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है :-

“(i) दोनों कार्यवाहियों के साथ-साथ चलने पर कोई विधिक वर्जन नहीं है ।

(ii) यह दावा करने का एकमात्र विधिमान्य आधार कि अनुशासनिक कार्यवाहियों को रोका जा सकता है, यह सुनिश्चित करना होगा कि दांडिक मामले में कर्मचारी की प्रतिरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े । किन्तु ऐसे आधार भी केवल ऐसे मामलों में उपलब्ध होंगे जिनमें तथ्य और विधि संबंधी जटिल प्रश्न अंतर्वलित होते हैं ।

(iii) ऐसी प्रतिरक्षा विभागीय कार्यवाहियों में अनावश्यक विलंब कारित करने के लिए अनुज्ञात नहीं की जानी चाहिए । अपचारी अधिकारी तथा नियोजक का हित स्पष्ट रूप से अनुशासनिक कार्यवाहियों के तुरंत समापन में निहित होता है ।

(iv) विभागीय कार्यवाहियां दांडिक विचारण के साथ-साथ चल सकती हैं सिवाय वहां जहां कि दोनों कार्यवाहियां एक ही प्रकार के तथ्यों पर आधारित हैं और दोनों कार्यवाहियों में साक्ष्य एक ही है ।”

10. हम कैप्टन एम. पाल एंथोनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड¹ वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति निर्देश कर सकते हैं जहां इस न्यायालय ने उस मामले में के तथ्यों और परिस्थितियों को लागू करने वाले निम्नलिखित व्यापक सिद्धांतों की पहचान करने के लिए उस विषय पर निर्णयज विधि का पुनर्विलोकन किया :-

“(i) विभागीय कार्यवाहियां और किसी दांडिक मामले में की कार्यवाहियां साथ-साथ चल सकती हैं क्योंकि यद्यपि पृथक् रूप से किन्तु उनके साथ-साथ चलने के संबंध में कोई वर्जन नहीं है ।

(ii) यदि विभागीय कार्यवाहियां और दांडिक मामला समान और समरूप तथ्यों पर आधारित हैं और अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध दांडिक मामले में आरोप गंभीर प्रकृति का है जिसमें विधि और तथ्य के जटिल प्रश्न अंतर्वलित हैं, तो दांडिक मामले में निष्कर्ष निकाले जाने तक विभागीय कार्यवाहियों को रोकना वांछनीय होगा ।

(iii) यह अपराध की प्रकृति, साक्ष्य के आधार पर कर्मचारी के

¹ (1999) 3 एस. सी. सी. 679.

विरुद्ध चलाए गए मामले की प्रकृति और उसके विरुद्ध अन्वेषण के दौरान एकत्र की गई या आरोप पत्र में यथा-प्रतिबिंबित सामग्री पर निर्भर करेगा कि क्या किसी दांडिक मामले में अपराध की प्रकृति गंभीर है और क्या उस मामले में तथ्य और विधि के जटिल प्रश्न अंतर्वलित हैं, ।

(iv) विभागीय कार्यवाहियों को रोकने के लिए ऊपर (ii) और (iii) पर उल्लिखित कारकों पर अलग से विचार नहीं किया जा सकता है किन्तु इस तथ्य को भी सम्यक् महत्व दिया जाना चाहिए कि विभागीय कार्यवाहियों में असम्यक् रूप से विलंब नहीं किया जा सकता है ।

(v) यदि दांडिक मामले में कार्यवाही नहीं की जाती है या उसके निपटारे में असम्यक् विलंब किया जा रहा है तो विभागीय कार्यवाहियां, भले ही वे दांडिक मामले के लंबित रहने के कारण रोक दी गई हों, पुनः आरंभ की जा सकती हैं और चलाई जा सकती हैं जिससे कि उन्हें शीघ्र पूरा किया जा सके ताकि यदि कर्मचारी को दोषी नहीं पाया जाता है तो उसके सम्मान को ठेस पहुंच सकती है और यदि उसे दोषी पाया जाता है तो प्रशासन उसे यथाशीघ्र सेवोन्मुक्त कर सकता है ।”

11. एच. पी. सी. एल. बनाम सर्वेश बेरी¹ वाले मामले में प्रत्यर्थी के विरुद्ध उसकी आय के ज्ञात स्रोतों के अननुपात में आस्तियां धारित करने का आरोप लगाया गया था । प्रश्न यह था कि क्या सक्षम दांडिक न्यायालय द्वारा दांडिक आरोप की परीक्षा किए जाने तक अनुशासनिक कार्यवाहियां रोक दी जानी चाहिए । इस न्यायालय ने नियोजक-निगम की अपील को मंजूर करते हुए इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

“प्रत्येक अपराध, विधि का अतिक्रमण या लोक कर्तव्य का लोप करते हुए किया गया कार्य होता है । विभागीय जांच सेवा में अनुशासन और लोक सेवा में दक्षता बनाए रखने के लिए होती है । अतः यह समीचीन होगा कि अनुशासनिक कार्यवाहियां यथासंभव शीघ्र चलाई और पूरी की जाएं । अतः अनम्य नियमों के रूप में ऐसे दिशानिर्देश अधिकथित करना वांछनीय नहीं है जिनमें अनुशासनिक

¹ (2005) 10 एस. सी. सी. 471.

कार्यवाहियों को अपचारी अधिकारी के विरुद्ध दांडिक मामले में विचारण पूरा होने तक रोका जा सके या रोका न जा सके । प्रत्येक मामले पर उसके अपने तथ्यों और उसकी परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में विचार करने की आवश्यकता है । विभागीय जांच और किसी दांडिक मामले का विचारण साथ-साथ चलने के संबंध में तब तक कोई वर्जन नहीं होगा जब तक दांडिक विचारण में आरोप गंभीर प्रकृति का न हो जिसमें तथ्य और विधि संबंधी जटिल प्रश्न अंतर्वलित हैं ...। इन परिस्थितियों में, यह देखना आवश्यक है कि क्या विभागीय जांच से अपचारी पर दांडिक मामले में विचारण के दौरान अपनी प्रतिरक्षा करने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । प्रत्येक मामले में उसके अपने तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए सदैव तथ्य संबंधी प्रश्न पर विचार करना होता है ।” (जोर देने के लिए रेखांकित)

12. इस विषय पर विनिश्चयों की संख्या बढ़ाना अनावश्यक है क्योंकि उपर्युक्त निर्णयों और अनेक समरूप मामलों में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णयों से प्रकट होने वाली विधिक स्थिति सुस्थापित है कि अनुशासनिक कार्यवाहियों और किसी दांडिक मामले में की कार्यवाहियों के साथ-साथ चलने के संबंध में किसी विधिक वर्जन के अभाव में वे साथ-साथ चलाई जा सकती हैं । यह भी स्पष्ट है कि जबकि कर्मचारियों के विरुद्ध लगाए गए आरोप की गंभीरता पर विचार करना होता है किन्तु यह अपने आप में तब तक पर्याप्त नहीं है जब तक कि उस मामले में विधि और तथ्य संबंधी जटिल प्रश्न अंतर्वलित न हों । जब आरोप गंभीर पाया जाता है और तथ्य और विधि संबंधी जटिल प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होते हैं तब भी न्यायालय को इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि विभागीय कार्यवाहियों को अनिश्चितकाल के लिए निलंबित या सम्यक् रूप से विलंबित नहीं किया जा सकता है । **पाल एंथोनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने के लिए एक कदम आगे बढ़ाया कि विभागीय कार्यवाहियां तब भी पुनः आरंभ की जा सकती हैं और चलाई जा सकती हैं जबकि उन्हें ऐसे मामलों में इससे पूर्व रोक दिया गया हो जहां दांडिक विचारण में कोई प्रगति नहीं होती है । **राजस्थान राज्य बनाम बी. के. मीना**¹ वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय इसी आशय का है जहां इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि दोनों कार्यवाहियों के साथ-साथ चलने पर तब तक कोई विधिक वर्जन नहीं है जब तक कि

¹ (1996) 6 एस. सी. सी. 417.

दांडिक विचारण में कर्मचारी पर प्रतिकूल प्रभाव से ग्रस्त होने की संभावना न हो । जो कुछ महत्वपूर्ण है वह यह है कि प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना यह उपबंध करने से जुड़ी है कि न केवल आरोप गंभीर होना चाहिए बल्कि मामले में विधि और तथ्य संबंधी जटिल प्रश्न भी अंतर्वलित होने चाहिए । कार्यवाहियों का रोका जाना किसी भी हालत में सामान्य अनुक्रम में नहीं हो सकता है और न ही होना चाहिए । इस संबंध में निम्नलिखित पद्यांश उचित है :-

“दोनों कार्यवाहियों के साथ-साथ चलने पर कोई विधिक वर्जन नहीं है और इसके बाद यह कहना कि कतिपय स्थितियों में अनुशासनिक जांच करना ‘वांछनीय’, ‘उपयुक्त’ या ‘समुचित’ नहीं हो सकता है जब समान आरोपों के संबंध में दांडिक मामला लंबित है । अनुशासनिक कार्यवाहियों पर रोक लगाना एक ऐसा विषय है जिसका निर्धारण उसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना है और इस निमित्त कोई निश्चित नियम प्रतिपादित नहीं किया जा सकता है । उपरोक्त प्रश्नों में सुझाया गया एकमात्र आधार जो अनुशासनिक कार्यवाहियां रोकने के लिए विधिमान्य आधार गठित करता है, यह है कि दांडिक मामले में कर्मचारी की प्रतिरक्षा पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े । तथापि, इस आधार को यह उपबंध करके और बल दिया गया है कि यह गंभीर प्रकृति के मामलों में किया जा सकता है जिनमें तथ्य और विधि संबंधी प्रश्न अंतर्वलित हों । सादर हमारी राय में, इसका अभिप्राय यह है कि न केवल आरोप गंभीर होने चाहिए बल्कि मामले में विधि और तथ्य संबंधी जटिल प्रश्न अंतर्वलित होने चाहिए । तथापि, प्रत्येक मामले में यथास्थिति, ‘उपयुक्तता’, ‘वांछनीयता’ या ‘औचित्य’ का अवधारण मामले के समस्त तथ्यों और उसकी परिस्थितियों पर विचार करते हुए करना होगा । जबकि अनुशासनिक कार्यवाहियों पर रोक लगाने के पक्ष और विपक्ष में विभिन्न कारणों को प्रगणित करना संभव नहीं है किन्तु हमने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्रायः अनुशासनिक कार्यवाहियां दांडिक कार्यवाहियों के पूरा होने तक लंबी अवधि के लिए रोकी जा रही है, कुछ महत्वपूर्ण विचारणाओं पर जोर देना आवश्यक समझा । अनुशासनिक कार्यवाहियां सामान्य अनुक्रम में नहीं रोकी जा सकतीं और न ही रोकी जानी चाहिए । उसके पक्ष और विपक्ष में समस्त सुसंगत कारकों को महत्व दिया जाना चाहिए”

और ऊपर निर्दिष्ट विनिश्चयों में अधिकथित विभिन्न सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए विनिश्चय किया जाना चाहिए । वास्तव में, ऐसे मामलों में यह आरोपित अधिकारी के हित में अधिक होता है कि कार्यवाहियां शीघ्रता से पूरी कर दी जाएं । ऐसे मामलों में विलंब वास्तव में उसके विरुद्ध जाता है ।” (जोर देने के लिए रेखांकित)

13. यह कहना पर्याप्त है कि जबकि अनुशासनिक कार्यवाहियां और दांडिक विचारण साथ-साथ चलाने में कोई विधिक वर्जन नहीं है, किन्तु अनुशासनिक कार्यवाहियों को रोक देना ऐसे मामलों में उपयुक्त मार्ग हो सकता है जहां कर्मचारी के विरुद्ध दांडिक आरोप गंभीर है और अनुशासनिक कार्यवाहियों के जारी रहने से दांडिक न्यायालय के समक्ष उनकी प्रतिरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । तथापि, प्रश्न का निर्धारण करने के लिए आरोप की गंभीरता तब तक अपने आप में पर्याप्त नहीं होती है जब तक कि आरोप में विधि और तथ्य संबंधी जटिल प्रश्न अंतर्वलित न हो । इस प्रश्न की परीक्षा करने वाले न्यायालय को यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दांडिक विचारण विशेष रूप से वहां अनिश्चितकाल तक लंबित रखे जाते हैं जहां विचारण के लिए दोषारोपित अभियुक्तों की संख्या अधिक होती है जैसा कि प्रस्तुत मामले में है और इसी प्रकार अभियोजन-पक्ष द्वारा बुलाए गए साक्षियों की संख्या भी अधिक हो जाती है । अतः, न्यायालय को एक ओर अभियुक्त के ऋजु विचारण की आवश्यकता और दूसरी ओर चालू अनुशासनिक कार्यवाहियों को शीघ्र पूरा करने की प्रतिस्पर्धी मांग के बीच संतुलन बनाए रखना होगा । इस न्यायालय ने यह पाया है कि अनुशासनिक कार्यवाहियों का शीघ्र पूरा किया जाना स्वयमेव कर्मचारियों के हित में होता है ।

14. वर्तमान मामले में प्रत्यर्थियों के विरुद्ध लगाए गए आरोप दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 143, धारा 147, धारा 323, धारा 324, धारा 356, धारा 427, धारा 504, धारा 506 और धारा 114 के अधीन हैं । ये कोई साधारण अपराध नहीं हैं क्योंकि ये जुर्माने के अतिरिक्त कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक हो सकेगी, दंडनीय हैं । इसके साथ-साथ आरोप की गंभीरता एकमात्र कसौटी नहीं होती है । प्रत्यर्थियों से भी जो कुछ प्रदर्शित करना अपेक्षित है वह यह है कि मामले में विधि और तथ्य संबंधी जटिल प्रश्न अंतर्वलित हैं । इस अपेक्षा की पर्याप्त मात्रा में पूर्ति की गई प्रतीत नहीं होती है जिससे कि विचारण के पूरा होने तक अनुशासनिक कार्यवाहियों को पूर्ण रूप से रोक देने की मांग की जा सके ।

उस घटना से, जैसा कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में उसका वर्णन किया गया है या जैसा कि प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए वादों में उनके द्वारा प्रक्षेपित किया गया है, तथ्य या विधि संबंधी कोई जटिलता या पेचीदापन का संकेत नहीं मिलता है।

15. इसके अलावा, प्रत्यर्थियों ने विभागीय जांच के प्रारंभ होने से पूर्व उनके द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण में अपना प्रतिवाद पहले ही प्रकट कर दिया है जिसमें प्रत्येक जांच अधिकारी द्वारा एक साक्षी की परीक्षा की गई है। अभिलेख से यह प्रकट होता है कि आरोप पत्र तारीख 20 अगस्त, 2011 को फाइल किया गया था। आरोप तारीख 20 दिसम्बर, 2011 को विरचित किए गए थे। विचारण न्यायालय ने तब से आरोप पत्र में उद्धृत कुल 23 साक्षियों में से अब तक केवल तीन साक्षियों की परीक्षा की है। विचारण न्यायालय जिस गति से साक्षियों की परीक्षा कर रहा है उसे देखते हुए विचारण पूरा होने में और पांच वर्ष लग जाएंगे। उच्च न्यायालय ने अपीलाधीन निर्णय में विचारण न्यायालय को विचारण पूरा करने के लिए पांच मास का समय दिया है। उस आदेश से अब तक पन्द्रह मास से अधिक बीत चुके हैं और विचारण कहीं भी पूरा होने की स्थिति में नहीं है। अनुशासनिक कार्यवाहियां अनिश्चितकाल तक लंबी अवधि के लिए स्थगित नहीं रखी जा सकती हैं। ऐसे अत्यधिक विलंब न तो अपीलार्थी-कंपनी के और न ही उन प्रत्यर्थियों के हित में है जो कि निलंबनाधीन हैं और जो निर्वाह-भत्ते पर जीवनयापन कर रहे हैं। मामले में आलिप्त अभियुक्तों की संख्या भी बहुत अधिक है। हम यह सुझाव नहीं दे रहे हैं कि वह घटना मात्र इस कारण मिथ्या मान ली जानी चाहिए कि घटना में इतनी बड़ी संख्या में लोग भागीदार नहीं हो सकते हैं। किन्तु सामान्य प्रवृत्ति जाल का व्यापक रूप से प्रसार करने और ऐसे लोगों को भी आलिप्त करने की है जिनका अपराधों के करने से संबंध नहीं है या जो हालांकि वहां उपस्थित होते हैं किन्तु उन्होंने ऐसा कोई प्रकट कार्य नहीं किया है जिससे यह दर्शित होता हो कि वे जमाव के सामान्य उद्देश्य में भागीदार थे या वे अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के उपद्रवी व्यवहार के लिए उत्तरदायी थे। ऐसे अभियुक्तों के हित की भी, जो कि निर्दोष हों, अनदेखी नहीं की जा सकती है और न ही उन्हें मात्र इस कारण अनिश्चितकाल तक कष्टग्रस्त रखा जा सकता कि कुछ अन्य व्यक्तियों ने कोई अपराध किए हैं।

16. इन परिस्थितियों में और ऊपर उल्लिखित सभी पहलुओं पर विचार करते हुए और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि सभी तीन

निचले न्यायालयों ने चालू अनुशासनिक कार्यवाहियों को रोक देने के पक्ष में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है, हम उक्त आदेश को सीधे ही बातिल करना उपयुक्त नहीं समझते हैं। हमारी राय में, न्याय के हितों की तब पर्याप्त रूप से पूर्ति हो जाएगी यदि हम प्रत्यर्थियों के विरुद्ध दांडिक आरोपों पर कार्यवाही करने वाले न्यायालय को यह निदेश दें कि वे उन कार्यवाहियों को यथासंभव शीघ्र किन्तु हर हालत में इस आदेश की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर पूरा करें। हमें आशा और विश्वास है कि विचारण न्यायालय यह सुनिश्चित करने के लिए प्रभावी कदम उठाएगा कि साक्षियों को तामील किया जाए, वे उपस्थित हों और उनकी परीक्षा कर ली जाए। न्यायालय उस प्रयोजन के लिए मामले को जब भी स्थगन आवश्यक हो, प्रत्येक बार पन्द्रह दिनों से अधिक के लिए स्थगित नहीं कर सकेगा। हम दांडिक मामले में के अभियुक्तों से कार्यवाहियों को शीघ्र पूरा करने में विचारण न्यायालय से सहयोग करने की प्रत्याशा करते हैं। हम ऐसा इसलिए कर रहे हैं क्योंकि अनुभव से यह दर्शित होता है कि विचारण प्रायः साक्षियों की प्रति-परीक्षा करने के लिए प्रतिरक्षा-पक्ष के वकीलों की अनुपलब्धता के कारण या उनके द्वारा तुच्छ आधारों पर ईप्सित स्थगनों के कारण लंबे समय तक लटके रहते हैं। इन सब बातों को रोकने की आवश्यकता है। तथापि, यदि विचारण उन कदमों के बावजूद जिन्हें उठाने के लिए विचारण न्यायालय को निदेश दिया गया है, इस आदेश की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर पूरा नहीं होता है तो प्रत्यर्थियों के विरुद्ध आरंभ की गई अनुशासनिक कार्यवाहियां पुनः आरंभ हो जाएंगी और संबंधित जांच अधिकारी द्वारा पूरी कर ली जाएंगी। उस दशा में आक्षेपित आदेश इस आदेश की तारीख से एक वर्ष की अवधि के अवसान पर बातिल हो जाएंगे।

17. परिणामस्वरूप, हम इन अपीलों को भागतः और ऊपर उपदर्शित सीमा तक मंजूर करते हैं। पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे।

अपीलें भागतः मंजूर की गईं।

ग्रो.

चेन्नई मेट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड और अन्य

बनाम

टी. टी. मुरली बाबू

10 फरवरी, 2014

न्यायमूर्ति एच. एल. गोखले और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 311 – पदच्युति – आनुपातिकता का सिद्धांत – एक कनिष्ठ इंजीनियर द्वारा एक वर्ष और सात मास तक अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहना और अपनी अनुपस्थिति के दौरान नियोजक की संसूचनाओं का उत्तर न देकर अड़ियल रुख अपनाना – पदच्युति का दंड – याची द्वारा धारित पदीय हैसियत और उससे प्रत्याशित अनुशासन को ध्यान में रखते हुए पदच्युति के दंड को अननुपाती नहीं कहा जा सकता है और उसका आभ्यासिक रूप से अनुपस्थित न रहना भी उसके दंड में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं हो सकता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 और 311 – विलंब और प्रमाद – अप्राधिकृत अनुपस्थिति के कारण पदच्युति – पदच्युति को चुनौती देने में चार वर्ष का विलंब – विलंब और प्रमाद के सिद्धांत की अकारण उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए क्योंकि विलंब साम्या के मार्ग में बाधक होता है इसलिए न्यायौचित्य के बिना विलंब को अनदेखा नहीं किया जा सकता है और विलंब के आधार पर आवेदन खारिज किया जा सकता है ।

प्रत्यर्थी को अपीलार्थी-बोर्ड में सर्वेक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में उसे कनिष्ठ इंजीनियर के रूप में प्रोन्नत किया गया था । वह तारीख 28 अगस्त, 1995 से लगातार नियोजक को कोई सूचना दिए बिना कर्तव्य से अनुपस्थित रहा और बार-बार भेजे गए उन ज्ञापनों/अनुस्मारकों का कोई उत्तर नहीं दिया जिनमें उससे यह अपेक्षा की गई थी कि वह कर्तव्य से अप्राधिकृत अनुपस्थिति को स्पष्ट करे और कर्तव्य पर वापस आ जाए । वह तारीख 1 अप्रैल, 1997 को कर्तव्य पर उपस्थित हुआ और तारीख 28 अगस्त, 1995 से 31 मार्च, 1997 तक की अवधि तक अपने कर्तव्य से अनुपस्थिति के लिए चिकित्सा प्रमाणपत्र दिया । चूंकि वह पहले से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था और उसने स्पष्टीकरण देकर ज्ञापनों का कोई उत्तर नहीं दिया था इसलिए चेन्नई

मैट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड एम्पलाइज़ (डिसिप्लिन एंड अपील) विनियम, 1978 के अधीन तारीख 11 सितम्बर, 1996 को एक आरोप पत्र पहले ही जारी कर दिया गया था। आरोप ज्ञापन में दो आरोप अंतर्विष्ट थे, अर्थात्, प्रस्तुत प्रत्यर्थी तारीख 11 अक्टूबर, 1995 के प्रथम ज्ञापन के संबंध में अनुस्मारकों के बावजूद कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में असफल रहा था और दूसरा यह कि उसने तारीख 28 अगस्त, 1995 से कर्तव्य से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहकर अपने पद का अधित्यजन किया था और तद्वारा उसने विनियमों के क्रमशः विनियम 6(1) और विनियम 6(2) के अधीन अवचार कारित किया था। प्रत्यर्थी के विरुद्ध जांच कराई गई थी और जांच में उसका स्पष्टीकरण यह था कि वह स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण कर्तव्य पर उपस्थित नहीं हो सका और प्रथम आरोप ज्ञापन का स्पष्टीकरण नहीं दे सका। जांच अधिकारी ने यह निष्कर्ष निकाला कि आरोप साबित हो गए हैं और तदनुसार उसने जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की जोकि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार कर ली गई थी और सम्यक् प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् तारीख 16 अप्रैल, 1998 को पदच्युति का दंडादेश पारित किया गया था। पदच्युति के आदेश में अनुशासनिक प्राधिकारी ने यह मत व्यक्त किया था कि तारीख 1 अप्रैल, 1997 को चिकित्सा प्रमाणपत्र के विलंब से प्रस्तुत करने के परिणामस्वरूप अप्रतिरोध्य रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्यर्थी कर्मचारी तारीख 28 अगस्त, 1995 से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित था। यह निष्कर्ष भी निकाला गया था कि प्रथम आरोप भी, अर्थात् यह कि उसने पत्रों और अनुस्मारकों का कोई उत्तर नहीं दिया था, साबित हो गया था। अनुशासनिक प्राधिकारी ने यह मत अपनाकर पदच्युति का दंडादेश अधिरोपित करना उचित समझा और उसने ऐसा ही किया। प्रत्यर्थी द्वारा अपील फाइल किए जाने पर बोर्ड ने अपील नामंजूर कर दी। प्रत्यर्थी ने पदच्युति के आदेश और अपील में उसकी पुष्टि से असंतुष्ट होते हुए एक रिट याचिका फाइल की। विद्वान् एकल न्यायाधीश ने एकमात्र इस आधार पर अपील पर पुनर्विचार करने का निदेश दिया कि प्रबंध निदेशक ने, जो कि अनुशासनिक प्राधिकारी था, बोर्ड की उन कार्यवाहियों में भाग लिया था जिसमें अपील पर विनिश्चय किया गया था। उक्त आदेश पारित हो जाने के पश्चात्, मामला पुनः बोर्ड के समक्ष रखा गया था और अपील प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट, अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य पर विचार करने और सम्यक् रूप से विचार-विमर्श करने के पश्चात् अनुशासनिक प्राधिकारी के आदेश को पुष्ट कर दिया और परिणामस्वरूप अपील खारिज कर दी। प्रत्यर्थी ने

पदच्युति के आदेश की पुनः अभिपुष्टि की शिकायत का तारीख 7 जुलाई, 2007 को फाइल की गई रिट याचिका में विरोध किया। विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय द्वारा तथ्यों का वर्णन करने के पश्चात् प्रत्यर्थी के विद्वान् काउन्सेल के इस कथन का उल्लेख किया कि भले ही कर्मचारी कर्तव्य से अनुपस्थित रहा था किन्तु अभित्यजन/अनुपस्थिति का कोई पूर्व अवचार नहीं था और इसलिए प्रथम बार अभित्यजन/अनुपस्थिति के लिए पदच्युति का दंड अत्यंत कठोर और अननुपातिक है और उसमें हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। तदनुसार, एकल न्यायाधीश ने उसकी सेवा की निरन्तरता बनाए रखते हुए किन्तु पिछली मजदूरी के बिना बहाल करने का निदेश दिया। इस आदेश से व्यथित होकर बोर्ड ने रिट अपील फाइल की और खंड न्यायापीठ ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के निष्कर्ष को स्वीकार कर लिया। अपीलार्थी-बोर्ड ने इसके विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की। अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विलंब और प्रमाद के सिद्धांत की अकारण उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। रिट न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह दिए गए स्पष्टीकरण और उसकी स्वीकार्यता को महत्व दे। न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह असाधारण और साम्यापूर्ण अधिकारिता का प्रयोग कर रहा है। सांविधानिक न्यायालय के रूप में उसका यह कर्तव्य है कि नागरिकों के अधिकारों की संरक्षा की जाए किन्तु इसके साथ-साथ उसे स्वयं को इस प्रमुख सिद्धांत से अवगत रखना होगा कि जब कोई व्यथित व्यक्ति पर्याप्त कारण के बिना अपनी सुविधा या प्रसादानुसार न्यायालय में समावेदन करता है तो न्यायालय इस बात की संवीक्षा करने संबंधी विधिक बाध्यता के अधीन होगा कि विलंबित प्रक्रम पर मुकदमेबाजी ग्रहण की जाए अथवा नहीं। यह उल्लेखनीय है कि विलंब साम्या के मार्ग में अड़चन है। कतिपय परिस्थितियों में विलंब और प्रमाद घातक नहीं हो सकता है किन्तु अधिकांश परिस्थितियों में असाधारण विलंब से उस मुकदमेबाज के लिए जो न्यायालय में समावेदन करता है घोर संकट पैदा होगा। विलंब से मुकदमेबाज की ओर से निष्क्रियता और अकर्मण्यता प्रतिबिंबित होती है - ऐसा मुकदमेबाज जो आधारभूत मानकों को भूल गया, अर्थात् टालमटोल करने वाला समय का सबसे बड़ा लुटेरा है, - और द्वितीयतः, विधि किसी व्यक्ति को अमरपक्षी की तरह सोने और जागने की अनुज्ञा नहीं देती। विलंब से खतरा पैदा होता है और मुकदमेबाजी को क्षति कारित होती है। वर्तमान मामले में, यद्यपि न्यायालय में समावेदन करने में चार वर्ष का

विलंब हुआ है तथापि, रिट न्यायालय ने इस ओर ध्यान नहीं दिया । न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह इस बात की संवीक्षा करे कि क्या इतने बड़े विलंब की किसी न्यायौचित्य के बिना अनदेखी की जानी चाहिए । इसके अलावा, प्रस्तुत मामले में ऐसी विलंबित पहल और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि प्रत्यर्थी-कर्मचारी अपने कर्तव्य के प्रति पूर्णतः लापरवाह था और वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति निस्तेज दृष्टिकोण दिखला रहा था और किसी प्रकार की बीमारी के बहाने से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था । हम अंतिम बार पुनः यह कहने के लिए विवश हैं कि ऐसे विलंब के प्रति अहानिकर रूप से बेखबर रहने से न्याय के हित का पोषण नहीं होता है । इसके विपरीत, इससे अन्याय कारित होता है क्योंकि इससे अन्य व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है । ऐसे विलंब से अन्य व्यक्तियों के परिपक्व अधिकार प्रभावित हो सकते हैं और इसके कारण अन्य व्यक्तियों को अनावश्यक रूप से मुकदमेबाजी में धकेला जा सकता है जिसके बारे में संभाव्यता के स्वीकार्य क्षेत्र में यह माना जा सकता है कि उसने अंतिमता प्राप्त कर ली है । न्यायालय से ऐसे अकर्मण्य व्यक्तियों के प्रति उदारता दिखाने की प्रत्याशा नहीं की जाती है जो कुंभकर्ण या इस संबंध में रिप वेन विंकल की बराबरी करते हैं । हमारी सुविचारित राय में, ऐसे विलंब के प्रति कोई उदारता नहीं दिखाई जानी चाहिए और रिट न्यायालय को एकमात्र उक्त आधार पर ही याचिका को प्रारंभ में ही त्यक्त कर देना चाहिए । (पैरा 16)

प्रत्यर्थी काफी लंबे समय तक अनुपस्थित रहा । उसने नियोजक द्वारा किए गए पत्राचार का उत्तर न देने का अड़ियल रुख अपनाया जिस समय वह अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित था । जैसा कि प्रतीत होता है, उसने यह रास्ता इस आशय से अपनाया था कि वह किसी भी अवधि तक अनुपस्थित रह सकता है, किसी भी समय छुट्टी मंजूर करने के लिए आवेदन कर सकता है और अपनी इच्छानुसार न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउन्सेल ने हमें इस संबंध में प्रभावित करने का भरसक प्रयास किया कि वह आभ्यासिक अनुपस्थित रहने वाला नहीं है । हम वास्तव में उक्त निवेदन को भली-भांति समझने में असमर्थ हैं जबकि प्रत्यर्थी लगभग एक वर्ष सात मास तक अनुपस्थित रहा । “आभ्यासिक अनुपस्थिति” के अभाव का अभिवाक् पूर्णतः अस्वीकार्य है और विद्यमान परिस्थितियों में इसे स्वीकार करने की संस्तुति नहीं की जाती है । हम यह समझते हैं कि प्रत्यर्थी ने अपर्याप्त कारण से इतनी लंबी अवधि तक

अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहकर न केवल अनुशासनहीनता दिखाई है बल्कि इससे बच निकलने का प्रयत्न भी किया है। ऐसा आचरण अनुज्ञेय नहीं है और हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि उच्च न्यायालय ने उन नज्जियों का अवलंब लेकर गलती की है जिनमें इस न्यायालय ने दंड में हस्तक्षेप किया था। हमें तनिक भी संदेह नहीं है कि इस प्रकार के मामले को आनुपातिकता का सिद्धांत बिल्कुल भी लागू नहीं होता है। दंड निश्चित रूप से अत्यधिक अननुपाती नहीं है। एक अन्य पहलू का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रत्यर्थी एक कनिष्ठ इंजीनियर था। उसकी पदीय हैसियत को ध्यान में रखते हुए उससे यह प्रत्याशा थी कि वह अनुशासन बनाए रखे, उत्तरदायित्व से कार्य करे, अपने कर्तव्य का सच्चाई से निर्वहन करे और संस्था की ईमानदारी से सेवा करे। इस किस्म के आचरण का समर्थन नहीं किया जा सकता है क्योंकि इससे कार्य संस्कृति में खोखलेपन का सृजन होता है और संगठन में अनुशासनहीनता पैदा होती है। किसी संगठन में कर्मचारियों को न केवल व्यक्तिगत उत्कर्ष प्राप्ति के लिए बल्कि संगठन की सामूहिक भलाई के लिए अनुशासन का पालन करना चाहिए। जब हम ऐसा कहते हैं तो हमारे कहने का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि नियोजकों को किसी अवचार के लिए घोर दंड अधिरोपित करने के लिए कठोर होना चाहिए। किसी संगठन में सौम्य वातावरण से कार्य संस्कृति का विकास होता है और नियोजक और कर्मचारियों से यह प्रत्याशा की जाती है कि वे इस बात को व्यवस्थित विकास के अमूल्य महत्व के रूप में याद रखें। उपर्युक्त आधारों के विवेचन पर, अप्रतिरोध्य निष्कर्ष यह है कि उच्च न्यायालय द्वारा दंड में हस्तक्षेप करना पूर्णतः अनुचित और असंधार्य है और इसके अलावा, उच्च न्यायालय द्वारा चार वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् रिट याचिका ग्रहण करना पूर्णतः अन्यायोचित था। (पैरा 30, 31, 32 और 33)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2012]	(2012) 3 एस. सी. सी. 178 :
कृष्णकांत बी. परमार बनाम भारत संघ और
एक अन्य ;	21
[2009]	(2009) 15 एस. सी. सी. 620 :
अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड और
एक अन्य बनाम मुकुल कुमार चौधरी और अन्य ;	29

- [2009] (2009) 11 एस. सी. सी. 678 :
तुषार डी. भट्ट बनाम गुजरात राज्य और एक अन्य ; 25
- [2009] (2009) 7 एस. सी. सी. 301 :
जगदीश सिंह बनाम पंजाब इंजीनियरिंग
महाविद्यालय ; 7, 19, 20
- [2009] (2009) 7 एम. एल. जे. 1231 :
वी. सेंतुरवेलन बनाम मद्रास उच्च न्यायालय ; 7
- [2008] (2008) 8 एस. सी. सी. 469 :
पंजाब राज्य बनाम डा. पी. एल. सिंगला ; 23, 26
- [2006] (2006) 13 एस. सी. सी. 1 :
भारत सरकार और एक अन्य बनाम जार्ज फिलिप ; 31
- [2005] (2005) 7 एस. सी. सी. 338 :
वी. रमन्ना बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य सड़क
परिवहन निगम ; 7
- [2004] (2004) 4 एस. सी. सी. 560 :
श्री भगवान लाल आर्य बनाम पुलिस आयुक्त,
दिल्ली ; 7, 18, 20
- [1997] (1997) 7 एस. सी. सी. 463 :
भारत संघ और एक अन्य बनाम जी. गणयुथम ; 28
- [1997] (1997) 3 एस. सी. सी. 72 :
इंडियन आयल कारपोरेशन लिमिटेड और
एक अन्य बनाम अशोक कुमार अरोड़ा ; 27
- [1995] (1995) 6 एस. सी. सी. 749 :
बी. सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ ; 7
- [1995] (1995) 4 एस. सी. सी. 683 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम दिगम्बर ; 14
- [1987] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 251 :
मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम नन्दलाल ;
जायसवाल और अन्य ; 15

- [1985] (1985) अपील केसेज़ 374 =
(1984) 3 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 935 :
कौंसिल्स आफ सिविल सर्विस यूनियन्स बनाम
मिनिस्टर फार सिविल सर्विस ; 28
- [1969] [1969] 1 उम. नि. प. 472 =
ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 320 :
महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम बलवंत
रेगुलर मोटर सर्विस, अमरावती और अन्य ; 13
- [1948] (1948) 1 के. बी. 223 =
(1947) 2 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 680 :
एसोसिएटेड प्राविन्शियल पिक्चर हाउसेज़ लिमिटेड
बनाम वेडनसबरी कारपोरेशन ; 28
- [1874] (1874) 5 प्रिवी कौंसिल 221 :
लैंडसे पेट्रोलियम कंपनी बनाम प्रास्पर आर्मस्ट्रॉंग
हर्ड, अब्राम फेयरवाल एंड जान कैम्प । 13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 1941.

2012 की रिट अपील में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 22 नवम्बर, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एस. एस. रे, गुलिया राजन
त्यागी, धीरज गुप्ता और (सुश्री) राखी
राय

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री गौतम नारायण, मुबाशिर
मुश्ताक और स्वामी धर्मेन्द्र
बालयोगी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – इजाजत दी जाती है ।

2. विशेष इजाजत लेकर प्रस्तुत अपील मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 2012 की रिट अपील सं. 2531 में पारित तारीख 22 नवम्बर, 2012 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा खंड न्यायपीठ ने 2007 की रिट याचिका सं. 25673 में तारीख 21 जुलाई,

2011 के उस निर्णय और आदेश को अभिपुष्ट किया है जिसके अधीन विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका मंजूर कर ली थी और पदच्युति के दंडादेश को अपास्त करने के पश्चात् प्रत्यर्थी को सेवा की निरन्तरता के साथ किन्तु पिछली मजदूरी के बिना बहाल करने का निदेश दिया था ।

3. अनावश्यक ब्यौरों को छोड़ते हुए, वे तथ्य जो उजागर हुए हैं ये हैं कि प्रत्यर्थी को चेन्नई मैट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड (जिसे संक्षेप में 'बोर्ड' कहा गया है) में सर्वेक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में उसे वर्ष 1989 में कनिष्ठ इंजीनियर के रूप में प्रोन्नत किया गया था । वह तारीख 28 अगस्त, 1995 से लगातार नियोजक को कोई सूचना दिए बिना कर्तव्य से अनुपस्थित रहा और बार-बार भेजे गए उन ज्ञापनों/अनुस्मारकों का कोई उत्तर नहीं दिया जिनमें उससे यह अपेक्षा की गई थी कि वह कर्तव्य से अप्राधिकृत अनुपस्थिति को स्पष्ट करे और कर्तव्य पर वापस आ जाए । वह तारीख 1 अप्रैल, 1997 को कर्तव्य पर उपस्थित हुआ और तारीख 28 अगस्त, 1995 से 31 मार्च, 1997 तक की अवधि तक अपने कर्तव्य से अनुपस्थिति के लिए चिकित्सा प्रमाणपत्र दिया । चूंकि वह पहले से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था और उसने स्पष्टीकरण देकर ज्ञापनों का कोई उत्तर नहीं दिया था इसलिए चेन्नई मैट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड एम्पलाइज़ (डिसिप्लिन एंड अपील) विनियम, 1978 (जिन्हें संक्षेप में 'विनियम' कहा गया है) के अधीन तारीख 11 सितम्बर, 1996 को एक आरोप पत्र पहले ही जारी कर दिया गया था । आरोप ज्ञापन में दो आरोप अंतर्विष्ट थे, अर्थात्, प्रस्तुत प्रत्यर्थी तारीख 11 अक्टूबर, 1995 के प्रथम ज्ञापन के संबंध में अनुस्मारकों के बावजूद कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में असफल रहा था और दूसरा यह कि उसने तारीख 28 अगस्त, 1995 से कर्तव्य से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहकर अपने पद का अधित्यजन किया था और तद्द्वारा उसने विनियमों के क्रमशः विनियम 6(1) और विनियम 6(2) के अधीन अवचार कारित किया था । यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि आरोप ज्ञापन प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 19 नवम्बर, 1996 को अभिस्वीकार किया गया था तथापि, उसने तारीख 6 जनवरी, 1997 तक, अर्थात् आरोप पत्र जारी किए जाने के काफी समय पश्चात् तक अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया ।

4. जैसा कि तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से आगे प्रकट होगा, प्रत्यर्थी के विरुद्ध जांच कराई गई थी और जांच में उसका स्पष्टीकरण यह था कि वह स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण कर्तव्य पर उपस्थित नहीं हो सका और

प्रथम आरोप ज्ञापन का स्पष्टीकरण नहीं दे सका। जांच अधिकारी ने यह निष्कर्ष निकाला कि आरोप साबित हो गए हैं और तदनुसार उसने जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की जोकि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा स्वीकार कर ली गई थी और सम्यक् प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् तारीख 16 अप्रैल, 1998 को पदच्युति का दंडादेश पारित किया गया था। पदच्युति के आदेश में अनुशासनिक प्राधिकारी ने यह मत व्यक्त किया था कि तारीख 1 अप्रैल, 1997 को चिकित्सा प्रमाणपत्र के विलंब से प्रस्तुत करने के परिणामस्वरूप अप्रतिरोध्य रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्यर्थी कर्मचारी तारीख 28 अगस्त, 1995 से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित था। यह निष्कर्ष भी निकाला गया था कि प्रथम आरोप भी, अर्थात् यह कि उसने पत्रों और अनुस्मारकों का कोई उत्तर नहीं दिया था, साबित हो गया था। अनुशासनिक प्राधिकारी ने यह मत अपनाकर पदच्युति का दंडादेश अधिरोपित करना उचित समझा और उसने ऐसा ही किया।

5. प्रत्यर्थी द्वारा अपील फाइल किए जाने पर बोर्ड ने तारीख 30 जून, 1998 की अपील नामंजूर कर दी। प्रत्यर्थी ने पदच्युति के आदेश और अपील में उसकी पुष्टि से असंतुष्ट होते हुए 1998 की रिट याचिका सं. 15272 फाइल की। विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 12 मार्च, 2003 के आदेश द्वारा एकमात्र इस आधार पर अपील पर पुनर्विचार करने का निदेश दिया कि प्रबंध निदेशक ने, जोकि अनुशासनिक प्राधिकारी था, बोर्ड की उन कार्यवाहियों में भाग लिया था जिसमें अपील पर विनिश्चय किया गया था। उक्त आदेश पारित हो जाने के पश्चात्, मामला पुनः बोर्ड के समक्ष रखा गया था और अपील प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट, अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य पर विचार करने और सम्यक् रूप से विचार-विमर्श करने के पश्चात् अनुशासनिक प्राधिकारी के आदेश को पुष्ट कर दिया और परिणामस्वरूप तारीख 1 जुलाई, 2003 को अपील खारिज कर दी।

6. प्रत्यर्थी ने पदच्युति के आदेश की पुनः अभिपुष्टि की शिकायत का 2007 की रिट याचिका सं. 25673 में विरोध किया जोकि तारीख 7 जुलाई, 2007 को फाइल की गई थी। अपीलार्थी-बोर्ड ने प्रति-शपथपत्र में पदच्युति के आदेश का बचाव करते हुए यह कहा कि कर्मचारी द्वारा दिया गया एकमात्र कारण यह था कि वह कर्तव्य पर इसलिए उपस्थित नहीं हो सका क्योंकि वह लगातार टी. बी. का उपचार करा रहा था और इसके अलावा सितम्बर, 1995 में वह दुर्घटनाग्रस्त हो गया था, जोकि अस्वीकार्य था। इसके अलावा, प्रति-शपथपत्र में यह कथन किया गया था कि उसके

द्वारा तारीख 1 अप्रैल, 1997 को चिकित्सा प्रमाणपत्रों का एक पुंज प्रस्तुत किया गया था जिनमें यह उल्लेख किया गया था कि वह अवसादक मनोविकृति और श्वासनली शोथ से ग्रस्त था और उन चिकित्सा प्रमाणपत्रों में सितम्बर, 1995 में हुई किसी दुर्घटना और उसे पहुंची क्षति तथा उसके द्वारा कराए गए उपचार का कोई उल्लेख नहीं था।

7. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय द्वारा तथ्यों का वर्णन करने के पश्चात् प्रत्यर्थी के विद्वान् काउन्सेल के इस कथन का उल्लेख किया कि भले ही कर्मचारी कर्तव्य से अनुपस्थित रहा था किन्तु अभित्यजन/अनुपस्थिति का कोई पूर्व अवचार नहीं था और इसलिए प्रथम बार अभित्यजन/अनुपस्थिति के लिए पदच्युति का दंड अत्यंत कठोर और अननुपातिक है और उसमें हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। विद्वान् एकल न्यायाधीश ने किसी अन्य पहलू का उल्लेख नहीं किया था और श्री भगवान लाल आर्य बनाम पुलिस आयुक्त, दिल्ली¹, बी. सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ², वी. रमन्ना बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम³, जगदीश सिंह बनाम पंजाब इंजीनियरिंग महाविद्यालय⁴ वाले मामलों में के विनिश्चयों और वी. सेंटुरवेलन बनाम मद्रास उच्च न्यायालय⁵ वाले मामले में खंड न्यायपीठ के निर्णय के प्रति निर्देश किया और इस प्रकार राय व्यक्त की :-

“10. इस मामले के तथ्यों को उक्त निर्णय लागू करने और प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए प्रत्युत्तर पर विचार करने पर, जिसमें यह नहीं कहा गया है कि क्या याची ने किसी पूर्व अवसर पर अभित्यजन किया है/अनुपस्थित रहा है, इस न्यायालय का यह मत है कि यह रिट याचिका मंजूर की जानी चाहिए।

11. यह रिट याचिका प्रत्यर्थी को यह निदेश देने के साथ मंजूर की जाती है कि याची को इस आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से चार सप्ताह के भीतर सेवा की निरन्तरता बनाए रखते हुए किन्तु पिछली मजदूरी के बिना बहाल किया जाए।”

8. पूर्वोक्त आदेश से व्यथित होकर बोर्ड ने 2012 की रिट अपील सं.

¹ (2004) 4 एस. सी. सी. 560.

² (1995) 6 एस. सी. सी. 749.

³ (2005) 7 एस. सी. सी. 338.

⁴ (2009) 7 एस. सी. सी. 301.

⁵ (2009) 7 एम. एल. जे. 1231.

2531 फाइल की और खंड न्यायपीठ ने इस प्रकार कथन करते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश के निष्कर्ष को स्वीकार कर लिया :-

“इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी/रिट याची उक्त अवधि के दौरान अस्वस्थ था यद्यपि जारी किए गए प्रमाणपत्र की तारीख में कुछ त्रुटियां हो सकती हैं तथापि, अपीलार्थी द्वारा इस बात का खंडन नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी/रिट याची अवसादक मनोविकृति और श्वासनली शोथ से पीड़ित था । इसके अलावा, इस संबंध में भी विवाद नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी/रिट याची को उसकी नियुक्ति की तारीख से अब तक अपीलार्थी बोर्ड की सेवा के दौरान इससे पूर्व कोई दंड नहीं दिया गया था । अतः, इन परिस्थितियों में अप्राधिकृत अनुपस्थिति के आरोप के लिए सेवा से हटाने का दंड अधिरोपित करना अत्यंत कठोर और अयुक्तिसंगत होगा क्योंकि ऐसा दंड गंभीर प्रकृति के कार्यों के लिए या निरन्तर अवचार के संचयी प्रभाव के रूप में या ऐसे अन्य कारणों से दिया जाता है जहां आरोप अत्यंत गंभीर होते हैं और जहां यदि भ्रष्टाचार का आरोप साबित हो जाता है । स्वीकृततः, प्रत्यर्थी/रिट याची के विरुद्ध ऐसा कोई अभिकथन नहीं है । इसके अलावा, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने पदच्युति के आदेश को अपास्त करते समय प्रत्यर्थी/रिट याची को पिछली मजदूरी देने से इनकार करके सही किया है क्योंकि प्रत्यर्थी/रिट याची सुसंगत अवधि के दौरान कर्तव्य का निर्वहन करने में असफल रहा है ।” (अधोरेखांकन हमने किया है)

9. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेलों की सुनवाई की है और अभिलेख पर लाई गई सामग्री का परिशीलन किया है ।

10. विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए विनिश्चय तथा खंड न्यायपीठ के विनिश्चय की सूक्ष्म संवीक्षा करने पर यह स्पष्टतया प्रदर्शित होता है कि इस मुद्दे के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है कि क्या प्रत्यर्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोप साबित हुए थे अथवा नहीं । यह प्रत्यक्ष है कि रिट न्यायालय के समक्ष या अंतर-न्यायालयीय अपील में उक्त मुद्दे पर कोई बहस नहीं हुई थी और इसलिए हम यह कहने के लिए बाध्य हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष जो एकमात्र पहलू वास्तव में प्रस्तुत किया गया था उसका संबंध आरोपों की प्रकृति और दंड की आनुपातिकता से है । इसलिए, हम अपने विश्लेषण को उक्त सीमित क्षेत्र के संबंध में और उस अतिरिक्त पहलू तक सीमित रखेंगे जो अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल ने हमारे समक्ष प्रबल रूप से

प्रस्तुत किया है, अर्थात्, प्रत्यर्थी द्वारा उच्च न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेने के संबंध में विलंबित पहल ।

11. प्रत्यर्थी-कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप निम्न प्रकार हैं :-

“आरोप सं. 1 :

यह कि वह इस कार्यालय के तारीख 11 अक्टूबर, 1995 के ज्ञापन के संबंध में तारीख 20 जनवरी, 1996 और 23 अप्रैल, 1996 के अनुस्मारकों के बावजूद स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में असफल रहा है जिससे उसकी वरिष्ठ अधिकारियों के आदेश की अवज्ञा स्पष्ट रूप से दर्शित होती है और यह चेन्नई मैट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड एम्पलाइज़ (डिसिप्लिन एंड अपील) विनियम, 1978 के विनियम 6(1) के अधीन अवचार की कोटि में आता है ।

आरोप सं. 2 :

यह कि उसने तारीख 28 अगस्त, 1995 से पद का अधित्यजन किया है और वह कर्तव्य से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा है जो कि चेन्नई मैट्रोपोलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड एम्पलाइज़ (डिसिप्लिन एंड अपील) विनियम, 1978 के विनियम 6(1) के अधीन अवचार की कोटि में आता है ।”

12. इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि जांच अधिकारी ने यह पाया कि दोनों आरोप साबित हो गए हैं । अनुशासनिक प्राधिकारी ने इसके लिए कारण दिए थे और पदच्युति का आदेश पारित किया था । पदच्युति के आदेश का परिशीलन करने से यह सुस्पष्ट होता है कि चिकित्सा प्रमाणपत्र विलंब से प्रस्तुत किया गया था और वह तारीख 28 अगस्त, 1995 से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था । जो प्रश्न उद्भूत होता है वह यह है कि जब लंबी अवधि तक अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहने के आरोप साबित हो गए थे तब क्या उच्च न्यायालय के लिए आनुपातिकता के सिद्धांत का अवलंब लेना और सेवा में बहाल करने का निदेश देना न्यायोचित था । इसके अलावा, उच्च न्यायालय द्वारा जिस एक पहलू पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है वह यह है कि प्रत्यर्थी ने चार वर्ष पश्चात् उच्च न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लिया था ।

13. प्रथमतः हम विलंब के पहलू पर विचार करेंगे । महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम बलवंत रेगुलर मोटर सर्विस, अमरावती और

अन्य¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने उस सिद्धांत के प्रति निर्देश किया था जिसका कथन सर बार्नेस पीकाक द्वारा लिंडसे पेट्रोलियम कंपनी बनाम प्रास्पर आर्मस्ट्रांग हर्ड, अब्राम फेयरवाल एंड जान कैम्प² वाले मामले में किया गया है जोकि निम्नलिखित रूप में है :-

“इक्विटी न्यायालयों में अब प्रमाद का सिद्धांत कोई स्वैच्छिक या प्राविधिक सिद्धांत नहीं है। जहां कोई उपचार प्रदान करना या तो इस कारण व्यावहारिक रूप से अन्यायपूर्ण होगा कि पक्षकार ने अपने आचरण द्वारा जो कुछ किया है उसे उचित रूप से उसके अभित्यजन के समतुल्य माना जा सकता है अथवा जहां अपने आचरण या उपेक्षा द्वारा यद्यपि उसने संभवतः उस उपचार का अभित्यजन न भी किया हो तो भी उसने दूसरे पक्षकार को ऐसी स्थिति में रख दिया है कि यदि उस उपचार का बाद में प्राख्यान किया जाए तो उसका स्थापन युक्तियुक्त नहीं होगा। किन्तु इन दोनों मामलों में से हर एक में समय का व्यपगमन और विलंब सर्वाधिक तात्त्विक है किन्तु हर मामले में यदि अनुतोष के विरुद्ध दिए जाने वाले तर्क को जो अन्यथा न्यायसंगत होगा, केवल विलंब की बात पर आधारित किया जाता है और वह विलंब परिसीमा संबंधी किसी कानून के अनुसार वस्तुतः वर्जन की कोटि में नहीं आता है तो उस प्रतिरक्षा की विधिमान्यता का विचारण ऐसे सिद्धांतों के आधार पर किया जाना चाहिए जो सारतः साम्यापूर्ण हो। ऐसे मामलों में जो दो परिस्थितियां सदा महत्वपूर्ण होती हैं वे हैं विलंब की अवधि और उस अंतरावधि के दौरान किए गए कार्यों की प्रकृति जिनका दोनों में से किसी भी पक्षकार पर प्रभाव पड़ सकता हो और जहां तक उस उपचार का संबंध है, एक अथवा दूसरा मार्ग ग्रहण करने में अन्याय अथवा न्याय का संतुलन होता हो।”

14. महाराष्ट्र राज्य बनाम दिगम्बर³ वाले मामले में, इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय की शक्ति के प्रयोग के संबंध में विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया था कि उच्च न्यायालय की शक्ति का प्रयोग संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन तभी किया जाना चाहिए यदि वह वैवेकिक हो, इसका प्रयोग न्यायसंगत और

¹ [1969] 1 उम. नि. प. 472 = ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 320.

² (1874) 5 प्रिवी कौंसिल 221.

³ (1995) 4 एस. सी. सी. 683.

युक्तिसंगत होना चाहिए और उसमें कोई संविवाद नहीं होना चाहिए। इसी कारण संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय से अनुतोष प्राप्त करने की किसी व्यक्ति की हकदारी, चाहे वह राज्य के विरुद्ध हो या किसी अन्य व्यक्ति के विरुद्ध, भले ही वह उसके विधिक अधिकार के अतिलंघन के अभिकथन पर आधारित हो, आवश्यक रूप से अनुतोष ईप्सा करने वाले व्यक्ति के अनिंदनीय आचरण पर निर्भर होनी चाहिए और न्यायालय ऐसी शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसे व्यक्ति को वैकेिक अनुतोष प्रदान करने से इनकार करता है जब वह दूषित तरीके से या निंदनीय आचरण से समावेदन करता है।

15. मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम नन्दलाल जायसवाल और अन्य¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि यह सुस्थापित है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन समुचित रिट जारी करने संबंधी उच्च न्यायालय की शक्ति वैकेिक है और उच्च न्यायालय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय साधारणतया सुस्त और आलसी या समनुमत और निश्चेष्ट व्यक्तियों की सहायता नहीं करता है। उस मामले में आगे यह कहा गया है कि यदि याची की ओर से याचिका फाइल करने में असाधारण विलंब हुआ है और ऐसे विलंब को समाधानप्रद रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है तो उच्च न्यायालय हस्तक्षेप करने और अपनी रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर सकता है। विलंब और प्रमाद के सिद्धांत पर यह कहते हुए जोर दिया गया था कि विलंबित प्रक्रम पर रिट अधिकारिता के अधीन असाधारण उपचार का अवलंब लेने से भ्रम और लोक असुविधा कारित होने और अन्याय होने की संभावना है।

16. अतः, विलंब और प्रमाद के सिद्धांत की अकारण उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। रिट न्यायालय से यह अपेक्षित है कि वह दिए गए स्पष्टीकरण और उसकी स्वीकार्यता को महत्व दे। न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह असाधारण और साम्यापूर्ण अधिकारिता का प्रयोग कर रहा है। सांविधानिक न्यायालय के रूप में उसका यह कर्तव्य है कि नागरिकों के अधिकारों की संरक्षा की जाए किन्तु इसके साथ-साथ उसे स्वयं को इस प्रमुख सिद्धांत से अवगत रखना होगा कि जब कोई व्यथित व्यक्ति पर्याप्त कारण के बिना अपनी सुविधा या प्रसादानुसार न्यायालय में समावेदन करता है तो न्यायालय इस बात की संवीक्षा करने संबंधी विधिक

¹ ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 251.

बाध्यता के अधीन होगा कि विलंबित प्रक्रम पर मुकदमेबाजी ग्रहण की जाए अथवा नहीं। यह उल्लेखनीय है कि विलंब साम्या के मार्ग में अड़चन है। कतिपय परिस्थितियों में विलंब और प्रमाद घातक नहीं हो सकता है किन्तु अधिकांश परिस्थितियों में असाधारण विलंब से उस मुकदमेबाज के लिए जो न्यायालय में समावेदन करता है घोर संकट पैदा होगा। विलंब से मुकदमेबाज की ओर से निष्क्रियता और अकर्मण्यता प्रतिबिंबित होती है - ऐसा मुकदमेबाज जो आधारभूत मानकों को भूल गया, अर्थात् टालमटोल करने वाला समय का सबसे बड़ा लुटेरा है, - और द्वितीयतः, विधि किसी व्यक्ति को अमरपक्षी की तरह सोने और जागने की अनुज्ञा नहीं देती। विलंब से खतरा पैदा होता है और मुकदमेबाजी को क्षति कारित होती है। वर्तमान मामले में, यद्यपि न्यायालय में समावेदन करने में चार वर्ष का विलंब हुआ है तथापि, रिट न्यायालय ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह इस बात की संवीक्षा करे कि क्या इतने बड़े विलंब की किसी न्यायौचित्य के बिना अनदेखी की जानी चाहिए। इसके अलावा, प्रस्तुत मामले में ऐसी विलंबित पहल और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि प्रत्यर्थी-कर्मचारी अपने कर्तव्य के प्रति पूर्णतः लापरवाह था और वह अपने उत्तरदायित्व के प्रति निस्तेज दृष्टिकोण दिखला रहा था और किसी प्रकार की बीमारी के बहाने से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था। हम अंतिम बार पुनः यह कहने के लिए विवश हैं कि ऐसे विलंब के प्रति अहानिकर रूप से बेखबर रहने से न्याय के हित का पोषण नहीं होता है। इसके विपरीत, इससे अन्याय कारित होता है क्योंकि इससे अन्य व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है। ऐसे विलंब से अन्य व्यक्तियों के परिपक्व अधिकार प्रभावित हो सकते हैं और इसके कारण अन्य व्यक्तियों को अनावश्यक रूप से मुकदमेबाजी में धकेला जा सकता है जिसके बारे में संभाव्यता के स्वीकार्य क्षेत्र में यह माना जा सकता है कि उसने अंतिमता प्राप्त कर ली है। न्यायालय से ऐसे अकर्मण्य व्यक्तियों के प्रति उदारता दिखाने की प्रत्याशा नहीं की जाती है जो कुंभकर्ण या इस संबंध में रिप वेन विंकल की बराबरी करते हैं। हमारी सुविचारित राय में, ऐसे विलंब के प्रति कोई उदारता नहीं दिखाई जानी चाहिए और रिट न्यायालय को एकमात्र उक्त आधार पर ही याचिका को प्रारंभ में ही त्यक्त कर देना चाहिए।

17. विलंब और प्रमाद के सिद्धांत पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् अब हम आनुपातिकता के सिद्धांत पर विचार करेंगे जिसका अवलंब उच्च न्यायालय द्वारा विद्यमान तथ्यात्मक सामग्री को ध्यान में रखते हुए लिया

गया है। हम ऐसी कुछ नजीरों के प्रति निर्देश करना उचित समझते हैं जिनका उच्च न्यायालय द्वारा अवलंब लिया गया है।

18. **श्री भगवान लाल आर्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि अप्राधिकृत अनुपस्थिति गंभीर अवचार नहीं था चूंकि कर्मचारी अपने स्वास्थ्य की खराब स्थिति के कारण बाध्य होकर छुट्टी पर गया था। यह उल्लेखनीय है कि उक्त मामले में यह मत भी व्यक्त किया गया है कि कोई भी युक्तिसंगत अनुशासनिक प्राधिकारी सरकारी डाक्टरों के उचित चिकित्सा प्रमाणपत्र सहित चिकित्सीय आधारों पर हुई अनुपस्थिति को गंभीर अवचार नहीं मानेगा।

19. **जगदीश सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में रखा कि उस मामले में अपीलार्थी एक झाड़ूकश (स्वीपर) था और वह दो मास में चार अवसरों पर कुल पन्द्रह दिनों तक अनुपस्थित रहा था। उस संदर्भ में, न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :-

“वर्तमान मामला आभ्यासिक अनुपस्थित रहने का नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि झाड़ूकश (स्वीपर) के रूप में सेवा में प्रवेश करने की तारीख से अपीलार्थी का पूर्ववृत्त अच्छा रहा है। वह अपने लंबे सेवाकाल में फरवरी और मार्च, 2004 के मासों में चार अवसरों पर पन्द्रह दिनों के लिए अनुपस्थित रहा था। यह अनुपस्थिति प्रमुखतः उसकी पुत्री और उसके ससुराल वालों के बीच चल रही समस्या को निपटाने के लिए हुई थी। संतानीय बंधन और भावात्मक लगाव नियोजक से छुट्टी के लिए आवेदन करने और मंजूरी लेने के मार्ग में बाधक रहे होंगे। हमारी राय में, अभिकथित अवचार निश्चित रूप से उस अनुशासन के अतिक्रमण की कोटि में आएगा जिसे बनाए रखने की प्रत्याशा किसी कर्मचारी से की जाती है किन्तु यह अनुशासन के घोर अतिक्रमण के प्रवर्ग में नहीं आ सकता है। हम यह जोड़ना आवश्यक समझते हैं कि यदि यह आभ्यासिक अनुपस्थित रहने का मामला होता तो हम इस अपील को ग्रहण करने का साहस नहीं करते।”

20. यदि दोनों विनिश्चयों को समुचित रूप से समझा जाए तो दो पहलू स्पष्ट रूप से उद्भूत होते हैं। **श्री भगवान लाल आर्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिया, अर्थात् किसी सरकारी चिकित्सा डाक्टर से उचित चिकित्सा प्रमाणपत्र प्रस्तुत

करना, और अवचार की प्रकृति और **जगदीश सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में अनुपस्थिति की अवधि, कर्मचारी की हैसियत और उसका पूर्ववृत्त और उसके द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के संबंध में राय दी। वर्तमान मामले में, तथ्यात्मक स्थिति भिन्न होने के कारण, जिसका उल्लेख हम बाद में करेंगे, उपर्युक्त नजीर से प्रत्यर्थी को वास्तव में कोई सहायता नहीं मिलती है।

21. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउन्सेल ने इस बात पर जोर देने के लिए जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष या अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा किए गए इस अवधारण के अभाव में कि अप्राधिकृत अनुपस्थिति जानबूझकर थी, आरोप के बारे में यह नहीं माना जा सकता है कि वह साबित हो गया है, **कृष्णाकांत बी. परमार बनाम भारत संघ और एक अन्य**¹ वाले मामले में के विनिश्चय के बारे में हमारी प्रशंसा की। उक्त निवेदन का मूल्यांकन करने के लिए हमने उक्त नजीर का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया। उक्त मामले में, प्रश्न यह उद्भूत हुआ था कि क्या “कर्तव्य से अप्राधिकृत अनुपस्थिति”, “कर्तव्य-निष्ठा की असफलता” या “किसी सरकारी सेवक के लिए अशोभनीय व्यवहार” की कोटि में आती थी चूंकि उस मामले में अपीलार्थी पर कर्तव्य-निष्ठा बनाए रखने में असफलता और सरकारी सेवक के लिए उसके अशोभनीय व्यवहार के कारण आरोप पत्र तामील किया गया था। दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने विधिक स्थिति का उल्लेख करने के पश्चात् इस प्रकार मत व्यक्त किया :-

“16. अपीलार्थी के मामले में, अनुशासनिक प्राधिकारी ने अप्राधिकृत अनुपस्थिति के प्रति निर्देश करते हुए यह अभिकथित किया कि वह कर्तव्य-निष्ठा बनाए रखने में असफल रहा और उसका व्यवहार सरकारी सेवक के लिए अशोभनीय था। इस प्रश्न का विनिश्चय कि क्या “कर्तव्य से अप्राधिकृत अनुपस्थिति” कर्तव्य-निष्ठा में असफलता या सरकारी सेवक होने के लिए अशोभनीय व्यवहार की कोटि में आती है, इस प्रश्न का विनिश्चय किए बिना नहीं किया जा सकता कि क्या अनुपस्थिति जानबूझकर थी या बाध्यकर परिस्थितियों के कारण थी।

17. यदि अनुपस्थिति ऐसी बाध्यकर परिस्थितियों के परिणामस्वरूप है जिनके अधीन कर्तव्य पर आना या कर्तव्य पालन करना संभव नहीं था तो ऐसी अनुपस्थिति को जानबूझकर की गई

¹ (2012) 3 एस. सी. सी. 178.

अनुपस्थिति नहीं ठहराया जा सकता है। किसी आवेदन या पूर्व अनुज्ञा के बिना कर्तव्य से अनुपस्थिति अप्राधिकृत अनुपस्थिति हो सकती है किन्तु सदैव इसका अभिप्राय जानबूझकर अनुपस्थिति नहीं होता है। ऐसी विभिन्न आकस्मिकताएं हो सकती हैं जिनके कारण कोई कर्मचारी कर्तव्य से अनुपस्थित रह सकता है जिनमें ऐसी बाध्यकर परिस्थितियां भी हैं जो उसके नियंत्रण से परे हैं, जैसे बीमारी, दुर्घटना, अस्पताल में भर्ती होना, इत्यादि किन्तु ऐसी दशा में कर्मचारी को कर्तव्य-निष्ठा में असफलता या सरकारी सेवक होने के लिए अशोभनीय व्यवहार का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

18. किसी विभागीय कार्यवाही में, यदि कर्तव्य से अप्राधिकृत अनुपस्थिति का अभिकथन किया जाता है तो अनुशासनिक प्राधिकारी के लिए यह साबित करना अपेक्षित है कि अनुपस्थिति जानबूझकर है, ऐसे निष्कर्ष के अभाव में वह अनुपस्थिति अवचार की कोटि में नहीं आएगी।”

22. हमने यह उद्धरण विस्तारपूर्वक इसलिए दिया है क्योंकि हम यह समझने के लिए प्रेरित हुए हैं कि न्यायालय ने कर्तव्य-निष्ठा की असफलता या सरकारी सेवक होने के लिए अशोभनीय व्यवहार के आरोप पर विचार करते समय ऊपरकथित मत व्यक्त किया है और इसके आगे विद्वान् न्यायाधीशों ने यह भी राय व्यक्त की है कि ऐसी बाध्यकर परिस्थितियां हो सकती हैं जो किसी कर्मचारी के नियंत्रण से परे हों। इसके अलावा, उक्त मामले में के तथ्य भिन्न थे क्योंकि अपीलार्थी को कतिपय अवसरों पर हाजिरी रजिस्टर में हस्ताक्षर करने से निवारित किया गया था और अनुपस्थिति आंतरायिक थी। इसके पूर्णतः विपरीत इसमें यह कहा गया है कि अनुशासनिक प्राधिकारी की ओर से इस निष्कर्ष पर पहुंचना आबद्धकर है कि अनुपस्थिति जानबूझकर है। इस निर्णय को उचित रूप से समझने पर हमारी यह राय है कि उक्त मामले में व्यक्त मत को विधिक स्थिति, कर्मचारी के विरुद्ध लगाए गए आरोप की प्रकृति और उस सामग्री को ध्यान में रखते हुए जो जांच के दौरान अभिलेख पर आई थी, उक्त मामले के तथ्यों तक निर्बंधित करना होगा। विधि की आत्यंतिक प्रतिपादना के रूप में यह नहीं कहा जा सकता है कि जब कभी लंबी अप्राधिकृत अनुपस्थिति होती है तब अनुशासनिक प्राधिकारी के लिए यह निष्कर्ष लेखबद्ध करना बाध्यकर होता है कि उक्त अनुपस्थिति जानबूझकर थी भले ही कर्मचारी अनुपस्थित रहने संबंधी बाध्यकारी परिस्थितियां दर्शाने में असफल रहता है।

23. इस संदर्भ में, अप्राधिकृत अनुपस्थिति से संबंधी कतिपय अन्य नजीरों और इस न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत के प्रति निर्देश करना उचित है। पंजाब राज्य बनाम डा. पी. एल. सिंगला¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने अप्राधिकृत अनुपस्थिति पर विचार करते हुए इस प्रकार मताभिव्यक्ति की है :-

“अप्राधिकृत अनुपस्थिति (या छुट्टी के उपरांत अनुपस्थित रहना) अनुशासनहीनता का कार्य है। जब कभी कोई कर्मचारी अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहता है तब नियोजक के लिए दो मार्ग खुले होते हैं। पहला यह है कि स्पष्टीकरण को स्वीकार करके अप्राधिकृत अनुपस्थिति को माफ करना और अप्राधिकृत अनुपस्थिति की अवधि के लिए छुट्टी मंजूर करना और इस स्थिति में अवचार माफ हो जाता है। दूसरा मार्ग अप्राधिकृत अनुपस्थिति को अवचार मानना, जांच कराना और अवचार के लिए दंड अधिरोपित करना।”

24. इसके आगे, दंड की संकल्पना पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया :-

“जहां ऐसा कर्मचारी, जो अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा है, कर्तव्य पर उपस्थित नहीं होता और कोई संतोषप्रद स्पष्टीकरण नहीं देता या कर्मचारी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण संतोषप्रद नहीं होता है वहां नियोजक अप्राधिकृत अनुपस्थिति के संबंध में अनुशासनिक कार्रवाई करने का अवलंब लेगा। ऐसी अनुशासनिक कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप दंड अधिरोपित किया जा सकता है जो कि पदच्युति या सेवा से हटाने जैसी मुख्य शास्ति से लेकर संचयी प्रभाव के बिना वेतनवृद्धियां रोकने जैसी गौण शास्ति हो सकती है। शास्ति की मात्रा सेवा की प्रकृति, कर्मचारी द्वारा धारित हैसियत, अनुपस्थिति की अवधि और अनुपस्थिति के लिए कारण/स्पष्टीकरण पर निर्भर करेगी।”

25. तुषार डी. भट्ट बनाम गुजरात राज्य और एक अन्य² वाले मामले में अपीलार्थी छह मास की अवधि तक अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा था और इसके अलावा उसने धमकी भरे पत्र भी लिखे थे और अवचार के कुछ अन्य कार्य भी किए थे। अंततोगत्वा, कर्मचारी को पदच्युति के आदेश की तामील की गई थी और उच्च न्यायालय ने उसका अनुमोदन

¹ (2008) 8 एस. सी. सी. 469.

² (2009) 11 एस. सी. सी. 678.

कर दिया था। न्यायालय ने अपीलार्थी के आचरण पर टिप्पणी करते हुए यह कहा कि उसका छह मास से अधिक समय तक शासकीय कर्तव्य से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहना न्यायोचित नहीं था क्योंकि किसी संस्था या संगठन के अनुशासन के हित में कर्मचारी के ऐसे दृष्टिकोण और व्यवहार का समर्थन नहीं किया जा सकता है।

26. अतः, किसी कर्मचारी की अप्राधिकृत अनुपस्थिति को अवचार के रूप में दंड के अधिरोपण के लिए किसी निश्चित फार्मूले के भीतर नहीं रखा जा सकता है। यह कई कारकों पर निर्भर करेगा, जैसा कि **डा. पी. एल. सिंगला** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित किया गया है।

27. अब हम इस बात की संवीक्षा करेंगे कि क्या उच्च न्यायालय का आनुपातिकता का सिद्धांत लागू करना न्यायोचित था। सेवा में दंड के अधिरोपण के संदर्भ में आनुपातिकता का सिद्धांत तब लागू होता है जब न्यायालय अभिलेख पर लाई गई सामग्री का विश्लेषण करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अनुशासनिक प्राधिकारी या अपील प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित दंड से न्यायालय की अंतरात्मा को ठेस पहुंचती है। इस संबंध में **इंडियन आयल कारपोरेशन लिमिटेड और एक अन्य बनाम अशोक कुमार अरोड़ा**¹ वाले निर्णय से पद्धांश उद्धृत करना लाभप्रद है :-

“प्रारंभ में, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि उच्च न्यायालय विभागीय जांचों और उनमें लेखबद्ध निष्कर्षों के ऐसे मामलों में अपील न्यायालय/प्राधिकारी की शक्तियों का प्रयोग नहीं करता है। ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय की अधिकारिता काफी सीमित होती है उदाहरणार्थ, जहां यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि विभागीय जांच नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अननुपालन, युक्तियुक्त अवसर के प्रत्याख्यान के कारण दूषित है; वहां निष्कर्ष साक्ष्य न होने पर आधारित नहीं है, और/या दंड किसी कर्मचारी के साबित अवचार के पूर्णतः अननुपात में है।”

28. **भारत संघ और एक अन्य बनाम जी. गणयुथम**² वाले मामले में इस न्यायालय ने इंग्लैंड और भारत में प्रशासनिक विधि में आनुपातिकता की अवधारणा का विश्लेषण किया और इसके पश्चात् अनुशासन संबंधी मामलों में दंड के संबंध में विचार किया और यह राय व्यक्त की कि जब

¹ (1997) 3 एस. सी. सी. 72.

² (1997) 7 एस. सी. सी. 463.

तक न्यायालय/अधिकरण अपनी गौण भूमिका में यह राय नहीं अपनाता है कि प्रशासक अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर **एसोसिएटेड प्राविन्शियल पिक्चर हाउसेज़ लिमिटेड बनाम वेडनसबरी कारपोरेशन¹** और **कौंसिल्स आफ सिविल सर्विस यूनियन्स बनाम मिनिस्टर फार सिविल सर्विस²** वाले निर्णय के मानकों के अनुसार अतर्कसंगत था तब तक दंड अभिखंडित नहीं किया जा सकता है ।

29. **अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड और एक अन्य बनाम मुकुल कुमार चौधरी और अन्य³** वाले मामले में इस न्यायालय ने आनुपातिकता के सिद्धांत का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करने के पश्चात् इस प्रकार निर्णय दिया :-

“19. अतः, हमारे विधिशास्त्र में आनुपातिकता का सिद्धांत न्यायिक पुनर्विलोकन की सुमान्य अवधारणा है । जो बात अन्यथा विनिश्चयकर्ता के वैवेकिक क्षेत्र और उसकी एकमात्र शक्ति के भीतर दंड को तब परिमाणित करना है जैसे ही अवचार का आरोप साबित हो जाता है, ऐसी वैवेकिक शक्ति न्यायिक हस्तक्षेप के अधीन आ जाती है यदि उसका प्रयोग ऐसी रीति में किया जाता है जो कि दोष के अननुपात में है । दंड का ऐसा अधिनिर्णय, जो कि अभिकथनों के घोर आधिक्य में है । उन्मुक्ति का दावा नहीं कर सकता और वह न्यायिक पुनर्विलोकन की सीमित परिधि के अधीन हस्तक्षेप के लिए विचाराधीन रहता है ।

20. दंड की मात्रा के प्रश्न पर विचार करते समय लागू की जाने वाली कसौटियों में से एक कसौटी यह होगी : क्या कोई युक्तिसंगत नियोजक ऐसी ही परिस्थितियों में ऐसा दंड अधिरोपित करेगा ? निश्चित रूप से, किसी युक्तिसंगत नियोजक से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह अवचार की मात्रा, गहनता और परिमाण और अन्य सभी सुसंगत परिस्थितियों पर विचार करे और दंड अधिरोपित करने से पूर्व असंगत विषयों को अपवर्जित करे ।

21. प्रस्तुत मामले जैसे मामले में, जहां अपचारी का अवचार छह मास तक कर्तव्य से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहना था

¹ (1948) 1 के. बी. 223 = (1947) 2 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 680.

² (1985) अपील केसेज़ 374 = (1984) 3 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 935.

³ (2009) 15 एस. सी. सी. 620.

किन्तु ऐसे अवचार के लिए आरोपित किए जाने पर उसने ऋजुपूर्वक अपना दोष स्वीकार कर लिया और यह कहते हुए अपनी अनुपस्थिति के लिए कारण स्पष्ट किया कि उसका आशय उच्चतर प्राधिकारी के आदेश की अवज्ञा करना या कंपनी के किसी नियम और विनियम का अतिक्रमण करना नहीं था और न ही उसकी ऐसी वांछ थी बल्कि उसका कारण पूर्णतः व्यक्तिगत था और वह उसके नियंत्रण से परे था और वास्तव में उसने अपना त्यागपत्र भेजा था जो कि स्वीकार नहीं किया गया था, सेवा से हटाने वाले आदेश को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है चूंकि हमारे निर्णयानुसार, कोई भी युक्तिसंगत नियोजक ऐसी ही परिस्थितियों में सेवा से हटाने जैसा कठोर दंड अधिरोपित नहीं करता। दंड न केवल असम्यक् रूप से कठोर है बल्कि प्रचुर रूप से अभिकथनों के अनाधिक्य में है।”

30. इस प्रकार कथन करने के पश्चात् दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इसके आगे यह कहा कि दंड की मात्रा के प्रश्न पर विचार करते समय लागू की जाने वाली कसौटियों में से एक कसौटी यह है कि क्या कोई युक्तिसंगत नियोजक ऐसी ही परिस्थितियों में अवचार की मात्रा, गहनता और परिमाण और अन्य सभी सुसंगत परिस्थितियों को विचार में रखते हुए और दंड अधिरोपित करने से पूर्व असंगत विषयों को अपवर्जित करते हुए ऐसा दंड अधिरोपित करेगा। यहां यह उल्लेख करना उपयुक्त है कि उक्त मामले में प्रत्यर्था छह मास के लिए कर्तव्य से अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहा और उसने अपना दोष स्वीकार कर लिया और यह कहकर अपनी अनुपस्थिति के कारण स्पष्ट किए कि उसका आशय उच्चतर प्राधिकारी के आदेश की अवज्ञा करना या कंपनी के किसी नियम और विनियम का अतिक्रमण करना नहीं था और न ही उसकी ऐसी वांछ थी बल्कि उसका कारण पूर्णतः व्यक्तिगत था और वह उसके नियंत्रण से परे था। न्यायालय ने विद्यमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर आनुपातिकता के आधार पर दंड में हस्तक्षेप किया। प्रस्तुत मामले के तथ्य पूर्णतः भिन्न हैं। जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा किए गए विश्लेषण से स्पष्ट होता है, उसने अनुपस्थिति के पूर्व अवचार और प्रथम बार अधित्यजन करने पर जोर दिया और इसके पश्चात् आनुपातिकता का सिद्धांत लागू किया। उपर्युक्त दृष्टिकोण स्पष्टतः गलत है। यह संकेत है कि प्रत्यर्था काफी लंबे समय तक अनुपस्थित रहा। उसने नियोजक द्वारा किए गए पत्राचार का उत्तर न देने का अड़ियल रुख अपनाया जिस समय वह अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित था। जैसा कि प्रतीत होता है, उसने यह

रास्ता इस आशय से अपनाया था कि वह किसी भी अवधि तक अनुपस्थित रह सकता है, किसी भी समय छुट्टी मंजूर करने के लिए आवेदन कर सकता है और अपनी इच्छानुसार न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। प्रत्यर्थी के विद्वान् काउन्सेल ने हमें इस संबंध में प्रभावित करने का भरसक प्रयास किया कि वह आभ्यासिक अनुपस्थित रहने वाला नहीं है। हम वास्तव में उक्त निवेदन को भलीभांति समझने में असमर्थ हैं जब प्रत्यर्थी लगभग एक वर्ष सात मास तक अनुपस्थित रहा था। “आभ्यासिक अनुपस्थिति” के अभाव का अभिवाक् पूर्णतः अस्वीकार्य है और विद्यमान परिस्थितियों में इसे स्वीकार करने की संस्तुति नहीं की जाती है। हम यह समझते हैं कि प्रत्यर्थी ने अपर्याप्त कारण से इतनी लंबी अवधि तक अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित रहकर न केवल अनुशासनहीनता दिखाई है बल्कि इससे बच निकलने का प्रयत्न भी किया है। ऐसा आचरण अनुज्ञेय नहीं है और हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि उच्च न्यायालय ने उन नजीरों का अवलंब लेकर गलती की है जिनमें इस न्यायालय ने दंड में हस्तक्षेप किया था। हमें तनिक भी संदेह नहीं है कि इस प्रकार के मामले को आनुपातिकता का सिद्धांत बिल्कुल भी लागू नहीं होता है। दंड निश्चित रूप से अत्यधिक अननुपाती नहीं है।

31. एक अन्य पहलू का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रत्यर्थी एक कनिष्ठ इंजीनियर था। उसकी पदीय हैसियत को ध्यान में रखते हुए उससे यह प्रत्याशा थी कि वह अनुशासन बनाए रखे, उत्तरदायित्व से कार्य करे, अपने कर्तव्य का सच्चाई से निर्वहन करे और संस्था की ईमानदारी से सेवा करे। इस किस्म के आचरण का समर्थन नहीं किया जा सकता है क्योंकि इससे कार्य संस्कृति में खोखलेपन का सृजन होता है और संगठन में अनुशासनहीनता पैदा होती है। इस संदर्भ में हम **भारत सरकार और एक अन्य** बनाम **जार्ज फिलिप**¹ वाले निर्णय से एक पद्धांश को लाभप्रद रूप से उद्धृत कर सकते हैं :-

“एसे किसी मामले में, जिसमें छुट्टी के उपरांत अनुपस्थित रहना और कर्तव्य से अनुपस्थित रहना अंतर्वलित है, कार्यभार संभालने के लिए छह मास का समय देना न केवल अनुशासनहीनता को बढ़ावा देने की कोटि में आता है बल्कि यह संगठन में कार्य संस्कृति का पूर्णतः ध्वंसक है। संविधान के अनुच्छेद 51-क(ज) में यह अधिकथित किया गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा

¹ (2006) 13 एस. सी. सी. 1.

कि वह व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके । इसे तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि कर्मचारी अनुशासन और कर्तव्य-निष्ठा नहीं बनाए रखते । न्यायालयों को ऐसे आदेश पारित नहीं करने चाहिए जिनकी प्रवृत्ति संविधान के भाग 4-क में अंतर्निहित भावना और उद्देश्यों को पूरा करने की बजाय उसे नकारने या विनष्ट करने की होती है ।”

32. हम सादर उक्त भावना को दोहराते हैं और इस आशा से इसे पुनः स्पष्ट करते हैं कि किसी संगठन में कर्मचारियों को न केवल व्यक्तिगत उत्कर्ष प्राप्ति करने के लिए बल्कि संगठन की सामूहिक भलाई के लिए अनुशासन का पालन करना चाहिए । जब हम ऐसा कहते हैं तो हमारे कहने का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि नियोजकों को किसी अवचार के लिए घोर दंड अधिरोपित करने के लिए कठोर होना चाहिए । किसी संगठन में सौम्य वातावरण से कार्य संस्कृति का विकास होता है और नियोजक और कर्मचारियों से यह प्रत्याशा की जाती है कि वे इस बात को व्यवस्थित विकास के अमूल्य महत्व के रूप में याद रखे ।

33. उपर्युक्त आधारों के विवेचन पर, अप्रतिरोध्य निष्कर्ष यह है कि उच्च न्यायालय द्वारा दंड में हस्तक्षेप करना पूर्णतः अनुचित और असंधार्य है और इसके अलावा, उच्च न्यायालय द्वारा चार वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् रिट याचिका ग्रहण करना पूर्णतः अन्यायोचित था । उपर्युक्त विश्लेषण का परिणाम विद्वान् एकल न्यायाधीश और उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णयों और आदेशों को उलटना होगा और तदनुसार हम ऐसा करते हैं ।

34. परिणामस्वरूप, अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश अपास्त किए जाते हैं और पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

फसीला एम.

बनाम

मुन्नेरुल इस्लाम मदरसा समिति और एक अन्य

31 मार्च, 2014

न्यायमूर्ति आर. एम. लोढा और न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ

वक्फ अधिनियम, 1995 (1995 का 43) – धारा 6 और 7 [सपटित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 9] – वक्फ संपत्ति से बेदखली के लिए वाद – वक्फ संपत्ति से संबंधित अभिधारी के विरुद्ध बेदखली के लिए वाद अनन्य रूप से सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय है और अधिनियम में अधिकरण द्वारा बेदखली के विवाद का अवधारण करने के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है ।

प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपीलार्थी के विरुद्ध वक्फ अधिकरण के समक्ष अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिवाक् करते हुए बेदखली के लिए वाद फाइल किया कि प्रत्यर्थी सं. 1 विवादगत संपत्ति में मकान मालिक और अपीलार्थी अभिधारी है । विवादगत संपत्ति वक्फ संपत्ति के रूप में वर्णित है । अपीलार्थी ने इस बात से इनकार किया कि विवादगत संपत्ति वक्फ संपत्ति थी । उसने पक्षकारों के बीच विवाद का अवधारण करने के संबंध में वक्फ अधिकरण की अधिकारिता को भी चुनौती दी । वक्फ अधिकरण ने पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् यह निदेश दिया कि वादपत्र इस विषय पर अधिकारिता रखने वाले सिविल न्यायालय को लौटाया जाए । तथापि, अगली तारीख को वक्फ अधिकरण ने स्वप्रेरणा से पहले से पारित आदेश वापस मंगा लिया और यह निर्णय दिया कि ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें विरचित विवाद्यक में यह भी शामिल है कि क्या संपत्ति वक्फ संपत्ति है अथवा नहीं । अतः, इस अधिकरण को उस सीमा तक अधिकारिता प्राप्त है । किन्तु चूक और गलती के कारण वादपत्र लौटाने का आदेश किया गया था । वह आदेश अभिलेख को देखने से त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है और उसका स्वप्रेरणा से पुनर्विलोकन किया जाता है । मामला तारीख 30 सितम्बर, 2010 के लिए सूचीबद्ध किया जाए । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दो पुनरीक्षण याचिकाएं फाइल कीं - एक याचिका बाद वाली तारीख के आदेश के विरुद्ध और दूसरी याचिका इस घोषणा के लिए कि वक्फ अधिकरण को इस मामले में अधिकारिता

नहीं है। उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा दोनों पुनरीक्षण याचिकाएं और एक मूल याचिका खारिज कर दी जिसके परिणामस्वरूप विशेष इजाजत लेकर प्रस्तुत अपीलें फाइल की गई हैं। इन अपीलों में अवधारणार्थ प्रश्न यह है कि क्या मकान मालिक द्वारा वक्फ संपत्ति के संबंध में अभिधारी के विरुद्ध बेदखली का वाद सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय है अथवा वाद वक्फ अधिकरण की अनन्य अधिकारिता के भीतर आता है। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 6 और धारा 7 न केवल ओक्राफ़ से संबंधित कतिपय विवादों का अवधारण करने के लिए वक्फ अधिकरण को अनन्य अधिकारिता प्रदत्त करती हैं बल्कि ऐसे विवादों की बाबत सिविल न्यायालय की अधिकारिता को भी छीनती हैं। अतः, किसी वक्फ संपत्ति से संबंधित अभिधारी के विरुद्ध बेदखली के लिए वाद अनन्य रूप से सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय है क्योंकि ऐसा वाद वक्फ अधिनियम की धारा 6 और धारा 7 में विनिर्दिष्ट विवादों के अंतर्गत नहीं आता है। (पैरा 3 और 17)

वह निर्णायक प्रश्न, जिसका उत्तर ऐसे प्रत्येक मामले में दिया जाना होगा जहां सिविल न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन के संबंध में कोई अभिवाक् किया जाता है, यह है कि क्या अधिकरण अधिनियम या नियमों के अधीन उस विषय पर कार्यवाही कर सकता है जो किसी सिविल न्यायालय के समक्ष लाया जाना ईप्सित है। यदि ऐसा नहीं है तो सिविल न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित नहीं है। किन्तु यदि अधिकरण के लिए उस मामले को विनिश्चित करना अपेक्षित है तो सिविल न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित हो जाएगी। (पैरा 16)

अनुसृत निर्णय

पैरा

[2010]	(2010) 8 एस. सी. सी. 726 :	
	रमेश गोबिन्दराम (मृत) विधिक प्रतिनिधियों	11, 14,
	की मार्फत बनाम सुगरा हुमायूं मिर्जा वक्फ।	16, 17

निर्दिष्ट निर्णय

[2013]	(2013) 1 स्केल 210 :	
	भंवर लाल और एक अन्य बनाम राजस्थान	
	बोर्ड आफ मुस्लिम वक्फ और अन्य ;	13, 14, 16

- [2010] (2010) 14 एस. सी. सी. 588 :
वक्फ बोर्ड, पश्चिमी बंगाल और एक अन्य बनाम
अनीस फातिमा बेगम और एक अन्य ; 14
- [2007] (2007) 10 एस. सी. सी. 727 :
सरदार खान और अन्य बनाम सैयद नज़मुल हसन
(सेठ) और अन्य । 14
- अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं.
4250-4252.

2011 की सिविल पुनरीक्षण याचिका (वक्फ अधिनियम) सं. 53 और 56 तथा 2011 की मूल याचिका (वक्फ अधिकरण) सं. 247 में केरल उच्च न्यायालय की एर्नाकुलम न्यायपीठ के तारीख 28 नवम्बर, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

- अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री जी. हरि कुमार और ए.
वेनयागम बालन
- प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री रंजीत मरार, बिनीश कुमार,
(सुश्री) टी. पी. सिंधु और पी. वी.
दिनेश

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. एम. लोढा ने दिया ।

न्या. लोढा – इजाजत दी जाती है ।

2. वक्फ अधिनियम, 1995 (जिसे संक्षेप में “अधिनियम” कहा गया है) की धारा 6 और धारा 7 में ओक्राफ़ से संबंधित कतिपय विवादों का केवल वक्फ अधिकरण द्वारा अवधारण करने के लिए उपबंध किया गया है । 2013 के अधिनियम सं. 27 द्वारा यथा-संशोधित ये उपबंध निम्नलिखित रूप में हैं :—

“धारा 6 – ओक्राफ़ से संबंधित विवाद – (1) यदि यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कोई विशिष्ट संपत्ति, जो ओक्राफ़ की सूची में वक्फ संपत्ति के रूप में विनिर्दिष्ट है, वक्फ संपत्ति है या नहीं अथवा ऐसी सूची में विनिर्दिष्ट कोई वक्फ, शिया वक्फ है या सुन्नी वक्फ तो बोर्ड या वक्फ का मुतवल्ली अथवा व्यथित कोई व्यक्ति उस प्रश्न के विनिश्चय के लिए अधिकरण में वाद संस्थित कर सकेगा और उस विषय की बाबत उस अधिकरण का विनिश्चय अंतिम होगा :

परन्तु अधिकरण द्वारा बोर्ड कोई ऐसा वाद, ओक्लाफ़ की सूची के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात् ग्रहण नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह और कि धारा 4 की उपधारा (6) में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसरण में दूसरे या पश्चात्पूर्ति सर्वेक्षण में अधिसूचित ऐसी संपत्तियों की बाबत अधिकरण के समक्ष कोई वाद संस्थित नहीं किया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, किसी वक्फ की बाबत इस अधिनियम के अधीन कोई कार्यवाही, ऐसे किसी वाद के अथवा ऐसे वाद से उत्पन्न होने वाली किसी अपील या किसी अन्य कार्यवाही के लंबित रहने के कारण ही रोकी नहीं जाएगी ।

(3) सर्वेक्षण आयुक्त को, उपधारा (1) के अधीन किसी वाद का पक्षकार नहीं बनाया जाएगा और इस अधिनियम के या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही उसके विरुद्ध नहीं होगी ।

(4) ओक्लाफ़ की सूची, जब तक कि उसमें उपधारा (1) के अधीन अधिकरण के विनिश्चय के अनुसरण में परिवर्तन नहीं किया जाता है, अंतिम और निश्चयक होगी ।

(5) किसी राज्य में इस अधिनियम के प्रारंभ से ही कोई भी वाद या अन्य विधिक कार्यवाही, उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी प्रश्न के संबंध में इस राज्य में किसी न्यायालय में संस्थित या प्रारंभ नहीं की जाएगी ।

धारा 7 – ओक्लाफ़ से संबंधित विवादों का अवधारण करने की अधिकरण की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् कोई प्रश्न या विवाद उत्पन्न होता है कि कोई विशिष्ट संपत्ति, जो ओक्लाफ़ की सूची में वक्फ संपत्ति के रूप में विनिर्दिष्ट है, वक्फ संपत्ति है या नहीं अथवा ऐसी सूची में विनिर्दिष्ट कोई वक्फ शिया वक्फ है या सुन्नी वक्फ तो बोर्ड या वक्फ का मुतवल्ली अथवा धारा 5 के अधीन ओक्लाफ़ की सूची के प्रकाशन से व्यथित कोई व्यक्ति इस प्रश्न के विनिश्चय के लिए, ऐसी संपत्ति के संबंध में अधिकारिता

रखने वाले अधिकरण को आवेदन कर सकेगा और उस पर अधिकरण का विनिश्चय अंतिम होगा :

परन्तु –

(क) राज्य के किसी भाग से संबंधित और इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् प्रकाशित ओक्राफ़ की सूची की दशा में, कोई ऐसा आवेदन ओक्राफ़ की सूची के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष की समाप्ति के पश्चात् ग्रहण नहीं किया जाएगा ; और

(ख) राज्य के किसी भाग से संबंधित और इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पहले एक वर्ष की अवधि के भीतर किसी भी समय प्रकाशित ओक्राफ़ की सूची की दशा में, अधिकरण द्वारा ऐसा आवेदन ऐसे प्रारंभ के एक वर्ष की अवधि के भीतर ग्रहण किया जा सकेगा :

परन्तु यह और कि जहां ऐसे किसी प्रश्न की, ऐसे प्रारंभ के पूर्व संस्थित किसी वाद में किसी सिविल न्यायालय द्वारा सुनवाई कर ली गई है और उसका अंतिम रूप से विनिश्चय कर दिया गया है, वहां अधिकरण ऐसे प्रश्न पर नए सिरे से विचार नहीं करेगा ।

(2) इस धारा के अधीन किसी वक्फ की बाबत किसी कार्यवाही को, उस दशा के सिवाय जिसमें अधिकरण को उपधारा (5) के उपबंधों के कारण कोई अधिकारिता नहीं है, किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य अधिकारी द्वारा केवल इस कारण रोका नहीं जाएगा कि किसी ऐसे वाद, आवेदन, अपील या अन्य कार्यवाही से उद्भूत कोई वाद, आवेदन या अपील या अन्य कार्यवाही लंबित है ।

(3) मुख्य कार्यपालक अधिकारी को, उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन का पक्षकार नहीं बनाया जाएगा ।

(4) ओक्राफ़ की सूची और जहां ऐसी किसी सूची में उपधारा (1) के अधीन अधिकरण के विनिश्चय के अनुसरण में परिवर्तन किया जाता है वहां इस प्रकार परिवर्तित सूची अंतिम होगी ।

(5) अधिकरण को किसी ऐसे विषय का अवधारण करने की अधिकारिता नहीं होगी जो इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व, धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन किसी सिविल न्यायालय में संस्थित किसी वाद या प्रारंभ की गई किसी कार्यवाही की विषयवस्तु है अथवा जो

ऐसे प्रारंभ के पूर्व किसी ऐसे वाद या कार्यवाही में पारित डिक्री से किसी अपील की अथवा, यथास्थिति, ऐसे वाद, कार्यवाही या अपील से उद्भूत होने वाले किसी पुनरीक्षण या पुनर्विलोकन के लिए किसी आवेदन की विषयवस्तु है ।

(6) अधिकरण को वक्फ संपत्ति के अप्राधिकृत अधिभोग द्वारा हुई नुकसानियों के निर्धारण और ऐसे अप्राधिकृत अधिभोगियों की वक्फ संपत्ति के उनके अवैध अधिभोग के लिए दंडित करने तथा कलक्टर के माध्यम से भू-राजस्व के बकाया के रूप में नुकसानियों को वसूल करने की शक्तियां होंगी :

परन्तु जो कोई, लोक सेवक होते हुए, किसी अधिकरण को रोकने या हटाने के अपने विधिपूर्ण कर्तव्य में असफल रहेगा, वह दोषसिद्धि पर ऐसे जुर्माने से, जो प्रत्येक ऐसे अपराध के लिए, पन्द्रह हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।”

3. अतः, अधिनियम की धारा 6 और धारा 7 न केवल ओक्राफ़ से संबंधित कतिपय विवादों का अवधारण करने के लिए वक्फ अधिकरण को अनन्य अधिकारिता प्रदत्त करती हैं बल्कि ऐसे विवादों की बाबत सिविल न्यायालय की अधिकारिता को भी छीनती हैं ।

4. मुन्नेरुल इस्लाम मदरसा समिति - प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपीलार्थी के विरुद्ध वक्फ अधिकरण के समक्ष अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिवाक् करते हुए बेदखली के लिए वाद फाइल किया कि प्रत्यर्थी सं. 1 विवादगत संपत्ति में मकान मालिक और अपीलार्थी अभिधारी हैं । विवादगत संपत्ति वक्फ संपत्ति के रूप में वर्णित है ।

5. अपीलार्थी ने इस बात से इनकार किया कि विवादगत संपत्ति वक्फ संपत्ति थी । उसने पक्षकारों के बीच विवाद का अवधारण करने के संबंध में वक्फ अधिकरण की अधिकारिता को भी चुनौती दी ।

6. वक्फ अधिकरण ने तारीख 18 सितम्बर, 2010 को पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात् यह निदेश दिया कि वादपत्र इस विषय पर अधिकारिता रखने वाले सिविल न्यायालय को लौटाया जाए । तथापि, अगली तारीख, अर्थात् 19 सितम्बर, 2010 को वक्फ अधिकरण ने स्वप्रेरणा से तारीख 18 सितम्बर, 2010 को पारित आदेश वापस मंगा लिया और निम्नलिखित आदेश पारित किया :-

“आदेश वापस मंगाया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें विरचित विवाद्यक में यह भी शामिल है कि क्या संपत्ति वक्फ संपत्ति है अथवा नहीं । अतः, इस अधिकरण को उस सीमा तक अधिकारिता प्राप्त है । किन्तु चूक और गलती के कारण वादपत्र लौटाने का आदेश किया गया था । वह आदेश अभिलेख को देखने से त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है और उसका स्वप्रेरणा से पुनर्विलोकन किया जाता है । मामला तारीख 30 सितम्बर, 2010 के लिए सूचीबद्ध किया जाए ।”

7. अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष दो पुनरीक्षण याचिकाएं फाइल कीं – एक याचिका तारीख 19 सितम्बर, 2010 के आदेश के विरुद्ध और दूसरी याचिका इस घोषणा के लिए कि वक्फ अधिकरण को इस मामले में अधिकारिता नहीं है ।

8. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा दोनों पुनरीक्षण याचिकाएं और एक मूल याचिका खारिज कर दी जिसके परिणामस्वरूप विशेष इजाजत लेकर प्रस्तुत अपीलें फाइल की गई हैं ।

9. इन अपीलों में अवधारणार्थ प्रश्न यह है कि क्या मकान मालिक द्वारा वक्फ संपत्ति के संबंध में अभिधारी के विरुद्ध बेदखली का वाद सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय है अथवा वाद वक्फ अधिकरण की अनन्य अधिकारिता के भीतर आता है ।

10. उपर्युक्त प्रश्न का अवधारण करने के लिए, धारा 6 और धारा 7 के अलावा दो अन्य उपबंध जिनकी अवेक्षा की जानी चाहिए, अधिनियम की धारा 83 और धारा 85 हैं । ये उपबंध निम्नलिखित रूप में हैं :-

“**धारा 83** – अधिकरणों आदि का गठन – (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के अधीन किसी वक्फ या वक्फ संपत्ति या किसी अभिधारी की बेदखली से संबंधित किसी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के अवधारण के लिए या ऐसी संपत्ति के पट्टाकर्ता या पट्टेदार के अधिकारों या बाध्यताओं का अवधारण करने के लिए उतने अधिकरण का गठन करेगी जितने वह ठीक समझे और ऐसे प्रत्येक अधिकरण की स्थानीय सीमाएं और अधिकारिता परिनिश्चित करेगी ।

(2) कोई मुतवल्ली या वक्फ में हितबद्ध व्यक्ति या कोई अन्य व्यक्ति जो इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी आदेश से या

इसके अधीन बनाए गए नियमों से व्यथित है, इस अधिनियम में विनिर्दिष्ट समय के भीतर या जहां ऐसा कोई समय विनिर्दिष्ट नहीं है, उस समय के भीतर, जो विहित किया जाए, अधिकरण को वक्फ से किसी संबंधित विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के अवधारण के लिए आवेदन कर सकेगा ।

(3) जहां उपधारा (2) के अधीन किया गया कोई आवेदन किसी ऐसी वक्फ संपत्ति से संबंधित है, जो दो या अधिक अधिकरणों की अधिकारिता की प्रादेशिक सीमाओं के अंतर्गत आती है, वहां ऐसा आवेदन उस अधिकरण को, जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर वक्फ का मुतवल्ली या, उसके मुतवल्लियों में से कोई एक मुतवल्ली वास्तव में और स्वेच्छा से निवास करता है, कारबार करता है या अभिलाभ के लिए स्वयं काम करता है, किया जा सकेगा तथा जहां ऐसा कोई आवेदन पूर्वोक्त अधिकरण को किया जाता है, वहां अधिकारिता रखने वाला अन्य अधिकरण या रखने वाले अन्य अधिकरण ऐसे विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के अवधारण के लिए कोई आवेदन ग्रहण नहीं करेंगे :

परन्तु यदि राज्य सरकार की यह राय है कि वक्फ के या वक्फ से हितबद्ध किसी व्यक्ति के या वक्फ संपत्ति के हित में यह समीचीन है कि ऐसे आवेदन का अंतरण, ऐसे वक्फ या वक्फ संपत्ति से संबंधित विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के अवधारण के लिए अधिकारिता रखने वाले किसी अन्य अधिकरण को कर दिया जाए तो वह ऐसे आवेदन का अंतरण, अधिकारिता रखने वाले किसी अन्य अधिकरण को कर सकेगी और ऐसे अंतरण पर, वह अधिकरण जिसे आवेदन इस प्रकार अंतरित किया जाता है, आवेदन की बाबत उस प्रक्रम से, जिस पर उस अधिकरण के समक्ष वह आवेदन था, जिससे आवेदन इस प्रकार अंतरित किया गया है, वहां के सिवाय कार्रवाई करेगा जहां अधिकरण की यह राय है कि न्याय के हित में यह आवश्यक है कि आवेदन की बाबत नए सिरे से कार्रवाई की जाए ।

(4) प्रत्येक अधिकरण निम्नलिखित से मिलकर बनेगा, —

(क) ऐसा एक व्यक्ति, जो राज्य न्यायिक सेवा का जिला, सेशन या प्रथम वर्ग सिविल न्यायाधीश की पंक्ति का पद धारण करने वाला सदस्य होगा, जो अध्यक्ष होगा ;

(ख) ऐसा एक व्यक्ति, जो अपर जिला मजिस्ट्रेट की पंक्ति के समतुल्य पंक्ति का राज्य सिविल सेवा का अधिकारी होगा, सदस्य ;

(ग) ऐसा एक व्यक्ति, जिसके पास मुस्लिम विधि और विधि शास्त्र का ज्ञान है, सदस्य,

और ऐसे प्रत्येक व्यक्ति की नियुक्ति नाम से या पदनाम से की जाएगी ।

(4क) पदेन सदस्यों के रूप में नियुक्त व्यक्तियों से भिन्न अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति के निबंधन और शर्तें जिनके अंतर्गत उन्हें संदेय वेतन और भत्ते भी हैं, वे होंगी, जो विहित की जाएं ।

(5) अधिकरण को सिविल न्यायालय समझा जाएगा और इसे वही शक्तियां प्राप्त होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण अथवा किसी डिक्री या आदेश का निष्पादन करते समय सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं ।

(6) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में किसी बात के होते हुए भी, अधिकरण ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो विहित की जाए ।

(7) अधिकरण का विनिश्चय अंतिम होगा और आवेदन के पक्षकारों पर आबद्धकर होगा तथा उस विनिश्चय का वही बल होगा, जो सिविल न्यायालय द्वारा की गई डिक्री का होता है ।

(8) अधिकरण के किसी विनिश्चय का निष्पादन उस सिविल न्यायालय द्वारा किया जाएगा जिसे ऐसा विनिश्चय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अनुसार निष्पादन के लिए भेजा जाता है ।

(9) अधिकरण द्वारा किए गए किसी विनिश्चय या आदेश के विरुद्ध, चाहे वह अंतरिम हो या अन्यथा, कोई अपील नहीं होगी :

परन्तु उच्च न्यायालय, स्वप्रेरणा से अथवा बोर्ड या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर, किसी ऐसे विवाद, प्रश्न या अन्य मामले से जिसका अधिकरण द्वारा अवधारण किया गया है, संबंधित अभिलेख ऐसे अवधारण की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में अपना

समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकेगा और उसकी जांच कर सकेगा तथा ऐसे अवधारण की पुष्टि कर सकेगा, उसे उलट सकेगा या उसे उपांतरित कर सकेगा अथवा ऐसा अन्य आदेश पारित कर देगा, जो वह ठीक समझे ।

धारा 85 – सिविल न्यायालयों की अधिकारिता – किसी वक्फ, वक्फ संपत्ति या अन्य मामले से संबंधित किसी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले की बाबत जिसका इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अधिकरण द्वारा अवधारित किया जाना अपेक्षित है, किसी सिविल न्यायालय, राजस्व न्यायालय और किसी अन्य प्राधिकरण में कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाही नहीं होगी ।¹

11. **रमेश गोबिन्दराम (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत बनाम सुगरा हुमायूं मिर्जा वक्फ¹** वाले मामले में इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 6(1), धारा 6(5), धारा 7(1), धारा 7(5), धारा 83 और धारा 85 और कुछ अन्य उपबंधों पर विचार किया और वक्फ अधिकरण तथा सिविल न्यायालय की अधिकारिता को स्पष्ट किया । जहां तक वक्फ संपत्ति के अभिधारी (अभिधारियों) के विरुद्ध बेदखली के वाद का संबंध है, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा वाद सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय है क्योंकि यह अधिनियम की धारा 6 और धारा 7 के अंतर्गत नहीं आता है ।

12. न्यायालय ने पैरा 35, पृष्ठ 738 पर निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

“35. वर्तमान मामलों में, अधिनियम में किसी वक्फ संपत्ति पर अधिभोग करने वाले किसी अभिधारी की बेदखली और ऐसी संपत्ति के पट्टेदार और पट्टाकर्ता के अधिकारों और उसकी बाध्यताओं से संबंधित किसी विवाद के अवधारण के लिए न्यायालय के समक्ष कोई कार्यवाहियां करने के लिए उपबंध नहीं है । इसलिए उस संपत्ति से, जो कि स्वीकृततः वक्फ संपत्ति है, अभिधारियों की बेदखली की ईप्सा करने वाला वाद केवल सिविल न्यायालय के समक्ष न कि अधिकरण के समक्ष फाइल किया जा सकता है ।”

13. प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री रंजीत मरार ने यह दलील दी है कि **भंवर लाल और एक अन्य बनाम राजस्थान बोर्ड**

¹ (2010) 8 एस. सी. सी. 726.

आफ मुस्लिम वक्फ और अन्य¹ वाले पश्चात्तर्वी विनिश्चय में इस न्यायालय ने भिन्न दृष्टिकोण अपनाया है। उसके अनुसार अधिनियम की धारा 85 में इस संबंध में किसी भी प्रकार का कोई संदेह नहीं है कि वक्फ अधिकरण को बेदखली के लिए वाद को विनिश्चित करने की अधिकारिता प्राप्त है। ऐसा इस कारण है कि अवधारणार्थ प्रश्नों में से एक प्रश्न यह है कि क्या विवादगत संपत्ति वक्फ संपत्ति है अथवा नहीं।

14. न्यायालय ने **भंवर लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के **रमेश गोविन्दराम** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय पर कुछ विस्तार से विचार किया। **रमेश गोविन्दराम** (उपर्युक्त) के अलावा, इस न्यायालय ने **भंवर लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो अन्य विनिश्चयों पर भी विचार किया जिसमें से एक **वक्फ बोर्ड, पश्चिमी बंगाल और एक अन्य** बनाम **अनीस फातिमा बेगम और एक अन्य²** और दूसरा **सरदार खान और अन्य** बनाम **सैयद नज़मुल हसन (सेठ) और अन्य³** वाला मामला था। **अनीस फातिमा बेगम** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिनियम की धारा 83 के अधीन गठित वक्फ अधिकरण को वक्फ संपत्ति के सीमांकन से संबंधित प्रश्नों पर विचार करने की अनन्य अधिकारिता होगी।

15. प्रासंगिक रूप से, इस न्यायालय ने **भंवर लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि विक्रय विलेख के रद्दकरण के लिए वाद सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय था।

16. **भंवर लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में **रमेश गोविन्दराम** (उपर्युक्त) वाले तर्काधार का अनुसरण किया गया है। **भंवर लाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय इस न्यायालय द्वारा **रमेश गोविन्दराम** (उपर्युक्त) वाले मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण से किसी रीति में असंगत या प्रतिकूल नहीं है। हम **रमेश गोविन्दराम** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के मत से, विशेषकर उसके द्वारा अधिनियम की धारा 83 और 85 के बारे में किए गए अर्थान्वयन के संबंध में पूर्णतः सहमत हैं। इस न्यायालय ने निम्न प्रकार कहा :—

¹ (2013) 1 स्केल 210.

² (2010) 14 एस. सी. सी. 588.

³ (2007) 10 एस. सी. सी. 727.

“32. हमारी राय में, धारा 83 में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह संकेत मिलता हो कि उसमें सिविल न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन को उससे परे विस्तारित किया गया है जो कुछ अधिनियम की धारा 6(5), धारा 7 और धारा 85 में उपबंधित है। इसके द्वारा सरकार को किसी वक्फ या वक्फ संपत्ति से संबंधित किसी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले का अवधारण करने के लिए एक अधिकरण या कई अधिकरण गठित करने के लिए मात्र सशक्त किया गया है जिसका स्वयमेव ही यह अभिप्राय नहीं है सिविल न्यायालय की अधिकारिता ऐसे स्थापन के कारण पूर्णतः अपवर्जित हो जाती है।

33. यह विचारणीय है कि धारा 83(1) में आने वाले ‘किसी वक्फ या वक्फ संपत्ति से संबंधित किसी विवाद, प्रश्न या अन्य मामले के अवधारण के लिए’ शब्द अधिनियम की धारा 85 में भी आते हैं। तथापि, धारा 85 द्वारा किसी या प्रत्येक प्रश्न या विवादों की बाबत सिविल न्यायालयों की अधिकारिता मात्र इस कारण अपवर्जित नहीं की गई है क्योंकि उसका संबंध किसी वक्फ या किसी वक्फ संपत्ति से है। धारा 85 में वस्तुतः यह उपबंध किया गया है कि सिविल न्यायालय की अधिकारिता केवल ऐसे मामलों के संबंध में अपवर्जित होगी, जो इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अधिकरण द्वारा अवधारित किए जाने अपेक्षित हैं।

34. वह निर्णायक प्रश्न, जिसका उत्तर ऐसे प्रत्येक मामले में दिया जाना होगा जहां सिविल न्यायालय की अधिकारिता के अपवर्जन के संबंध में कोई अभिवाक् किया जाता है, यह है कि क्या अधिकरण अधिनियम या नियमों के अधीन उस विषय पर कार्यवाही कर सकता है जो किसी सिविल न्यायालय के समक्ष लाया जाना ईप्सित है। यदि ऐसा नहीं है तो सिविल न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित नहीं है। किन्तु यदि अधिकरण के लिए उस मामले को विनिश्चित करना अपेक्षित है तो सिविल न्यायालय की अधिकारिता अपवर्जित हो जाएगी।”

17. हमारे समक्ष वाला मामला पूर्णतः और ठीक ही **रमेश गोविन्दराम** (उपर्युक्त) वाले मामले के अंतर्गत आता है। किसी वक्फ संपत्ति से संबंधित अभिधारी के विरुद्ध बेदखली के लिए वाद अनन्य रूप से सिविल न्यायालय द्वारा विचारणीय है क्योंकि ऐसा वाद अधिनियम की धारा 6 और धारा 7 में विनिर्दिष्ट विवादों के अंतर्गत नहीं आता है।

18. उपर्युक्त कारणों से, आक्षेपित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है और वह अपास्त किए जाने योग्य है तथा उसे अपास्त किया जाता है। वक्फ अधिकरण द्वारा तारीख 19 सितम्बर, 2010 को पारित आदेश भी अपास्त किया जाता है। वक्फ अधिकरण का तारीख 18 सितम्बर, 2010 का आदेश पुनःस्थापित किया जाता है। अब सिविल न्यायालय वाद के संबंध में तदनुसार कार्यवाही करेगा।

19. सिविल अपीलें मंजूर की जाती हैं और खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

अपीलें मंजूर की गईं।

ग्रो.

[2014] 3 उम. नि. प. 206

धरम देव यादव

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

11 अप्रैल, 2014

न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 201 [सपटित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27] – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – अपीलार्थी द्वारा मृतका की हत्या किया जाना और अपने ही घर में उसका शव छिपाना – अपराध में फंसाने वाली प्रत्येक परिस्थिति विश्वसनीय और ठोस साक्ष्य से साबित होना – परिस्थितियों से घटनाओं की ऐसी शृंखला बनना, जिससे केवल अभियुक्त के दोषी होने का निष्कर्ष निकलता है – अभियुक्त को पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया गया।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 27 और धारा 6 – पारिस्थितिक साक्ष्य – अपीलार्थी को मृतक के साथ अंतिम बार देखा जाना – यदि अभियुक्त और मृतक को अंतिम बार एक साथ जीवित देखे जाने और मृतक के मृत पाए जाने के बीच समयांतराल इतना कम हो कि अभियुक्त

के सिवाय अन्य किसी व्यक्ति का अपराधी होना असंभव हो जाए, तब इस आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 27 – पुलिस अभिरक्षा – अभियुक्त द्वारा किया गया प्रकटीकरण सही पाया जाना – धारा 27 में उल्लिखित “अभिरक्षा” अभिव्यक्ति का अर्थ औपचारिक अभिरक्षा नहीं है और यदि अभियुक्त को उस समय गिरफ्तार नहीं किया गया था जब उसने जानकारी दी थी तब भी सभी व्यावहारिक प्रयोजनों से अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में ही समझा जाएगा और इस प्रकार की गई बरामदगी न्यायोचित होगी ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 – हत्या – बर्बरतापूर्ण अपराध किए जाने का साक्ष्य न होना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का न होना – यदि हत्या के मामले में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि अपराध बर्बरतापूर्ण किया गया है और उसका कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी भी नहीं है, तब हत्या का अपराध विरल से विरलतम मामले की कोटि में नहीं आएगा निचले न्यायालयों द्वारा दिए गए मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया गया ।

इस मामले में अपीलार्थी द्वारा न्यूजीलैंड की एक महिला की हत्या की गई है । वह पर्यटक के रूप में भारत का भ्रमण करने आई थी । अपीलार्थी स्थानीय गाइड के रूप में कार्य करता था और उसने मृतका के साथ निकट संबंध स्थापित कर लिए थे और एक दिन उसने उस महिला की हत्या करके अपने ही मकान में उसका शव दबा दिया था । अभियुक्त-अपीलार्थी धरम देव यादव को गिरफ्तार किया गया और साथ ही कालीचरण, केसर यादव, महेशचंद्र मिश्रा, सिन्धु हरिजन और रामकरण चौहान को भी गिरफ्तार किया गया । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त कालीचरण, सिन्धु हरिजन और रामकरण चौहान को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । अपीलार्थी धरम देव यादव को दंड संहिता की धारा 364 और 394 के अधीन अपराध से दोषमुक्त करते हुए दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 201 के अधीन अपराध का दोषी पाया और इस अपीलार्थी को मृत्युदंड अधिनिर्णीत किया । इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध और राज्य ने शेष अभियुक्तों की दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलें फाइल कीं । राज्य ने मृत्युदंड की पुष्टि के लिए दांडिक निर्देश भी फाइल किया । उच्च न्यायालय ने दोनों अपीलें खारिज कीं और मृत्युदंड की पुष्टि कर दी । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील

की है। इस न्यायालय ने अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में उपांतरित कर दिया। अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में न्यायालय के समक्ष किसी भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और संपूर्ण मामला पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है। पारिस्थितिक साक्ष्य सुसंगत तथ्यों का ऐसा साक्ष्य है जिससे कोई भी व्यक्ति तर्कणा द्वारा विवाद्यक तथ्यों की विद्यमानता में हस्तक्षेप कर सकता है। अपराध में फंसाने वाली प्रत्येक परिस्थिति विश्वसनीय और ठोस साक्ष्य से सिद्ध होनी चाहिए और इस प्रकार साबित की गई परिस्थितियों से घटनाओं की ऐसी शृंखला बननी चाहिए जिससे केवल अभियुक्त के दोषी होने का अकाट्य निष्कर्ष सुगमता से निकाला जा सके और उसके दोषी होने के विरुद्ध अन्य कोई भी परिकल्पना न की जा सके। अपराध से संबंधित आरोप का समर्थन करने के लिए यदि कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है किंतु अभियोजन पक्ष ने परिस्थितियों की शृंखला सिद्ध कर दी है जिससे अभियुक्त के पूर्णतया दोषी होने का निष्कर्ष निकलता है और परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार करने पर किसी भी युक्तियुक्त परिकल्पना के आधार पर अभियुक्त के दोषी होने के सिवाय कोई भी स्पष्टीकरण न दिया जा सके, तब भी अभियुक्त को ऐसे पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया जा सकता है। घटनास्थल पर बिना किसी त्रुटि के वैज्ञानिक रूप से विचार किया जाना चाहिए। आपराधिक मामलों में, विशेषकर ऐसे मामलों में जो पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित होते हैं, न्यायालयिक विज्ञान की निर्णायक भूमिका है जो अपराध के तत्त्व, संदिग्ध व्यक्ति की पहचान, अभियुक्त के दोष और निर्दोषिता को सुनिश्चित करने में सहायक होती है। घटनास्थल पर अन्वेषक अधिकारी की सबसे महत्वपूर्ण कार्यवाही ठोस साक्ष्य को ढूंढना है जिसका अपराध में प्रमाणकारी महत्व है। घटनास्थल से सामग्री इकट्ठी करने, बांधने और उसे आगे भेजने में अन्वेषक अधिकारी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भौतिक साक्ष्य में कोई मिलावट न हो सके। साक्ष्य को परिरक्षित करने के लिए समुचित सावधानी बरतनी चाहिए और इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि प्राप्त की गई सामग्री के साथ कोई भी छेड़छाड़ या उसमें कोई भी मिलावट न की जाए और न ही उसे कोई नुकसान पहुंचाया जाए। इस देश का दांडिक न्यायिक तंत्र कभी-कभी असमंजस में पड़ जाता है, अनेक बार ऐसा होता है कि अपराध के

विश्वसनीय, विश्वासप्रद और भरोसेमंद साक्षी आगे बढ़कर न्यायालय के समक्ष अभिसाक्ष्य देते हैं फिर भी जघन्य अपराधी कानून के शिकंजे से बच जाते हैं। अभियोजन पक्ष की ओर से विश्वसनीय साक्षी अभिन्नास, भय और अन्य कारणों से पक्षद्रोही हो जाता है। अतः अन्वेषण अभिक्रम को अन्वेषण की गुणवत्ता को सुधारने के लिए अन्य तरीके अपनाने पड़ते हैं जो केवल वैज्ञानिक साक्ष्य जुटा करके ही संभव है। विज्ञान के इस युग में हमें ऐसे विधिक सिद्धांतों की रचना करनी चाहिए जो विज्ञान और विधि की दृष्टि से ठोस हों। अब लोगों का यह विचार है कि परिपाटी और सिद्धांत जो भूतकाल में अपनाए जाते थे वे अब प्रवर्तनात्मक और सृजनात्मक होने चाहिए ताकि हम अपने दांडिक न्यायिक तंत्र को बचा सकें। नए प्रकार के अपराध और उनके विकृतिकरण के स्तर को देखते हुए पारंपरिक विधि और यंत्र अब पुराने हो गए हैं, इसलिए अपराध का पता लगाने के लिए न्यायालयिक विज्ञान को सशक्त बनाने की आवश्यकता है। मौखिक साक्ष्य अनेक तथ्यों जैसे संप्रेक्षण की शक्ति, तिरस्कार, बाह्यीय प्रभाव, अनवधानता आदि पर निर्भर होता है जबकि न्यायालयिक साक्ष्य इन सब कमियों से दूर है। न्यायपालिका के पास ऐसी वैज्ञानिक सामग्री को समझने और उस पर विचार करने के लिए साधन होने चाहिए। न्यायाधीशों के निरंतर वैज्ञानिकों, अभियंताओं के साथ बातचीत करते रहने से विज्ञान संबंधी साक्ष्य पर विचार करने के लिए उनके ज्ञान में वृद्धि होगी और वे वैज्ञानिक साक्ष्य पर आधारित आपराधिक मामलों पर प्रभावपूर्ण विचार कर सकेंगे। न्यायालय इस बात के पक्ष में नहीं है कि सभी मामलों में वैज्ञानिक साक्ष्य अकाट्य कसौटी है किंतु अपराध का पता लगाने और उसे साबित करने के लिए अन्य साक्ष्य के अतिरिक्त मात्र वैज्ञानिक साक्ष्य को प्रोन्नत करने की आवश्यकता पर जोर दे रहे हैं। वैज्ञानिक साक्ष्य के अंतर्गत तथाकथित ठोस विज्ञान जैसे – भौतिकी, रसायन विज्ञान, गणित, जीव विज्ञान और मृदु विज्ञान जैसे – अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र आते हैं। वैज्ञानिक, तकनीकी और अन्य विशिष्ट ज्ञान से संबंधित व्यक्तियों से राय ली गई है जिनकी दक्षता, अनुभव, प्रशिक्षण या शिक्षा से न्यायालय को साक्ष्य समझने या विवाद्यक तथ्य को सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है। कई बार न्यायालय को पारिस्थितिक, वैज्ञानिक और तनकीकी साक्ष्य के आधार पर कार्यवाही करनी पड़ती है जिसकी प्रायः निर्णायक भूमिका होती है। इंग्लैंड के लार्ड चांसलर सर फ्रांसिस बेकन ने अपनी पुस्तक मेगनम ओपस में वैज्ञानिक रीति के प्रथम सिद्धांत का उल्लेख किया है। बेकन का यह मत था कि विज्ञानिक को प्रकृति का निष्पक्ष संप्रेक्षक होना चाहिए जो ऐसे

हानिकारक पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जानकारी प्राप्त करे जिनसे वैज्ञानिक अभिलेख में त्रुटि आने की संभावना हो। न्यायालय ने इस मामले में डीएनए रिपोर्ट की स्वीकार्यता पर विचार किया जो डीएनए फिंगरप्रिन्टिंग प्रयोगशाला, सीडीएफडी, हैदराबाद के भारसाधक द्वारा तैयार की गई है। अभि. सा. 21 की योग्यताएं या अनुभव पर कोई भी संदेह नहीं है। डीएनए परीक्षण के लिए जो तरीका अपनाया गया है वह एसटीआर विश्लेषण है। डायना के शव के अवशेष (कंकाल) का शवपरीक्षण बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के न्यायालयिक मेडिकल आई. एम. एस. के विभागाध्यक्ष डा. सी. पी. त्रिपाठी द्वारा किया गया है। डीएनए विश्लेषण के लिए एक जंघास्थि और एक प्रगंडास्थि एलन जैक रूटले के रक्त के नमूनों के साथ मिलान करने के लिए परिरक्षित की गई। ऐसे मामलों में जहां शव का केवल कंकाल ही रह जाता है, वहां अस्थियां और दांत डीएनए का अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं। जैसाकि प्रायः देखा गया है कि दांत डीएनए का एक बेहतरीन स्रोत होते हैं क्योंकि ये बहिर्जनित डीएनए संगदूषण का प्राकृतिक रक्षाकवच होते हैं और इन पर पर्यावरण का प्रभाव भी नहीं पड़ता है। डायना के पिता के रक्त का नमूना डीएनए पृथक्करण परीक्षण के नियम और प्रक्रिया के अनुसरण में लिया गया है और इस नमूने को बरामद किए गए कंकाल से निकाली गई जंघास्थि और प्रगंडास्थि के साथ डीएनए फिंगरप्रिन्टिंग और नैदानिक केंद्र (सीडीएफडी), विज्ञान और तकनीक मंत्रालय, भारत सरकार, हैदराबाद को भेजा गया है। जैसाकि पहले ही उपदर्शित किया गया है, अभि. सा. 21 ने रूटले के रक्त के नमूने तथा कंकाल से ली गई जंघास्थि और प्रगंडास्थि के आधार पर डीएनए पृथक्करण परीक्षण किया है और उसने तारीख 28 अक्टूबर, 1998 की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। डीएनए फिंगरप्रिन्टिंग विश्लेषण एस. टी. आर. विधि द्वारा रूटले के डीएनए की रूपरेखा की तुलना के अनुसार किया गया है। जब घटनास्थल से प्राप्त डीएनए के नमूने की रूपरेखा पिता के डीएनए की रूपरेखा से मेल खाती है, तब यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों नमूने एक ही जैविकीय स्रोत के हैं। डीएनए का विस्तृत रूप डीऑक्सीराइबो न्यूक्लियिक एसिड है जो प्रत्येक जीवन का जैविकीय स्रोत है। डीएनए दोहरे तन्तु की संरचना है जिसमें डीऑक्सीराइबोज शर्करा और फास्फेट के आधार-स्तंभ, दो प्रकार के न्यूक्लियिक एसिड अर्थात् एडीनिन और ग्वानिन के साथ जुड़े हुए अनुप्रस्थ रूप में शृंखलित होते हैं और साथ ही प्यूरीन, थायमीन, सायटोसीन पायरीमिडीन भी होते हैं। डीएनए की रूपरेखा का अत्यंत महत्वपूर्ण उपयोग शनाख्त के लिए भी किया जाता है

जैसे किसी व्यक्ति और उसके सगे नातेदार अर्थात् माता-पिता, भाई आदि के बीच संबंध की शनाख्त करना। डीएनए की रूपरेखा द्वारा कंकाल के अवशेष के माध्यम से सफल रूप से व्यक्ति की शनाख्त की जा सकती है। सामान्यतः, डीएनए किसी भी जैविकीय सामग्री अर्थात् रक्त, वीर्य, लार, बाल, त्वचा या अस्थियों आदि से प्राप्त किया जा सकता है। यह प्रश्न विवादास्पद है कि क्या डीएनए परीक्षण वास्तविक रूप से अचूक होते हैं किंतु वास्तविकता यही है कि ऐसे परीक्षण किए जाते हैं और उनका अपराध संबंधी अन्वेषण में विस्तृत रूप से प्रयोग किया जा रहा है और प्रायः न्यायालय विशेषज्ञों के मतों को स्वीकार करते हैं विशेषकर ऐसी स्थिति में जहां मामला पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित हो। अर्धशताब्दी से अधिक समय से मानव डीएनए के नमूनों का प्रयोग दांडिक न्याय तंत्र में किया जा रहा है। निःसंदेह, ऐसे सुरक्षोपायों पर चर्चा जारी है जो नमूनों के परीक्षण तथा न्यायालय में साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के लिए आवश्यक होते हैं। तथापि, डीएनए की रूपरेखा निरंतर रूप से वैध और विश्वसनीय अभिनिर्धारित की गई है किंतु निःसंदेह यह सब प्रयोगशाला में डीएनए की गुणवत्ता के नियंत्रण और उसकी जिम्मेदारी पर निर्भर है। निकट नातेदारों के जीन्स आपस में अधिक मेल खाते हैं और इस संभावना पर विचार करने के लिए बहुत से तरीके सुझाए गए हैं कि न्यायालयिक डीएनए का वास्तविक स्रोत निकट नातेदार ही है। जहां तक इस मामले का संबंध है, कंकाल से प्राप्त किए गए डीएनए का नमूना उस मृतका के कंकाल से लिया गया है जिसका मिलान उसके पिता के रक्त के नमूने के डीएनए के साथ किया गया है और सभी नमूने और परीक्षण ऐसे विशेषज्ञ द्वारा किए गए जिनकी वैज्ञानिक जानकारी और अनुभव पर इन कार्यवाहियों के दौरान कोई भी संदेह नहीं किया गया है। अतः न्यायालय को अभि. सा. 19, अभि. सा. 20 और अभि. सा. 21 के साक्ष्य को त्यक्त करने के लिए कोई कारण दिखाई नहीं दिया। अतः अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक यह साबित किया है कि अभियुक्त के मकान से प्राप्त किया गया कंकाल एलन जैक रूटले की पुत्री डायना का ही है और अन्य किसी व्यक्ति ने नहीं अपितु अभियुक्त ने ही डायना का गला घोटकर उसकी हत्या की है और उसके शव को अपने मकान में दबाया है। (पैरा 14, 25, 28, 29, 33 और 34)

यह एक सामान्य विधि है कि अभियुक्त के विरुद्ध दोषसिद्धि मात्र इस आधार पर अभिलिखित नहीं की जा सकती है कि अभियुक्त अंतिम

बार मृतक के साथ देखा गया था । अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि दोषसिद्धि अंतिम बार एक साथ देखे गए एक मात्र पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर नहीं की जा सकती है । अभियुक्त का आचरण और एक साथ देखे जाने का तथ्य तथा अन्य पारिस्थितिक साक्ष्यों पर विचार किया जाना चाहिए । सामान्यतः, अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत उस समय महत्वपूर्ण होता है जब अभियुक्त और मृतक को अंतिम बार जीवित देखे जाने और मृतक के मृत पाए जाने के बीच का समयांतराल इतना कम हो कि अभियुक्त के सिवाय अन्य किसी व्यक्ति का अपराधी होना असंभव हो जाए । ऐसे कुछ मामलों में सकारात्मक रूप से यह सिद्ध करना कठिन होगा कि मृतक अंतिम बार अभियुक्त के ही साथ था जिनमें (मृतक को अंतिम बार देखे जाने और उसके मृत पाए जाने के बीच) लंबा समयांतराल होता है और इस दौरान मृतक के साथ उसकी मृत्यु के पूर्व अन्य व्यक्तियों का होना संभावित होता है । तथापि, यदि अभियोजन पक्ष ने विश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध किया है कि लापता व्यक्ति को अभियुक्त के साथ देखा गया था और उसके पश्चात् कभी भी नहीं देखा गया तब अभियुक्त की यह बाध्यता है कि वह उन परिस्थितियों को स्पष्ट करे जिनमें लापता व्यक्ति और अभियुक्त एक साथ थे । न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जा सकता है । ऐसी स्थिति में एक साथ देखे जाने और शव या कंकाल, जो भी बरामद हुआ हो, के बीच समय की निकटता अधिक महत्वपूर्ण नहीं है । अभि. सा. 1, 2, 3, 5, 9 और 10 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त को अंतिम बार डायना के साथ देखा गया था । किंतु, जैसाकि पहले ही उपदर्शित किया गया है, दोषसिद्धि अभिलिखित करने के लिए यह साक्ष्य स्वयं में पर्याप्त नहीं है और अभियोजन पक्ष को अभियुक्त का दोष साबित करने के लिए परिस्थितियों की संपूर्ण शृंखला को पूरा करना होगा । (पैरा 18)

साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन यह स्पष्ट किया गया है कि अभियुक्त से प्राप्त कितनी जानकारी साबित की जा सकती है । “अभिरक्षा” अभिव्यक्ति, जो धारा 27 में उल्लिखित है, का अर्थ औपचारिक अभिरक्षा नहीं है जिसके अंतर्गत पुलिस द्वारा किसी भी प्रकार का सर्वेक्षण, प्रतिषेध या अवरोध किया जाना सम्मिलित है । चाहें अभियुक्त को औपचारिक रूप से उस समय गिरफ्तार नहीं किया गया था जब अभियुक्त ने जानकारी दी थी, तब भी सभी व्यावहारिक प्रयोजनों से अभियुक्त पुलिस अभिरक्षा में ही था । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि

अभियुक्त पुलिस की ऐसी निगरानी में था जिसके दौरान उसकी गतिविधियां सीमित थीं तब इसे अभिरक्षीय निगरानी कहा जा सकता है। परिणामतः, “अभिरक्षा” में अभियुक्त द्वारा दी गई इतनी जानकारी जिसके परिणामस्वरूप कोई तथ्य प्रकट हुआ है, साक्ष्य में स्वीकार्य है चाहे ऐसी जानकारी संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह पूर्णतया सामान्य है कि अभियुक्त के कथन के स्वीकार्य भाग के आधार पर, जब कभी और जहां भी बरामदगी की जाती है, वह साक्ष्य में स्वीकार्य होती है और ऐसी परिस्थितियों में अभियुक्त को न्यायालय के समाधान के लिए यह स्पष्ट करना होगा कि बरामदगी की प्रकृति क्या है और बरामद की गई वस्तुएं अभियुक्त के कब्जे में कैसे आई या उस जगह पर किस प्रकार पहुंचाई गई जहां से उन्हें बरामद किया गया है। न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है। यह उपधारणा की गई है कि कंकाल की बरामदगी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के निबंधनों में नहीं की गई है क्योंकि अभियुक्त कथन देने के समय पर पुलिस अभिरक्षा में नहीं था, अभियुक्त द्वारा इस प्रकार दिया गया कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अधीन “आचरण” के रूप में स्वीकार्य होगा। वर्तमान मामले में, इस संबंध में अभियुक्त द्वारा कोई भी स्पष्टीकरण बिल्कुल नहीं दिया गया है कि डायना का कंकाल उसके मकान में कैसे छिपाया गया, विशेषकर ऐसी स्थिति में जबकि अभि. सा. 14 को अभियुक्त द्वारा दिया गया कथन साक्ष्य में स्वीकार्य है। (पैरा 20)

न्यायालय को इस बात पर विचार करना होगा कि क्या यह मामला ऐसे विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता जिसमें मृत्यु दंड अधिनिर्णीत किया जा सके, जैसाकि पहले ही अभिनिर्धारित किया गया है। न्यायालय ने तीन परीक्षण अधिकथित किए हैं अर्थात् ‘अपराध परीक्षण’, ‘अपराधी परीक्षण’ और ‘विरल से विरलतम मामला परीक्षण’। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है ‘अपराध परीक्षण’ और ‘अपराधी परीक्षण’ दोनों ही अभियुक्त के विरुद्ध साबित हो गए हैं। तथापि, अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसिल ने यह दलील दी है कि ऐसा कोई अभिलेख नहीं है कि अभियुक्त ने इससे पूर्व कोई अपराध किया हो और पारिस्थितिक साक्ष्य के अतिरिक्त उपरोक्त मामले में कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, इसलिए इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं कि यह अपराध किस प्रकार कारित किया गया है। परिणामतः यह दलील दी गई है कि न्यायालय के लिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है कि यह अपराध बर्बरतापूर्ण किया गया है, इसलिए वर्तमान मामला विरल से विरलतम

मामले की कोटि में नहीं आएगा । न्यायालय को इस दलील में बल दिखाई पड़ता है । मामले के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, न्यायालय का यह मत है कि इस साक्ष्य के अभाव में कि अपराध किस प्रकार कारित किया गया है, यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में नहीं आएगा । परिणामतः न्यायालय मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित करते हैं और बिना किसी माफी के अभियुक्त द्वारा पहले से भोगे गए कारावास के अतिरिक्त 20 वर्ष का कठोर कारावास अधिनिर्णीत करते हैं जिससे न्यायालय की राय में न्याय होगा । (पैरा 36)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 5 एस. सी. सी. 546 : शंकर किशनराव खाडे बनाम महाराष्ट्र राज्य ;	36
[2012]	(2012) 6 एस. सी. सी. 403 : सहदेवन बनाम तमिलनाडु राज्य ;	8
[2012]	(2012) 6 एस. सी. सी. 107 : संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ;	12, 20
[2011]	(2011) 11 एस. सी. सी. 724 : मुस्तकीम उर्फ सिराजुद्दीन बनाम राजस्थान राज्य ;	8
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 714 : ए. एन. वेंकटेश बनाम कर्नाटक राज्य ;	20
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 36 : राजस्थान राज्य बनाम दौलत राम ;	9
[2005]	(2005) 3 एस. सी. सी. 114 : उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश ;	8
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 259 : एंथॉनी डिसूजा बनाम कर्नाटक राज्य ;	35
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 534 : सहदेवन उर्फ सगादेवन बनाम राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक चैन्नई ;	18

[2000]	(2000) 1 एस. सी. सी. 471 : महाराष्ट्र राज्य बनाम सुरेश ;	20
[1997]	(1997) 1 एस. सी. सी. 272 : आंध्र प्रदेश राज्य बनाम गंगुला सत्य मूर्ति ;	20
[1993]	(1993) 509 यू. एस. 579 : डाबर्ट बनाम मैरल डो फार्मस्यूटिकल ;	29
[1989]	(1989) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 706 : पडाला वीरा रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य ;	8
[1980]	(1980) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 716 : लखनपाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य ;	8
[1961]	[1961] 1 एस. सी. आर. 14 : उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमान उपाध्याय ;	9
[1956]	ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 316 : इराडु बनाम हैदराबाद राज्य ;	8
[1952]	ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 343 : हनुमंत पुत्र गोविन्द नारगुंडकर बनाम मध्य प्रदेश राज्य ।	14

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2006 की दांडिक अपील सं. 369.

2003 की दांडिक अपील सं. 1000, 2003 की सरकारी अपील सं. 2726 और 2003 के दांडिक निर्देश सं. 21 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 30 सितंबर, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री सुनील कुमार सिंह, (सुश्री) मुक्ति सिंह और डा. कैलाश चंद
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री रत्नाकर दास (वरिष्ठ अधिवक्ता), एम. आर. शमशाद, विक्रान्त यादव और शशांक सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् ने दिया ।

न्या. राधाकृष्णन् – हम इस मामले में न्यूजीलैंड की निवासी 22

वर्षीय कन्या जिसका नाम डायना क्लेयर रूटले था (जिसे इसमें इसके पश्चात् “डायना” कहा गया है) की नृशंस हत्या के मामले पर कार्यवाही करेंगे जिसमें विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत किया है और उसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है ।

2. वर्ष 1997 में डायना पर्यटक के रूप में भारत आई थी । आगरा देखने के पश्चात्, वह तारीख 7 अगस्त, 1997 को वाराणसी पहुंची और वह ओल्ड विष्णु गेस्ट हाऊस, वाराणसी के कमरा नं. 103 में ठहरी । वह उस गेस्ट हाऊस से तारीख 10 अगस्त, 1997 को लगभग 7.00 बजे पूर्वाह्न में वाराणसी कैंट रेलवे स्टेशन से रेलगाड़ी द्वारा दार्जिलिंग चली गई । इसके पश्चात् वह लापता हो गई और उसके पिता एलन जैक रूटले ने अपनी पुत्री डायना की बाबत कोई भी सूचना प्राप्त न होने पर, उसके लापता होने के संबंध में प्राधिकारियों को इत्तिला दी । पुलिस थाना लक्सा के भारसाधक अधिकारी ने पुलिस कार्मिकों के एक दल के साथ जांच प्रारंभ की किंतु डायना का पता नहीं चल सका । इसके पश्चात् यह पता चला कि धरम देव यादव नाम के एक पर्यटन-गाइड का, जो इस मामले में अभियुक्त है, डायना के साथ कुछ संबंध था और इसके पश्चात् तारीख 24 अप्रैल, 1998 को पुलिस दल ने नगर पुलिस अधीक्षक, वाराणसी के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो निम्न प्रकार है :-

श्रीमान्,

विषय : डायना क्लेयर रूटले, आयु 25 वर्ष ।

मैं अपनी पुत्री डायना क्लेयर रूटले के लापता होने के संबंध में लिख रहा हूँ जिसे अंतिम बार 10 अगस्त, 1997 को वाराणसी में देखा गया था । वह तारीख 7 अगस्त, 1997 को प्रातःकाल वाराणसी पहुंची थी । वह ओल्ड विष्णु गेस्ट हाऊस में ठहरी थी । उसने अंतिम बार तारीख 8 अगस्त, 1997 को अपने परिवार से उस समय संपर्क किया था जब मैंने उसे ओल्ड विष्णु गेस्ट हाऊस में फोन किया था और उसने मुझे एक पत्र भी लिखा था । इसके पश्चात् से उसके परिवार और मित्रों का डायना के साथ कोई संपर्क नहीं बना है ।

जो व्यक्ति डायना के लापता होने में आलिप्त हो सकता है वह धरम देव यादव है जो वाराणसी में स्थानीय गाइड है और ओल्ड विष्णु गेस्ट हाऊस के लिए काम करता है । यदि वह डायना के लापता होने में आलिप्त नहीं है तब भी निश्चय ही उसको यह जानकारी होगी कि

वह लापता होने वाले दिन कहां-कहां गई थी ।

3. इसके पश्चात् एलन जैक रूटले भारत आया और उसने तारीख 28 जुलाई, 1998 को लगभग 4.45 बजे अपराह्न में पुलिस थाना, भेलूपुर, जिला वाराणसी में अपराध सं. 254/98 के अनुसार भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 366 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श क-34) दर्ज कराई, जिसमें अभियुक्त धरम देव यादव को संदिग्ध व्यक्ति के रूप में नामित किया । पुलिस थाना शिवपुर, वाराणसी के भारसाधक अधिकारी अनिल कुमार राय (अभि. सा. 14) को यह सूचना प्राप्त हुई कि तारीख 19 अगस्त, 1998 को अभियुक्त शिवपुर रेलवे स्टेशन, वाराणसी पर पहुंचेगा । अभि. सा. 14 ने अभियुक्त को रेलवे स्टेशन पर पाया और उससे पूछताछ की । अभियुक्त ने यह संस्वीकृत किया कि उसने डायना की हत्या कारित की है और उसने काली चरण यादव, सिन्धु हरिजन और रामकरण चौहान को भी सह-अभियुक्तों के रूप में नामित किया । अभियुक्त के साथ अभि. सा. 14 और उपनिरीक्षक इंद्र कुमार मंडल, पुलिस थाना बहरियाबाद, गाजीपुर (अभि. सा. 15) ग्राम वृन्दावन, जिला गाजीपुर में स्थित उसके मकान पर गए और उसने अपनी चाबी से अपने मकान का ताला खोला और उसने उस स्थान की ओर संकेत किया जहां पर उसने गला घोटकर डायना की हत्या की थी और उसे जमीन में दबाया था । अभियुक्त से उस जगह को खोदने तथा शव बाहर निकालने के लिए कहा गया और अभियुक्त ने फावड़े की सहायता से ऐसा किया और डायना का कंकाल वहां से प्राप्त हुआ । इसके पश्चात् अभि. सा. 14 ने तारीख 19 अगस्त, 1998 को उसे गिरफ्तार किया और उसने उसके प्रकटीकरण कथन के आधार पर अन्य तीन व्यक्तियों को तारीख 19 अगस्त, 1998 को गिरफ्तार किया गया जिन्हें इस घटना में आलिप्त बताया गया था । तहसील जखनिया, जिला गाजीपुर के उपखंड मजिस्ट्रेट श्री राजेन्द्र प्रताप सिंह (अभि. सा. 16) के निदेशानुसार अभि. सा. 15 द्वारा कंकाल की मृत्यु समीक्षा तैयार की गई । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात्, पुलिस ने काली चरण यादव, सिन्धु हरिजन, राम करण चौहान, केसर यादव और महेश चंद्र मिश्रा को तारीख 19 अगस्त, 1998 को गिरफ्तार किया और दंड संहिता की धारा 366, 302, 201 और 394 के अधीन अपराधों के लिए आरोप पत्र (प्रदर्श क-40 और प्रदर्श क-41) प्रस्तुत किए । तारीख 20 अगस्त, 1998 को चिकित्सकों के एक दल द्वारा, जिनमें डा. आर. बी. सिंह, डा. एस. के. त्रिपाठी और डा. बी. के. गुप्ता थे, कंकाल का शवपरीक्षण किया गया

जिसके संबंध में रिपोर्ट प्रदर्श क-18 है ।

4. मामले को सेशन न्यायालय के सुपुर्द किए जाने के पश्चात्, सेशन न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 411 के अधीन काली चरण, केसर यादव और महेश चंद्र मिश्रा के विरुद्ध आरोप विरचित किए । अपीलार्थी काली चरण यादव, सिन्धू हरिजन और राम करण चौहान के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302/34, 201 और 394 के अधीन आरोप विरचित किए गए साथ ही अपीलार्थी पर दंड संहिता की धारा 364 के अधीन अपराध के लिए भी आरोप विरचित किया गया ।

5. अभियोजन पक्ष ने आरोपों को साबित करने के लिए 27 साक्षियों की परीक्षा की । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा किसी भी साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है ।

6. विचारण न्यायालय ने काली चरण यादव, सिन्धू हरिजन और राम करण चौहान को दोषमुक्त कर दिया किंतु अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए जाने के लिए दोषी पाया, किंतु उसे दंड संहिता की धारा 364 और 394 के अधीन अपराधों के लिए आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । विचारण न्यायालय ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता है क्योंकि अभियुक्त ने एक विदेशी कन्या का गला घोटकर हत्या की है जो भारत घूमने आई थी और विचारण न्यायालय ने उसे मृत्यु दंड अधिनिर्णीत किया ।

7. इस आदेश से व्यथित होकर, अभियुक्त ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष 2003 की दांडिक अपील सं. 1000 फाइल की और राज्य ने शेष अभियुक्तों की दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध 2003 की सरकारी अपील सं. 2726 फाइल की । 2003 के दांडिक निर्देश सं. 21 के साथ दोनों अपीलों की एक साथ सुनवाई की गई । उच्च न्यायालय ने दोनों अपीलें खारिज कर दीं और विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत मृत्यु दंडादेश की यह अभिनिर्धारित करते हुए पुष्टि की कि यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता है और इसी आदेश के विरुद्ध यह अपील फाइल की गई है ।

8. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री सुनील कुमार सिंह ने यह दलील दी है कि ऐसे मामले में जो पूर्णतया पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित हो, संचयी रूप से विचार में ली गई

परिस्थितियों से साक्ष्य की ऐसी पूर्ण शृंखला बननी चाहिए कि केवल यही निष्कर्ष निकले कि सभी मानवीय संभाव्यताओं के अंतर्गत, अपराध किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं अपितु अभियुक्त द्वारा ही कारित किया गया है। इस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा जिन परिस्थितियों को बताया गया है वे काउंसेल के अनुसार निश्चयक और संगत नहीं हैं और इन परिस्थितियों का इस संबंध में कोई भी अवलंब नहीं लिया जा सकता है कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है। विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में **पडाला वीरा रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य¹** और **मुस्तकीम उर्फ सिराजुद्दीन** बनाम **राजस्थान राज्य²** वाले मामले सहित अनेक निर्णयों का अवलंब लिया है। विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि यह अभिनिर्धारित करने के लिए अभि. सा. 1, 2, 3, 5, 9 और 10 पूर्णतया अविश्वसनीय साक्षी हैं कि मृतक को अंतिम बार अभियुक्त के साथ तारीख 10 अगस्त, 1997 को देखा गया था। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि साक्षियों ने डायना की शनाख्त नेगेटिव देखकर नहीं बल्कि केवल उसका फोटो (प्रदर्श-1) देखकर की है।

विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि किसी भी स्थिति में मात्र इस तथ्य से कि अपीलार्थी को मृतक के साथ देखा गया था, यह अकाट्य निष्कर्ष नहीं निकलता है कि अपीलार्थी ने यह अपराध कारित किया है। अपनी दलील के समर्थन में **लखनपाल** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य³**, **इराडु** बनाम **हैदराबाद राज्य⁴**, **सहदेवन** बनाम **तमिलनाडु राज्य⁵** और **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सतीश⁶** वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया है।

9. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अभिकथित संस्वीकृति और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन अभियुक्त के कहने पर की गई बरामदगी को साक्ष्य नहीं माना जा सकता है क्योंकि ऐसा पुलिस अभिरक्षा में रहने के दौरान किया गया है। विद्वान् काउंसेल ने

¹ (1989) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 706.

² (2011) 11 एस. सी. सी. 724.

³ (1980) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 716.

⁴ ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 316.

⁵ (2012) 6 एस. सी. सी. 403.

⁶ (2005) 3 एस. सी. सी. 114.

अपनी दलील के समर्थन में उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमान उपाध्याय¹ और राजस्थान राज्य बनाम दौलत राम² वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया है। विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि पुलिस ने संहिता की धारा 100(4) और (5) के उपबंधों का अनुसरण किए बिना बरामदगी की हैसियत से तलाशी और अभिग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त, यह भी दलील दी गई है कि तलाशी और अभिग्रहण के दौरान कोई भी स्वतंत्र साक्षी मौजूद नहीं था। विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि अभि. सा. 16 के साक्ष्य का परिशीलन करने से ही यह बात अत्यंत संदिग्ध हो जाती है कि अभियुक्त के मकान से कंकाल बरामद हुआ था और इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि अभियुक्त के मकान में कंकाल लाकर डाला गया था। विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अभि. सा. 19 का साक्ष्य, जिसने शवपरीक्षण किया था, स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसने सुस्वीकृत प्रक्रिया का पालन नहीं किया है। अभि. सा. 21 के मौखिक साक्ष्य को निर्दिष्ट करते हुए, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि डीएनए रिपोर्ट का अधिक अवलंब नहीं लिया जा सकता है क्योंकि डीएनए संबंधी साक्ष्य को स्वीकार किए जाने के बावत बहुत संविवाद हुआ है और जिन देशों से यह परीक्षण उद्भूत हुआ है वहां पर भी डीएनए रिपोर्ट पर संविवाद होता है।

10. विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि किसी भी स्थिति में यह मामला ऐसे विरल से विरलतम मामले की कोटि में नहीं आता है जिसमें मृत्युदंड अधिनिर्णीत किया जाना आवश्यक हो। विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि यह मामला पूर्णतया पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है और अपराध कारित किए जाने के समय पर अपीलार्थी की आयु मात्र 34 वर्ष थी और इसके पश्चात् उसका विवाह हुआ और उसके परिवार में उसकी पत्नी, बच्चे और पिता हैं। इसके अतिरिक्त, यह भी दलील दी गई है कि वह मूल रूप से रिक्शा चालक है जो अत्यधिक निर्धन परिवार से है और अपीलार्थी में सुधार आ सकता है और उसका पुनर्वासन किया जा सकता है।

11. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री रत्नाकर दास ने यह दलील दी है कि यह मामला पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है और विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को

¹ [1961] 1 एस. सी. आर. 14.

² (2005) 7 एस. सी. सी. 36.

दोषी ठहराने में न्यायोचित किया है क्योंकि अपराध में फंसाने वाली सभी परिस्थितियां अभियुक्त की निर्दोषिता के साथ मेल नहीं खाती हैं। विद्वान् वरिष्ठ काउंसिल ने अभि. सा. 1, 2, 3, 5, 9 और 10 के मौखिक साक्ष्य का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि उनके साक्ष्यों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि मृतका को अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया था। अभि. सा. 3 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि अभियुक्त और डायना दोनों को वाराणसी के कैंट रेलवे स्टेशन तक एक साथ देखा गया था। विद्वान् काउंसिल ने यह दलील दी है कि इन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त डायना का गाइड बनकर उसे अपने मूल निवास (ग्राम) पर ले गया, वहां कुछ दिन ठहरा और उसने डायना की हत्या कर दी और तत्पश्चात् अपने ही मकान में उसका शव दबा दिया।

12. विद्वान् वरिष्ठ काउंसिल ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 को निर्दिष्ट करते हुए यह दलील दी है कि पुलिस अभिरक्षा में अभियुक्त द्वारा जो कुछ जानकारी दी जाती है और उसके परिणामस्वरूप जो तथ्य प्रकट होता है वह साक्ष्य में स्वीकार्य होता है, चाहे ऐसी जानकारी संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं। विद्वान् काउंसिल ने यह दलील दी है कि यदि यह मान लिया जाए कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के निबंधनों में बरामदगी नहीं हुई है और अभियुक्त अपना कथन देने के समय तक पुलिस अभिरक्षा में नहीं था, तब भी ऐसा करना साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अधीन “आचरण” के रूप में स्वीकार्य होगा। अपनी दलील के समर्थन में विद्वान् काउंसिल ने **संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹** वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है।

13. विद्वान् वरिष्ठ काउंसिल ने अभि. सा. 19 और 20 के साक्ष्य को भी निर्दिष्ट किया है और अभि. सा. 19 द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया को भी स्पष्ट किया है जिसने डायना के कंकाल का शवपरीक्षण किया था। अभि. सा. 20 ने डायना के अंगों की परीक्षा की है और डीएनए परीक्षण के लिए ऊर्विका (जंघास्थि) और प्रगंडिका को परिरक्षित किया है और शॉर्ट टेंडम स्पेस रिपीट्स विश्लेषण के माध्यम से अभि. सा. 21 द्वारा डीएनए परीक्षण किया गया। विद्वान् वरिष्ठ काउंसिल ने यह दलील दी है कि अभि. सा. 13, 19, 20 और 21 के साक्ष्य का परिशीलन करने पर संदेह के परे यह

¹ (2012) 6 एस. सी. सी. 107.

साबित हो गया है कि अभियुक्त के मकान से प्राप्त किया गया कंकाल डायना का ही है ।

14. वर्तमान मामले में हमारे समक्ष किसी भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है और संपूर्ण मामला पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है । पारिस्थितिक साक्ष्य सुसंगत तथ्यों का ऐसा साक्ष्य है जिससे कोई भी व्यक्ति तर्कणा द्वारा विवाद्यक तथ्यों की विद्यमानता में हस्तक्षेप कर सकता है । **हनुमंत पुत्र गोविन्द नारगुंडकर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :-

“यह दोहराना उचित होगा कि ऐसे मामलों में जिनमें साक्ष्य पारिस्थितिक प्रकृति का होता है उनमें परिस्थितियां ऐसी होनी चाहिए जिनसे अभियुक्त के दोषी होने का निष्कर्ष पहली बार में ही पूर्ण रूप से निकाला जा सके और इस प्रकार सिद्ध किए गए सभी तथ्य अभियुक्त के दोषी होने की परिकल्पना के साथ ही संगत होने चाहिए । इसके अतिरिक्त परिस्थितियां निश्चयक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए और उनसे अन्य कोई निष्कर्ष नहीं अपितु केवल प्रस्तावित निष्कर्ष ही निकालना चाहिए । अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि साक्ष्य की शृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि ऐसा निष्कर्ष निकालने के लिए कोई भी युक्तियुक्त आधार न हो जो अभियुक्त की निर्दोषिता के संगत हो और साक्ष्य ऐसा होना चाहिए जिससे यह दर्शित होता हो कि सभी मानवीय संभाव्यताओं के अंतर्गत अभियुक्त द्वारा ही अपराध कारित किया गया है ।”

अपराध में फंसाने वाली प्रत्येक परिस्थिति विश्वसनीय और ठोस साक्ष्य से सिद्ध होनी चाहिए और इस प्रकार साबित की गई परिस्थितियों से घटनाओं की ऐसी शृंखला बननी चाहिए जिससे केवल अभियुक्त के दोषी होने का अकाट्य निष्कर्ष सुगमता से निकाला जा सके और उसके दोषी होने के विरुद्ध अन्य कोई भी परिकल्पना न की जा सके । अपराध से संबंधित आरोप का समर्थन करने के लिए यदि कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है किंतु अभियोजन पक्ष ने परिस्थितियों की शृंखला सिद्ध कर दी है जिससे अभियुक्त के पूर्णतया दोषी होने का निष्कर्ष निकलता है और परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार करने पर किसी भी युक्तियुक्त परिकल्पना के आधार पर अभियुक्त के दोषी होने के सिवाय कोई भी स्पष्टीकरण न दिया

¹ ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 343.

जा सके, तब भी अभियुक्त को ऐसे पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध किया जा सकता है।

15. मृतका डायना 22-24 वर्ष की एक कन्या थी जो न्यूजीलैंड की निवासी थी और वर्ष 1997 में भारत में भ्रमण के लिए आई थी। तारीख 7 अगस्त, 1997 को वह वाराणसी पहुंची और तारीख 10 अगस्त, 1997 को 7.00 बजे पूर्वाह्न में ओल्ड विष्णु गेस्ट हाऊस में ठहरी, वह गेस्ट हाऊस से चली गई और उसी समय से लापता हो गई। ओल्ड विष्णु गेस्ट हाऊस के प्रबंधक (अभि. सा. 4) ने सुसंगत समय पर यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 7 अगस्त, 1997 से 10 अगस्त, 1997 तक डायना ने गेस्ट हाऊस के कमरा नं. 103 में निवास किया था। डायना के साथ दो अन्य लड़कियां भी आई थीं और वे तारीख 8 अगस्त, 1997 को लगभग 11.45 बजे पूर्वाह्न में होटल से चली गई थीं। इसके अतिरिक्त, यह कथन किया गया है कि अभियुक्त और नसीम नाम का एक व्यक्ति इस गेस्ट हाऊस में ठहरने वाले व्यक्तियों के लिए गाइड का काम करते थे और तारीख 8 अगस्त, 1997 से 10 अगस्त, 1997 तक अपीलार्थी ने डायना के गाइड के रूप में कार्य किया था।

अंतिम बार देखा जाना

16. अभि. सा. 2 ओल्ड विष्णु गेस्ट हाऊस में सुसंगत समय के दौरान अर्थात् तारीख 7 अगस्त, 1997 से 10 अगस्त, 1997 तक ड्यूटी पर था। अभि. सा. 2 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त गेस्ट हाऊस में गाइड के रूप में आया करता था और उसने डायना को अभियुक्त के साथ इधर-उधर घूमते हुए देखा था। अभि. सा. 1 ने अभि. सा. 2 के साक्ष्य की भी संपुष्टि की है। अभि. सा. 1 वाराणसी नगर में रिक्शा चलाता था, उसने यह कथन किया है कि अभियुक्त स्वयं भी वर्ष 1993 से 1996 तक रिक्शा चलाता था। इसके पश्चात् अभियुक्त ने रिक्शा चलाना छोड़ दिया और गाइड के रूप में कार्य करने लगा। अभि. सा. 1 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने अभियुक्त को एक विदेशी महिला के साथ रिक्शे में देखा था और इस साक्षी ने फोटो देखकर यह बताया कि यह वही महिला (मृतका) है जिसे उसने सुसंगत समय के दौरान अभियुक्त के साथ देखा था। अभि. सा. 3 भी किराये पर रिक्शा चलवाया करता था और अभियुक्त उससे किराये पर रिक्शा लिया करता था। अभि. सा. 3 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है वह अभियुक्त से तारीख 10 अगस्त, 1997 को एक विदेशी महिला के साथ वाराणसी के कैंट रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म नं. 1

पर मिला था और उसने डायना के फोटो को पहचानकर बताया था कि यह वही महिला है। अभि. सा. 3 ने यह भी अभिकथन किया है कि वह भी उस ट्रेन में चढ़ा था जिसमें अभियुक्त तथा डायना चढ़े थे। अभि. सा. 3 ने यह भी कथन किया है कि उसने अभियुक्त और उस महिला को हरमुजपुर स्टेशन पर उतरते हुए देखा था और अभि. सा. 3 ने अपनी यात्रा आगे जारी रखी।

17. अभि. सा. 9 स्वतंत्र साक्षी है उसने भी यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने अभियुक्त को उस समय डायना के साथ देखा था जब वह उनके ग्राम में आए थे और डायना अभियुक्त के मकान में ठहरी थी। अभि. सा. 9 ने डायना के फोटो की शनाख्त की है और यह कथन किया है कि यह वही महिला है जो अभियुक्त के साथ ठहरी थी।

18. यह एक सामान्य विधि है कि अभियुक्त के विरुद्ध दोषसिद्धि मात्र इस आधार पर अभिलिखित नहीं की जा सकती है कि अभियुक्त अंतिम बार मृतक के साथ देखा गया था। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि दोषसिद्धि अंतिम बार एक साथ देखे गए एक मात्र पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर नहीं की जा सकती है। अभियुक्त का आचरण और एक साथ देखे जाने का तथ्य तथा अन्य पारिस्थितिक साक्ष्यों पर विचार किया जाना चाहिए। सामान्यतः, अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत उस समय महत्वपूर्ण होता है जब अभियुक्त और मृतक को अंतिम बार जीवित देखे जाने और मृतक के मृत पाए जाने के बीच का समयांतराल इतना कम हो कि अभियुक्त के सिवाय अन्य किसी व्यक्ति का अपराधी होना असंभव हो जाए। ऐसे कुछ मामलों में सकारात्मक रूप से यह सिद्ध करना कठिन होगा कि मृतक अंतिम बार अभियुक्त के ही साथ था जिनमें (मृतक को अंतिम बार देखे जाने और उसके मृत पाए जाने के बीच) लंबा समयांतराल होता है और इस दौरान मृतक के साथ उसकी मृत्यु के पूर्व अन्य व्यक्तियों का होना संभावित होता है।

तथापि, यदि अभियोजन पक्ष ने विश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध किया है कि लापता व्यक्ति को अभियुक्त के साथ देखा गया था और उसके पश्चात् कभी भी नहीं देखा गया तब अभियुक्त की यह बाध्यता है कि वह उन परिस्थितियों को स्पष्ट करे जिनमें लापता व्यक्ति और अभियुक्त एक साथ थे। सहदेवन उर्फ सगादेवन बनाम राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक चैन्नई¹ वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय को

¹ (2003) 1 एस. सी. सी. 534.

निर्दिष्ट किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में एक साथ देखे जाने और शव या कंकाल, जो भी बरामद हुआ हो, के बीच समय की निकटता अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। अभि. सा. 1, 2, 3, 5, 9 और 10 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभियुक्त को अंतिम बार डायना के साथ देखा गया था। किंतु, जैसाकि पहले ही उपदर्शित किया गया है, दोषसिद्धि अभिलिखित करने के लिए यह साक्ष्य स्वयं में पर्याप्त नहीं है और अभियोजन पक्ष को अभियुक्त का दोष साबित करने के लिए परिस्थितियों की संपूर्ण शृंखला को पूरा करना होगा।

कंकाल की बरामदगी

19. अभि. सा. 14 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि उसे यह सूचना मिली थी कि अपीलार्थी शिवपुर रेलवे स्टेशन पर पहुंचेगा और इसीलिए वह इत्तिलाकर्ता के साथ रेलवे स्टेशन की ओर तुरंत चल दिया और उसने अभियुक्त को प्लेटफार्म पर देखा। अभि. सा. 14 ने उससे परिप्रश्न किया और अभियुक्त ने अपना नाम और पता बताया। अभियुक्त ने यह स्वीकार किया कि वह डायना का गाइड था और डायना उसके ग्राम जाना चाहती थी, वह डायना के साथ तारीख 10 अगस्त, 1997 को अपने ग्राम गया। अभियुक्त ने यह भी स्वीकार किया है कि उसने डायना की हत्या की है और अपने मकान में उसका शव दबाया है। इसके पश्चात् अभि. सा. 14, अभि. सा. 15 को साथ लेकर अभियुक्त के ग्राम गया और अभियुक्त ने अपनी चाबी से अपने मकान का ताला खोला और उसने उस स्थान की ओर संकेत किया जहां उसने डायना का शव दबाया था। स्वयं अभियुक्त ने फावड़े से उस जगह खुदाई की और कंकाल बरामद किया इसके पश्चात् अभि. सा. 14 ने अभियुक्त को गिरफ्तार किया और उसके प्रकटीकरण के आधार पर अन्य अभियुक्तों को भी गिरफ्तार किया गया। उपखंड मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 16) की मौजूदगी में कंकाल की मृत्यु समीक्षा की गई। यह दलील दी गई है कि अभियुक्त का कथन/संस्वीकृति (उपाबंध प्रदर्श पी-5) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन अस्वीकार्य है, क्योंकि अभियुक्त अभि. सा. 14 की अभिरक्षा में नहीं था। अभि. सा. 14 और अभि. सा. 15 के साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि वे अभियुक्त के इस प्रकटीकरण कथन के आधार पर डायना का कंकाल बरामद नहीं करा सकते थे कि उसने डायना का शव अपने मकान में दबाया है। अभियुक्त द्वारा बताए गए स्थान से शव की बरामदगी और अपराध में फंसाने वाली सामग्री से तीन संभावनाएं सामने आती हैं :-

- (I) स्वयं अभियुक्त ने शव छुपाया है ;
- (II) अभियुक्त ने अन्य किसी व्यक्ति को शव को छुपाते हुए देखा है ; और
- (III) अन्य किसी व्यक्ति ने अभियुक्त को यह बताया हो कि शव यहां दबा हुआ है ।

चूंकि शव अभियुक्त के मकान में पाया गया है इसलिए अभियुक्त को यह स्पष्ट करना होगा कि उसके मकान में शव छुपा हुआ क्यों पाया गया है ।

20. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन यह स्पष्ट किया गया है कि अभियुक्त से प्राप्त कितनी जानकारी साबित की जा सकती है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 निम्न प्रकार है :-

“धारा 27. अभियुक्त से प्राप्त जानकारी में से कितनी साबित की जा सकेगी – परंतु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस ऑफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतना चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी तद्द्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, साबित की जा सकेगी ।”

“अभिरक्षा” अभिव्यक्ति, जो धारा 27 में उल्लिखित है, का अर्थ औपचारिक अभिरक्षा नहीं है जिसके अंतर्गत पुलिस द्वारा किसी भी प्रकार का सर्वेक्षण, प्रतिषेध या अवरोध किया जाना सम्मिलित है । चाहे अभियुक्त को औपचारिक रूप से उस समय गिरफ्तार नहीं किया गया था जब अभियुक्त ने जानकारी दी थी, तब भी सभी व्यावहारिक प्रयोजनों से अभियुक्त पुलिस अभिरक्षा में ही था । इस न्यायालय ने **आंध्र प्रदेश राज्य बनाम गंगुला सत्य मूर्ति¹** वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि अभियुक्त पुलिस की ऐसी निगरानी में था जिसके दौरान उसकी गतिविधियां सीमित थीं तब इसे अभिरक्षीय निगरानी कहा जा सकता है । परिणामतः, “अभिरक्षा” में अभियुक्त द्वारा दी गई इतनी जानकारी जिसके परिणामस्वरूप कोई तथ्य प्रकट हुआ है, साक्ष्य में स्वीकार्य है चाहे ऐसी जानकारी संस्वीकृति की

¹ (1997) 1 एस. सी. सी. 272.

कोटि में आती हो या नहीं। ए. एन. वेंकटेश बनाम कर्नाटक राज्य¹ वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के निर्णय को भी निर्दिष्ट किया जा सकता है। संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य² वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह पूर्णतया सामान्य है कि अभियुक्त के कथन के स्वीकार्य भाग के आधार पर, जब कभी और जहां भी बरामदगी की जाती है, वह साक्ष्य में स्वीकार्य होती है और ऐसी परिस्थितियों में अभियुक्त को न्यायालय के समाधान के लिए यह स्पष्ट करना होगा कि बरामदगी की प्रकृति क्या है और बरामद की गई वस्तुएं अभियुक्त के कब्जे में कैसे आईं या उस जगह पर किस प्रकार पहुंचाई गईं जहां से उन्हें बरामद किया गया है। इस सिद्धांत के समर्थन में महाराष्ट्र राज्य बनाम सुरेश³ वाले मामले में भी किए गए इस न्यायालय के निर्णय को निर्दिष्ट किया जा सकता है। यह उपधारणा की गई है कि कंकाल की बरामदगी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के निबंधनों में नहीं की गई है क्योंकि अभियुक्त कथन देने के समय पर पुलिस अभिरक्षा में नहीं था, अभियुक्त द्वारा इस प्रकार दिया गया कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अधीन “आचरण” के रूप में स्वीकार्य होगा। वर्तमान मामले में, इस संबंध में अभियुक्त द्वारा कोई भी स्पष्टीकरण बिल्कुल नहीं दिया गया है कि डायना का कंकाल उसके मकान में कैसे छिपाया गया, विशेषकर ऐसी स्थिति में जबकि अभि. सा. 14 को अभियुक्त द्वारा दिया गया कथन साक्ष्य में स्वीकार्य है।

21. उपखंड मजिस्ट्रेट, तहसील जखानिया, जिला गाजीपुर (अभि. सा. 16) को ग्राम वृन्दावन में शव बरामदगी का मृत्यु समीक्षा संबंधी ज्ञापन तैयार करने के लिए पुलिस थाना बहरियाबाद के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट के तारीख 19 अगस्त, 1998 का आदेश प्राप्त हुआ था। परिणामतः, अभि. सा. 16 तारीख 19 अगस्त, 1998 को 3.30 बजे अपराह्न में वृन्दावन पहुंचा और उसने अभियुक्त के मकान के कमरे के उत्तर-पूर्वी एक कोने में बने गड्ढे में शव पड़ा हुआ देखा था। अभि. सा. 16 ने 4.00 बजे अपराह्न में मृत्यु समीक्षा आरंभ की और उसके निदेश दिए जाने पर अभि. सा. 15 ने मृत्यु समीक्षा ज्ञापन तैयार किया और गड्ढे में से कंकाल

¹ (2005) 7 एस. सी. सी. 714.

² (2012) 6 एस. सी. सी. 107.

³ (2000) 1 एस. सी. सी. 471.

निकाला गया और उसे मकान के बाहर रखा गया । अभि. सा. 16 ने लकड़ी के एक बक्से में कंकाल को रखा और उसे मुहरबंद किया । अभि. सा. 17 ने यह अभिकथन किया है कि उसने लकड़ी के बक्से में रखे हुए कंकाल को गाजीपुर मुख्यालय के शवगृह में पहुंचाया । अभि. सा. 17 ने यह अभिकथन किया है कि कंकाल सुनील कुमार राय की अभिरक्षा में था, कंकाल को बक्से में बंद किया गया और मुहरबंद किया गया तथा इसके अतिरिक्त साक्ष्य में ऐसी कोई बात नहीं आई है जिसके आधार पर इस साक्षी के परिसाक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया जा सके ।

22. डा. जी. डी. त्रिपाठी (अभि. सा. 19) ने यह कथन किया है कि तारीख 20 अगस्त, 1998 को जब वह डा. राम मूर्ति सिंह और डा. डी. के. गुप्ता के साथ जिला अस्पताल गाजीपुर में वरिष्ठ हृदय रोग विशेषज्ञ के रूप में तैनात था तब उसने बरामद किए गए कंकाल की शवपरीक्षा की थी । अभि. सा. 19 ने यह कथन किया है कि अभि. सा. 17 ही लकड़ी के बक्से में मुहरबंद करके कंकाल लाया था । अभि. सा. 19 ने शवपरीक्षण के दौरान निम्न लक्षण पाए :-

“मुहरबंद बक्से को खोलने पर नवयुवती का कंकाल रूपी शव प्रतीत होता है जिसकी कद-काठी औसत है । खोपड़ी पर बालों का रंग सुनहरी भूरा है जो खोपड़ी से जुड़े हुए हैं ।

1. करोटि पर बाल हैं ।
2. चेहरे की अस्थियां, ऊपरी जबड़ा और निचला जबड़ा मौजूद है ।
3. हाथ-पांव (बांहों और टांगों सहित) की अस्थियां, मांसपेशियां मिट्टी से चिपकी हुई हैं ।
4. वक्ष की भित्ति में कुछ पसलियां दिखाई पड़ रही हैं ।
5. कशेरुक का निचला भाग और वक्षीय भाग तथा त्रिकास्थि (सैक्रम) मौजूद है ।
6. दोनों श्रोणिकास्थि मौजूद हैं ।
7. दोनों स्कंधास्थि मौजूद हैं ।

हड्डियां अपघटित नहीं हैं, बांहों और टांगों की अस्थियां मांस पेशियों के साथ जुड़ी हैं

झिल्लियां, सिर, मेरुरज्जु, फुफ्फुसावरण, दोनों फेफड़े, हृदयावरण, हृदय, रक्त वाहनियां मौजूद नहीं हैं ।

कंकाल की सभी अस्थियों को रासायनिक विश्लेषण के लिए तैयार किया गया है ।

निचले जबड़े की स्थिति निम्न प्रकार है :-

1. अग्र-सम्मुख दंत - दो
2. पार्श्विक सम्मुख दंत - दो
3. कील-दंत - दो
4. बाहरी दाढ़ें - चार
5. भीतरी दाढ़ें - चार

तृतीय दाड़ के लिए द्वितीय दाड़ के पीछे निचले और ऊपरी दोनों जबड़ों में रिक्त स्थान मौजूद है ।

मृत्यु का कारण सुनिश्चित नहीं किया जा सका है, इसलिए करोटि, बाल और मिट्टी सहित अस्थियों को विश्लेषण के लिए परिरक्षित किया गया है ।”

23. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के न्यायालयिक औषध विभाग के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष डा. सी. बी. त्रिपाठी (अभि. सा. 20) ने तारीख 10 अगस्त, 1998 को लगभग 12.30 बजे अपराह्न में शव (कंकाल) का पुनः शवपरीक्षण किया और रिपोर्ट प्रदर्श क-28 तैयार की । इस रिपोर्ट का प्रभावशील भाग निम्न प्रकार है :-

“व्यक्ति की निजी शनाख्त या अनूपता – अध्यारोपण तकनीक – इस मामले में निजी शनाख्त के लिए अध्यारोपण तकनीक का प्रयोग किया गया है जिसके लिए वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, वाराणसी से प्राप्त अभिकथित महिला डायना क्लेयर रूटले के चेहरे के फोटो का प्रयोग किया गया है जिसके माध्यम से काला-सफेद फोटो (प्रदर्श 2) तैयार किया गया, करोटि और अधोहनु को ऐसी शरीरीय स्थिति में रखा गया जैसी स्थिति में करोटि तथा अधोहनु का फोटो (प्रदर्श 3) लिया गया था । फोटो (प्रदर्श 2) और करोटि के फोटो (प्रदर्श 3) के नेगेटिवों को डार्क रूम में लगे स्टैंड में लगाया गया ताकि फोटो का छायाचित्र (रजिस्ट्रेशन मार्क) प्राप्त हो सके । इसके पश्चात् फोटो के

नेगेटिव को फोटो के कागज पर भागतः अभिदर्शित किया गया और इसके पश्चात् करोटि के नेगेटिव को उसी फोटो पर अध्यारोपित किया गया, इस प्रकार जो अध्यारोपित फोटो (प्रदर्श 4) प्राप्त हुआ उसकी तुलना छायाचित्र और रेखाओं से की गई और यह निष्कर्ष निकाला गया कि वे आपस में पूरी तरह मेल खाती हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि करोटि उसी महिला की है जिसका फोटो है। (उपाबंध - प्रदर्श 1 से प्रदर्श 4 का परिशीलन किया गया है) अभिकथित महिला की व्यक्तिगत पहचान के लिए उसके दंत संबंधी उपचार के अभिलेख की तुलना उसके दांतों और अस्थियों से की गई है ;

डायना क्लेयर रूटले के दंत संबंधी उपचार का अभिलेख (प्रदर्श 5) इंटरपोल सेवा की सहायता से वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक वाराणसी द्वारा उपलब्ध कराया गया है जिसके अनुसार यह पाया गया है - (क) निचले जबड़े में दोनों ओर चर्वणदंत-III का उभार दिखाई देता है किंतु दांत मौजूद नहीं हैं। दंत संबंधी अभिलेख से यह दर्शित होता है कि निचले दोनों चर्वणदंत-III तारीख 8 मार्च, 1993 को निकाले गए थे (ख) ऊपरी दोनों ओर के चर्वणदंत-III मौजूद नहीं हैं और उभार के चिह्न भी दिखाई नहीं दे रहे। डायना क्लेयर रूटले के दांतों के एक्सरे से यह दर्शित होता है कि ऊपरी दोनों चर्वणदंत-III स्पुटित नहीं है (ग) दांतों और बालों के एक्सरे (जिन्हें एस.एस.पी.जी. अस्पताल से प्राप्त किया गया है) की रिपोर्ट (प्रदर्श 6) से यह दर्शित होता है कि ऊपरी बाएं चर्वणदंत-II, ऊपरी दाएं चर्वणदंत-I, निचले बाएं चर्वणदंत और निचले दाएं चर्वणदंत-II भी निचले दोनों ओर के चर्वणदंत-I में गुहाएं (खोखलापन) हैं जिनमें भराव किया गया है। न्यूजीलैंड से प्राप्त डायना की दंत रोग संबंधी तालिका (प्रदर्श 5) और दांतों के एक्सरे (प्रदर्श 7) तथा उनसे संबंधित रिपोर्टों से करोटि और अधोहनु की पूर्णतया यह शनाख्त हो जाती है कि वे डायना क्लेयर रूटले के ही हैं, (घ) अस्थियों से रक्त ग्रुप का पता लगाया गया है कि वह ग्रुप-ए का है। चिकित्सा रिपोर्ट से भी यह पता चलता है कि डायना का रक्त ग्रुप-ए है।

24. अभि. सा. 20 ने यह कथन किया है कि डायना की जंघास्थि और प्रगंडास्थि को उसके पिता के डीएनए से मिलान कराने के उद्देश्य से विश्लेषण और संरचना के लिए परिरक्षित किया गया था। अभि. सा. 20 द्वारा तैयार की गई परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-28) से मृत्यु के कारण का

पता चलता है जो निम्न प्रकार हैं :-

“मृत्यु का कारण :- (1) कंकाल के निचले भाग की उरोस्थि में लगभग वृत्ताकार छिद्र है जिसकी माप 1.2 से. मी. × 0.9 सें. मी. है, उरोस्थि का फोटो (प्रदर्श 8) है ।

(2) मृतका की टी-शर्ट में आगे-पीछे दो छिद्र हैं और एक छिद्र गमछे में भी है । ये वस्त्र बारूद-अवक्षेप के परीक्षण के लिए प्रयोगशाला भेजे गए हैं । इस संबंध में प्राप्त की गई रिपोर्ट (प्रदर्श 9) से बारूद-अवक्षेप की मौजूदगी नकारात्मक हो जाती है जिसका यह कारण हो सकता है कि वस्त्र मिट्टी से पूरी तरह दूषित हो गए थे और यह भी कारण हो सकता है कि गोली इतनी अधिक दूरी से चलाई गई थी कि बारूद का प्रभाव वस्त्रों पर नहीं आया ।

(3) सिर के बाल, अस्थियां और मिट्टी के नमूने परिरक्षित किए गए और कांस्टेबल को रासायनिक विश्लेषण के लिए सुपुर्द किए गए । अभी रिपोर्ट प्राप्त नहीं हुई है । इसलिए मृत्यु का कारण रासायनिक विश्लेषण की अगली रिपोर्ट आने तक स्थगित किया जाता है ।”

इसके पश्चात् अभि. सा. 20 ने डीएनए फिंगरप्रिन्टिंग परीक्षण के लिए कंकाल से जंघास्थि और प्रगंडास्थि निकाली ताकि मृतका और रक्तदाता अर्थात् एलन जैक रूटले (मृतका का पिता) के बीच संबंध सिद्ध हो सके और ये नमूने डीएनए पृथक्करण परीक्षण के लिए नियम और प्रक्रिया अनुसार लिए गए और इन्हें बरामद किए गए कंकाल से निकाली गई जंघास्थि और प्रगंडास्थि के साथ डीएनए फिंगरप्रिन्टिंग और नैदानिक केंद्र, विज्ञान और तकनीक मंत्रालय, भारत सरकार, उप्पल रोड, हैदराबाद के लिए भेज दिया गया था ।

घटनास्थल प्रबंधन

25. घटनास्थल पर बिना किसी त्रुटि के वैज्ञानिक रूप से विचार किया जाना चाहिए । आपराधिक मामलों में, विशेषकर ऐसे मामलों में जो पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित होते हैं, न्यायालयिक विज्ञान की निर्णायक भूमिका है जो अपराध के तत्व, संदिग्ध व्यक्ति की पहचान, अभियुक्त के दोष और निर्दोषिता को सुनिश्चित करने में सहायक होती है । घटनास्थल पर अन्वेषक अधिकारी की सबसे महत्वपूर्ण कार्यवाही ठोस साक्ष्य को ढूंढना है जिसका अपराध में प्रमाणकारी महत्व है । घटनास्थल से सामग्री इकट्ठी

करने, बांधने और उसे आगे भेजने में अन्वेषक अधिकारी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भौतिक साक्ष्य में कोई मिलावट न हो सके। साक्ष्य को परिरक्षित करने के लिए समुचित सावधानी बरतनी चाहिए और इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि प्राप्त की गई सामग्री के साथ कोई भी छेड़छाड़ या उसमें कोई भी मिलावट न की जाए और न ही उसे कोई नुकसान पहुंचाया जाए।

26. अभि. सा. 14 ने यह अभिकथन किया है कि अभियुक्त उसे और अन्य व्यक्तियों को यह कहते हुए कमरे में ले गया था कि उसने डायना के शव को इसी कमरे में दबाया था। अभि. सा. 14 ने अभियुक्त से उसके द्वारा बताए गए स्थान पर खुदाई करने को कहा और अभियुक्त ने कमरे के फर्श पर खोदना आरंभ कर दिया। 6 फुट चौड़ी, 3 फुट लंबी और 2 फुट गहरी खुदाई करने के पश्चात् मानव कंकाल दिखाई दिया। कंकाल से मिट्टी हटाई गई। कंकाल के मुंह में दांत और सिर पर बाल पाए गए। अभि. सा. 14 ने कंकाल अपने कब्जे में लिया और उसने देखा कि अस्थियां ठीक हालत में हैं। कंकाल पर कहीं भी त्वचा नहीं थी और चाय जैसे लाल रंग के कपड़े कंकाल से चिपके हुए थे और उन कपड़ों को मुहरबंद किया गया।

27. गाजीपुर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी (अभि. सा. 15) ने अधिकथित प्रक्रिया का पालन करते हुए पंचनामा तैयार किया। कंकाल का फोटो लिया गया। इसके पश्चात्, सभी प्रक्रियाएं पूरी करने के बाद कंकाल को प्रदर्श ए-14 और ए-15 के अनुसार मुहरबंद किया गया, इसके पश्चात् कंकाल अभि. सा. 17 की अभिरक्षा में दिया गया और उसने कंकाल को शवपरीक्षण के लिए लिए अभि. सा. 19 को सौंप दिया। कंकाल को बरामद करने, बांधने और अभि. सा. 19 को सुपुर्द करने के दौरान ऊपर उल्लिखित साक्षियों द्वारा कोई भी प्रक्रिया संबंधी त्रुटि कारित की गई दिखाई नहीं देती है।

विशेषज्ञ का वैज्ञानिक साक्ष्य

28. इस देश का दांडिक न्यायिक तंत्र कभी-कभी असमंजस में पड़ जाता है, अनेक बार ऐसा होता है कि अपराध के विश्वसनीय, विश्वासप्रद और भरोसेमंद साक्षी आगे बढ़कर न्यायालय के समक्ष अभिसाक्ष्य देते हैं फिर भी जघन्य अपराधी कानून के शिकंजे से बच जाते हैं। अभियोजन पक्ष की ओर से विश्वसनीय साक्षी अभित्रास, भय और अन्य कारणों से

पक्षद्रोही हो जाता है। अतः अन्वेषण अभिक्रम को अन्वेषण की गुणवत्ता को सुधारने के लिए अन्य तरीके अपनाने पड़ते हैं जो केवल वैज्ञानिक साक्ष्य जुटा करके ही संभव है। विज्ञान के इस युग में हमें ऐसे विधिक सिद्धांतों की रचना करनी चाहिए जो विज्ञान और विधि की दृष्टि से ठोस हों। अब लोगों का यह विचार है कि परिपाटी और सिद्धांत जो भूतकाल में अपनाए जाते थे वे अब प्रवर्तनात्मक और सृजनात्मक होने चाहिए ताकि हम अपने दांडिक न्यायिक तंत्र को बचा सकें। नए प्रकार के अपराध और उनके विकृतिकरण के स्तर को देखते हुए पारंपरिक विधि और यंत्र अब पुराने हो गए हैं, इसलिए अपराध का पता लगाने के लिए न्यायालयिक विज्ञान को सशक्त बनाने की आवश्यकता है। मौखिक साक्ष्य अनेक तथ्यों जैसे संप्रेक्षण की शक्ति, तिरस्कार, बाह्य प्रभाव, अनवधानता आदि पर निर्भर होता है जबकि न्यायालयिक साक्ष्य इन सब कमियों से दूर है। न्यायपालिका के पास ऐसी वैज्ञानिक सामग्री को समझने और उस पर विचार करने के लिए साधन होने चाहिए। न्यायाधीशों के निरंतर वैज्ञानिकों, अभियंताओं के साथ बातचीत करते रहने से विज्ञान संबंधी साक्ष्य पर विचार करने के लिए उनके ज्ञान में वृद्धि होगी और वे वैज्ञानिक साक्ष्य पर आधारित आपराधिक मामलों पर प्रभावपूर्ण विचार कर सकेंगे। हम इस बात के पक्ष में नहीं हैं कि सभी मामलों में वैज्ञानिक साक्ष्य अकाट्य कसौटी है किंतु अपराध का पता लगाने और उसे साबित करने के लिए अन्य साक्ष्य के अतिरिक्त मात्र वैज्ञानिक साक्ष्य को प्रोन्नत करने की आवश्यकता पर जोर दे रहे हैं।

29. वैज्ञानिक साक्ष्य के अंतर्गत तथाकथित ठोस विज्ञान जैसे – भौतिकी, रसायन विज्ञान, गणित, जीव विज्ञान और मृदु विज्ञान जैसे – अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र आते हैं। वैज्ञानिक, तकनीकी और अन्य विशिष्ट ज्ञान से संबंधित व्यक्तियों से राय ली गई है जिनकी दक्षता, अनुभव, प्रशिक्षण या शिक्षा से न्यायालय को साक्ष्य समझने या विवाद्यक तथ्य को सुनिश्चित करने में सहायता मिलती है। कई बार न्यायालय को पारिस्थितिक, वैज्ञानिक और तकनीकी साक्ष्य के आधार पर कार्यवाही करनी पड़ती है जिसकी प्रायः निर्णायक भूमिका होती है। इंग्लैंड के लार्ड चांसलर सर फ्रांसिस बेकन ने अपनी पुस्तक मेगनम ओपस में वैज्ञानिक रीति के प्रथम सिद्धांत का उल्लेख किया है। बेकन का यह मत था कि वैज्ञानिक को प्रकृति का निष्पक्ष संप्रेक्षक होना चाहिए जो ऐसे हानिकारक पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जानकारी प्राप्त करे जिनसे वैज्ञानिक अभिलेख में त्रुटि आने

की संभावना हो । अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने **डाबर्ट बनाम मैरल डो फार्मेस्यूटिकल**¹ वाले मामले में बैकन के सिद्धांत से विसम्मति प्रकट करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया है :-

“विज्ञान, ब्रह्माण्ड के ज्ञान का कोई सारभौमकोश नहीं है बल्कि संसार के संबंध में ऐसे सैद्धांतिक स्पष्टीकरणों को बनाने और उन्हें परिष्कृत करने की प्रक्रिया है जिन्हें आगे और भी परखा और सुधारा जा सके ।”

30. डाबर्ट ने सर कार्ल पॉपर (आस्ट्रेलियाई दार्शनिक) पर अधिक बल दिया है जो बैकन के विचारों से विसम्मत होकर इस पर विश्वास करता था कि विज्ञान की सभी शाखाएं प्रतिकूलता, सिद्धांत या परिकल्पना से उद्भूत होती हैं और सिद्धांत रचित करना विज्ञान का सृजनात्मक अंग है जिसका विश्लेषण दार्शनिकता के अंतर्गत नहीं किया जा सकता । इसके पश्चात्, भौतिक विज्ञानी थॉमस कुन ने “उदाहरण” शब्द को प्रचलित किया जिसका यह अर्थ निकाला कि वैज्ञानिक कार्य के अंतर्गत ऐसी उपधारणाएं, रीतियां और भाषाएं आदि आती हैं जिन पर सहमति प्रकट की गई हो । आमतौर पर यह विश्वास किया जाता है कि न तो बैकन ने और न ही कुन ने विज्ञान की उचित परिभाषा दी है और न ही यह बताया है कि इसका क्या कार्य है, किंतु डाबर्ट वाले मामले में अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने चार अपरिभाषित संघटकों को स्पष्ट किया है जिन्हें वैज्ञानिक समुदाय में विज्ञान संबंधी ज्ञान, परीक्षणीयता या कूटकरणीयता, समकक्षीय पुनर्विलोकन, ज्ञात या संभाव्य त्रुटि दर और सामान्य स्वीकृति कहा जाना चाहिए । तत्पश्चात् कुछ अतिरिक्त संघटकों पर भी विचार किया गया है यदि रीति से तकनीक का संबंध विश्वसनीय सिद्ध हो जाए तब विशेषज्ञ साक्षी की योग्यताएं, जिनकी परख रीतिशास्त्र, रीति के न्यायिकेतर प्रयोग, परिकल्पना की मूल दृढ़ता, स्वीकृत प्रामाणिकता के साथ परिकल्पना की स्थिरता और परिकल्पना या सिद्धांत की उपधारणा के आधार पर की जाती है ।

डीएनए और कंकाल की शनाख्त

31. हमने पहले ही अभि. सा. 20 के साक्ष्य को निर्दिष्ट किया है जिसने शवपरीक्षण किया है । डीएनए फिंगरप्रिन्टिंग प्रयोगशाला के भारसाधक अधिकारी डा. जी. वी. राव (अभि. सा. 21) ने एलन जैक रूटले

¹ (1993) 509 यू. एस. 579.

के रक्त और मृतका के कंकाल से निकाली गई जंघास्थि तथा प्रगंडास्थि के नमूनों के आधार पर डीएनए पृथक्करण परीक्षण किया है। अभि. सा. 21 ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि नमूनों पर लगाई गई मुहर की असलियत और उसकी अविकलता के संबंध में उनका समाधान हो गया है। अभि. सा. 21 ने शॉर्ट टेन्डम स्पेस रिपीट्स (एस. टी. आर.) विश्लेषण का तरीका अपनाया है जिसे निर्णायक परीक्षण कहा जाता है जिसके अंतर्गत अपघटित जैविक नमूनों से भी परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। फिंगरप्रिन्टिंग परीक्षण एस. टी. आर. विश्लेषण द्वारा किया गया है और एलन जैक रूटले की एस. टी. आर. रिपोर्ट का परिशीलन डायना की जंघास्थि और प्रगंडास्थि के साथ करने पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि एलन जैक रूटले का स्रोत जंघास्थि और प्रगंडास्थि के स्रोत से जैविक रूप से मेल खाता है।

32. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले काउंसिल ने, जैसाकि पहले ही उपदर्शित किया गया है, डीएनए रिपोर्ट की विश्वसनीयता और दांडिक अन्वेषण में उसकी ग्राह्यता पर प्रश्न उठाया है। यह दलील दी गई है कि यह जाना जाता है कि डीएनए सीलन, गर्मी, अवरक्त विकिरण आदि से प्रभावित हो जाता है और इससे डीएनए का नमूना खराब हो सकता है। इसके अतिरिक्त यह दलील दी गई है कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने, पुलिस थाने या प्रयोगशाला में इसका भंडार करने से इसमें संगदूषण हो सकता है, अतः डीएनए परीक्षण की रिपोर्ट कभी भी परिशुद्ध नहीं हो सकती।

33. हम इस मामले में डीएनए रिपोर्ट की स्वीकार्यता पर विचार करेंगे जो डीएनए फिंगरप्रिन्टिंग प्रयोगशाला, सीडीएफडी, हैदराबाद के भारसाधक द्वारा तैयार की गई है। अभि. सा. 21 की योग्यताएं या अनुभव पर कोई भी संदेह नहीं है। डीएनए परीक्षण के लिए जो तरीका अपनाया गया है वह एस. टी. आर. विश्लेषण है। डायना के शव के अवशेष (कंकाल) का शवपरीक्षण बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के न्यायालयिक मेडिकल आई. एम. एस. के विभागाध्यक्ष डा. सी. पी. त्रिपाठी द्वारा किया गया है। डीएनए विश्लेषण के लिए एक जंघास्थि और एक प्रगंडास्थि एलन जैक रूटले के रक्त के नमूनों के साथ मिलान करने के लिए परिरक्षित की गई। ऐसे मामलों में जहां शव का केवल कंकाल ही रह जाता है, वहां अस्थियां और दांत डीएनए का अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं। जैसाकि प्रायः देखा गया है कि दांत डीएनए का एक बेहतरीन स्रोत होते हैं क्योंकि

ये बहिर्जनित डीएनए संगदूषण का प्राकृतिक रक्षाकवच होते हैं और इन पर पर्यावरण का प्रभाव भी नहीं पड़ता है। डायना के पिता के रक्त का नमूना डीएनए पृथक्करण परीक्षण के नियम और प्रक्रिया के अनुसरण में लिया गया है और इस नमूने को बरामद किए गए कंकाल से निकाली गई जंघास्थि और प्रगंडास्थि के साथ डीएनए फिंगरप्रिन्टिंग और नैदानिक केंद्र (सीडीएफडी), विज्ञान और तकनीक मंत्रालय, भारत सरकार, हैदराबाद को भेजा गया है। जैसाकि पहले ही उपदर्शित किया गया है, अभि. सा. 21 ने रूटले के रक्त के नमूने तथा कंकाल से ली गई जंघास्थि और प्रगंडास्थि के आधार पर डीएनए पृथक्करण परीक्षण किया है और उसने तारीख 28 अक्टूबर, 1998 की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। डीएनए फिंगरप्रिन्टिंग विश्लेषण एस. टी. आर. विधि द्वारा रूटले के डीएनए की रूपरेखा की तुलना के अनुसार किया गया है। जब घटनास्थल से प्राप्त डीएनए के नमूने की रूपरेखा पिता के डीएनए की रूपरेखा से मेल खाती है, तब यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों नमूने एक ही जैविकीय स्रोत के हैं।

34. डीएनए का विस्तृत रूप डीऑक्सीराइबो न्यूक्लियिक एसिड है जो प्रत्येक जीवन का जैविकीय स्रोत है। डीएनए दोहरे तन्तु की संरचना है जिसमें डीऑक्सीराइबोज शर्करा और फास्फेट के आधार-स्तंभ, दो प्रकार के न्यूक्लियिक एसिड अर्थात् एडीनिन और ग्वानिन के साथ जुड़े हुए अनुप्रस्थ रूप में शृंखलित होते हैं और साथ ही प्यूरिन, थायमीन, सायटोसीन पायरीमिडीन भी होते हैं। डीएनए की रूपरेखा का अत्यंत महत्वपूर्ण उपयोग शनाख्त के लिए भी किया जाता है जैसे किसी व्यक्ति और उसके सगे नातेदार अर्थात् माता-पिता, भाई आदि के बीच संबंध की शनाख्त करना। डीएनए की रूपरेखा द्वारा कंकाल के अवशेष के माध्यम से सफल रूप से व्यक्ति की शनाख्त की जा सकती है। सामान्यतः, डीएनए किसी भी जैविकीय सामग्री अर्थात् रक्त, वीर्य, लार, बाल, त्वचा या अस्थियों आदि से प्राप्त किया जा सकता है। यह प्रश्न विवादास्पद है कि क्या डीएनए परीक्षण वास्तविक रूप से अचूक होते हैं किंतु वास्तविकता यही है कि ऐसे परीक्षण किए जाते हैं और उनका अपराध संबंधी अन्वेषण में विस्तृत रूप से प्रयोग किया जा रहा है और प्रायः न्यायालय विशेषज्ञों के मतों को स्वीकार करते हैं विशेषकर ऐसी स्थिति में जहां मामला पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित हो। अर्धशताब्दी से अधिक समय से मानव डीएनए के नमूनों का प्रयोग दांडिक न्याय तंत्र में किया जा रहा है। निःसंदेह, ऐसे सुरक्षोपायों पर

चर्चा जारी है जो नमूनों के परीक्षण तथा न्यायालय में साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के लिए आवश्यक होते हैं। तथापि, डीएनए की रूपरेखा निरंतर रूप से वैध और विश्वसनीय अभिनिर्धारित की गई है किंतु निःसंदेह यह सब प्रयोगशाला में डीएनए की गुणवत्ता के नियंत्रण और उसकी जिम्मेदारी पर निर्भर है। निकट नातेदारों के जीन्स आपस में अधिक मेल खाते हैं और इस संभावना पर विचार करने के लिए बहुत से तरीके सुझाए गए हैं कि न्यायालयिक डीएनए का वास्तविक स्रोत निकट नातेदार ही है। जहां तक इस मामले का संबंध है, कंकाल से प्राप्त किए गए डीएनए का नमूना उस मृतका के कंकाल से लिया गया है जिसका मिलान उसके पिता के रक्त के नमूने के डीएनए के साथ किया गया है और सभी नमूने और परीक्षण ऐसे विशेषज्ञ द्वारा किए गए जिनकी वैज्ञानिक जानकारी और अनुभव पर इन कार्यवाहियों के दौरान कोई भी संदेह नहीं किया गया है। अतः हमें अभि. सा. 19, अभि. सा. 20 और अभि. सा. 21 के साक्ष्य को त्यक्त करने के लिए कोई कारण दिखाई नहीं देता है। अतः अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक यह साबित किया है कि अभियुक्त के मकान से प्राप्त किया गया कंकाल एलन जैक रूटले की पुत्री डायना का ही है और अन्य किसी व्यक्ति ने नहीं अपितु अभियुक्त ने ही डायना का गला घोटकर उसकी हत्या की है और उसके शव को अपने मकान में दबाया है।

35. अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपनी परीक्षा में अभियोजन के पक्ष कथन से पूर्णतया इनकार किया है किंतु अभियोजन पक्ष अभियुक्त के दोष को संदेह के परे साबित करने में सफल हुआ है। प्रायः दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त द्वारा दिए गए मिथ्या उत्तरों से पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला को पूरा करने के लिए अतिरिक्त कड़ियां मिल जाती हैं। **एंथॉनी डिसूजा बनाम कर्नाटक राज्य¹** वाला मामला देखिए। अतः हमारा यह सुविचारित मत है कि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों ने इस मामले में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का ठीक मूल्यांकन किया है और ठीक प्रकार दोषसिद्धि अभिलिखित की है, और अब हम दंड पर विचार करेंगे।

36. अब हमें इस बात पर विचार करना होगा कि क्या यह मामला ऐसे विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता जिसमें मृत्यु दंड अधिनिर्णीत किया जा सके, जैसाकि पहले ही अभिनिर्धारित किया गया है,

¹ (2003) 1 एस. सी. सी. 259.

शंकर किशनराव खाडे बनाम महाराष्ट्र राज्य¹ वाले मामले में इस न्यायालय ने तीन परीक्षण अधिकथित किए हैं अर्थात् “अपराध परीक्षण”, “अपराधी परीक्षण” और “विरल से विरलतम मामला परीक्षण” । जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है “अपराध परीक्षण” और “अपराधी परीक्षण” दोनों ही अभियुक्त के विरुद्ध साबित हो गए हैं । तथापि, अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि ऐसा कोई अभिलेख नहीं है कि अभियुक्त ने इससे पूर्व कोई अपराध किया हो और पारिस्थितिक साक्ष्य के अतिरिक्त उपरोक्त मामले में कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, इसलिए इस संबंध में कोई साक्ष्य नहीं कि यह अपराध किस प्रकार कारित किया गया है । परिणामतः यह दलील दी गई है कि न्यायालय के लिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है कि यह अपराध बर्बरतापूर्ण किया गया है, इसलिए वर्तमान मामला विरल से विरलतम मामले की कोर्ट में नहीं आएगा । हमें इस दलील में बल दिखाई पड़ता है । मामले के सभी पहलुओं पर विचार करते हुए, हमारा यह मत है कि इस साक्ष्य के अभाव में कि अपराध किस प्रकार कारित किया गया है, यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोर्ट में नहीं आएगा । परिणामतः हम मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित करते हैं और बिना किसी माफी के अभियुक्त द्वारा पहले से भोगे गए कारावास के अतिरिक्त 20 वर्ष का कठोर कारावास अधिनिर्णीत करते हैं जिससे हमारी राय में न्याय होगा।

37. अपील उपरोक्त रूप में निपटाई जाती है, मृत्यु दंड को ऊपर उल्लिखित अवधि के कारावास में परिवर्तित किया जाता है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अस./अनू.

¹ (2013) 5 एस. सी. सी. 546.

[2014] 3 उम. नि. प. 239

ऐलायस वुबेन और एक अन्य

बनाम

योगेश मेहरा और अन्य

2 जून, 2014

न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर

पेटेंट अधिनियम, 1970 (1970 का 39) – धारा 25 और 64(1) – पेटेंट अनुदत्त करने के लिए विरोधी कार्यवाहियां – पेटेंट अनुदत्त करने से पूर्व धारा 25(1) के अधीन “कोई व्यक्ति” पेटेंट अनुदत्त के विरुद्ध अभ्यावदेन दे सकता है, किंतु पेटेंट अनुदत्त करने के पश्चात् केवल “कोई हितबद्ध व्यक्ति” ही धारा 25(2) के अधीन नियंत्रक को विरोध की सूचना के माध्यम से या धारा 64(1) के अधीन अपील बोर्ड के समक्ष प्रतिसंहरण की अर्जी फाइल करके या वादी द्वारा उच्च न्यायालय में फाइल किए गए पेटेंट के अतिलंघन वाद में प्रत्यर्थी द्वारा “प्रतिदावे” के माध्यम से चुनौती दी जा सकती है ।

पेटेंट अधिनियम, 1970 (1970 का 39) – धारा 25, 64(1) और 2(1)(न) – “हितबद्ध व्यक्ति” अभिव्यक्ति का अर्थ – हितबद्ध व्यक्ति के अंतर्गत ऐसा व्यक्ति सम्मिलित है, जिसका किसी पेटेंट में प्रत्यक्ष, वर्तमान और वास्तविक हित हो और पेटेंट अनुदत्त किए जाने से उसके अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो ।

पेटेंट अधिनियम, 1970 (1970 का 39) – धारा 64(1) और 25 – पेटेंट का प्रतिसंहरण – “किसी हितबद्ध व्यक्ति” को उपलब्ध उपचार – यदि “किसी हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा धारा 25(2) के अधीन कोई पेटेंट अनुदत्त करने के विरुद्ध कार्यवाहियां फाइल की गई हैं, तो उसी व्यक्ति को धारा 64(1) के अधीन उसी पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए अर्जी फाइल करने तथा पेटेंटधारी द्वारा पेटेंट के अतिलंघन के लिए फाइल किए गए वाद में उसी व्यक्ति द्वारा प्रतिवादी की हैसियत से प्रतिदावे के माध्यम से पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करने का अधिकार नहीं होगा, क्योंकि धारा 64(1) में प्रयुक्त शब्द “या” द्वारा भिन्न-भिन्न उपचारों को अलग किया गया है तथा पेटेंट का अवधारण समय के हिसाब से पहले फाइल की गई कार्यवाही में किया जाएगा ।

पेटेंट अधिनियम, 1970 (1970 का 39) – धारा 64(1) और 25(2) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 10 और 151] – पेटेंट का प्रतिसंहरण – यदि “किसी हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा उसके विरुद्ध पेटेंट के अतिलंघन का वाद फाइल होने से पूर्व पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए अर्जी फाइल की गई है, तो वह विधि की दृष्टि से उस अतिलंघन वाद में प्रतिदावे के माध्यम से प्रतिसंहरण की ईप्सा करने का हकदार नहीं होगा ।

पेटेंट अधिनियम, 1970 (1970 का 39) – धारा 64(1) और 25(2) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 10 और 151] – पेटेंट का प्रतिसंहरण – यदि पेटेंटधारी द्वारा पेटेंट के अतिलंघन के लिए वाद फाइल किया गया है और प्रतिवादी द्वारा “किसी हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत से पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए प्रतिदावा फाइल किया गया है, तो वह इसके पश्चात् “किसी हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत से उसी पेटेंट के लिए उसी व्यक्ति के विरुद्ध प्रतिसंहरण अर्जी फाइल नहीं कर सकता है क्योंकि प्रतिदावे की प्रकृति एक स्वतंत्र वाद की होती है और जहां प्रतिवादी ने उसी वाद हेतुक के आधार पर वादी के विरुद्ध पहले ही कोई वाद संस्थित किया है, तो प्रतिदावे को जारी रखने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है ।

पेटेंट अधिनियम, 1970 (1970 का 39) – धारा 64(1) और 25(2) – पेटेंट को चुनौती – पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए अर्जी – वाद लाने का अधिकार – यदि किसी पेटेंट के अनुदत्त करने के पश्चात् धारा 25(2) के अधीन “किसी हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा नियंत्रक के समक्ष विरोध कार्यवाहियां आरंभ की गई हों और उसी व्यक्ति द्वारा धारा 64(1) के अधीन उसी पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए अपील बोर्ड के समक्ष प्रतिसंहरण अर्जी फाइल की गई हो तथा पेटेंटधारी द्वारा उच्च न्यायालय में पेटेंट के अतिलंघन के लिए फाइल किए गए वाद में प्रतिदावे के माध्यम से भी पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा की गई हो, तो उस स्थिति में उपचार उनके संस्थित किए जाने की तारीख पर निर्भर करेगा और पक्षकारों को एक मंच/उपचार चुनने की स्वतंत्रता देने और उनके द्वारा सहमति देने पर किसी अतिरिक्त मंच/न्यायालय के समक्ष प्रतितोष पाने का अधिकार नहीं होगा ।

अपीलार्थी सं. 1, डा. ऐलायस बुबेन एक वैज्ञानिक-इंजीनियर है । उसके नाम में पवन टरबाइन जनरेटर्स और पवन उर्जा परिवर्तक के क्षेत्र में

कई आविष्कार हैं । उसने विभिन्न बौद्धिक सम्पदा अधिकारों, जिनमें लगभग 2700 पेटेंट (60 से अधिक देशों में) सम्मिलित हैं, का स्वामी और धारक होने का दावा किया है । उपर्युक्त पेटेंटों में से अपीलार्थी के पास भारत में लगभग 100 पेटेंट हैं । वह पवन टरबाइनों के विनिर्माण के कार्य में भी लगा है । उसने पवन टरबाइनों के क्षेत्र में विश्व के तीन सबसे बड़े विनिर्माताओं की श्रेणी में होने का दावा किया है । उसके द्वारा उपर्युक्त विनिर्माण प्रक्रिया ईनरकॉन जीएमबीएच के नाम से चलाई जा रही है । वुबेन प्रोप्रटिज़ जीएमबीएच (अपीलार्थी सं. 2) ने एक समनुदेशन करार के माध्यम से डा. ऐलायस वुबेन से संबंधित भारत में पंजीकृत सभी डिज़ाइनों और पेटेंटों (जिनमें लंबित पंजीकरण भी हैं) में अधिकार, हक और हित अर्जित किया है । भारत में डा. ऐलायस वुबेन उपर्युक्त विनिर्माण प्रक्रिया योगेश मेहरा और अजय मेहरा (प्रत्यर्थी सं. 1 और 2) के साथ सहउद्यम भागीदारी में चला रहा है । भारतीय उद्यम ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड (प्रत्यर्थी सं. 3) के व्यापार नाम में चलाया जा रहा है । वास्तव में, योगेश मेहरा और अजय मेहरा ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड के निदेशक हैं । ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड वर्ष 1984 में ईनरकॉन जीएमबीएच और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के बीच एक सहउद्यम के रूप में गठित की गई थी । ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड मूलतः अपीलार्थी डा. ऐलायस वुबेन द्वारा अनुदत्त की गई अनुज्ञप्तियों को अग्रसर करने के लिए अपनी विनिर्माण प्रक्रिया चला रही थी । अपीलार्थी द्वारा तकनीकी व्यवहार ज्ञान का उपयोग करने के लिए अनुज्ञप्तियां लिखित करारों के माध्यम से ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड के पास निहित की गई थीं । पक्षकारों के बीच ये करार समय-समय पर निष्पादित किए गए थे और ऐसा अंतिम करार तारीख 29 सितम्बर, 2006 को निष्पादित किया गया था । अपीलार्थी के अनुसार, ये करार बौद्धिक सम्पदा अनुज्ञप्ति करार थे । तारीख 29 सितम्बर, 2006 के अंतिम करार से पूर्व के सभी करारों का अतिक्रान्त हो गया था । तारीख 29 सितम्बर, 2006 का बौद्धिक सम्पदा अनुज्ञप्ति करार ईनरकॉन जीएमबीएच द्वारा तारीख 8 दिसम्बर, 2008 को समाप्त कर दिया गया था । तारीख 29 सितम्बर, 2006 के बौद्धिक सम्पदा अनुज्ञप्ति करार में अंतर्विष्ट बाध्यताओं को पूरा न किया जाना इस करार को समाप्त करने का कारण था । ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड के साथ बौद्धिक सम्पदा अनुज्ञप्ति करारों के समाप्त होने के बावजूद प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 अपीलार्थी के पेटेंटों का उपयोग करते रहे और इस प्रकार सम्यक् प्राधिकार के बिना अपीलार्थी से संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का उपयोग किया गया । प्रत्यर्थी सं. 1

से 3 के इस कार्य से अपीलार्थी का अत्यधिक अहित हुआ क्योंकि प्रत्यर्थियों द्वारा उसके तकनीकी व्यवहार ज्ञान का विदोहन किया जा रहा था। ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड ने बौद्धिक सम्पदा अपील बोर्ड के समक्ष जनवरी, 2009 में पेटेंट अधिनियम, 1970 की धारा 64(1) के अधीन 19 प्रतिसंहरण अर्जियां फाइल कीं। ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड ने उपर्युक्त अर्जियों के माध्यम से अपीलार्थी के नाम में धारित पेटेंटों के प्रतिसंहरण की ईप्सा की। ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड की अपील बोर्ड में समावेदन करने की कार्रवाई से नाराज होकर डा. ऐलायस बुबेन ने उच्च न्यायालय के समक्ष कई सारे पेटेंट अतिलंघन के वाद फाइल किए। अपीलार्थी द्वारा ऊपरवर्णित अतिलंघन वाद फाइल करने के पश्चात्, प्रत्यर्थियों ने कुछेक अतिलंघन वादों के उत्तर में प्रतिदावे फाइल किए। अपीलार्थी द्वारा पेटेंट अतिलंघन वाद संस्थित करने के पश्चात्, ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड ने कथित रूप से अपील बोर्ड के समक्ष चार और प्रतिसंहरण अर्जियां भी फाइल कीं। मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा पेटेंट अतिलंघन वादों के उत्तर में फाइल किए गए प्रतिदावों के द्वारा भी हू-ब-हू इसी प्रकार की प्रार्थना की गई। उपरोक्त के बावजूद, प्रत्यर्थियों द्वारा ये सभी मुद्दे “प्रतिदावों” के माध्यम से उच्च न्यायालय के समक्ष पुनः उठाए गए। उच्च न्यायालय द्वारा पक्षकारों को एक मंच/एक उपचार चुनने की स्वतंत्रता दी गई और पक्षकारों द्वारा सहमत होने पर उच्च न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया। उच्च न्यायालय के आदेश को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश को अपास्त करके अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – पेटेंट अधिनियम की धारा 25 के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि पेटेंट अनुदत्त करने के लिए फाइल किए गए आवेदन के विरुद्ध “कोई व्यक्ति” न कि केवल “हितबद्ध व्यक्ति” ही (जैसा कि पेटेंट अधिनियम की धारा 64 में है) “विरोध के रूप में अभ्यावेदन” दे सकता है। यह अवसर यहां तक कि पेटेंट अनुदत्त करने से पूर्व उपलब्ध किया गया है। कोई पेटेंट अनुदत्त करने के विरुद्ध यह विरोध पेटेंट अनुदत्त करने के लिए दिए गए आवेदन को प्रकाशित करने के पश्चात् कार्यान्वित होता है। धारा 25(2) के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि केवल कोई “हितबद्ध व्यक्ति” ही न कि “कोई व्यक्ति” (जैसा कि पेटेंट अधिनियम की धारा 25(1) में है) किसी पेटेंट के अनुदत्त करने को ऐसे अनुदत्त के प्रकाशन से एक वर्ष के भीतर “नियंत्रक” को “विरोध की सूचना” जारी करके चुनौती

दे सकता है। उपरोक्त उपबंध से, न्यूनाधिक, साधारणतया, यह भी प्रकट होता है कि “नियंत्रक को” ऐसे “विरोध की सूचना” पेटेंट अधिनियम की धारा 64 की उपधारा (1)(क), (ख), (ग), (घ), (ङ.), (च), (ज), (झ) और (ण) में वर्णित आधारों पर दे सकता है। धारा 25(2) के अधीन चुनौती देने के लिए शेष आधार उन आधारों के समान ही हैं जो पेटेंट अधिनियम की धारा 25(1) में अंतर्विष्ट हैं। अनुदत्त किए गए किसी पेटेंट को “विरोध की सूचना” के माध्यम से चुनौती उन सभी आधारों पर दी जा सकती है जो धारा 25(1) के अधीन कोई पेटेंट अनुदत्त करने के लिए किए गए आवेदन को चुनौती देने के लिए अनुज्ञात हैं। तथापि, जब कोई पेटेंट अनुदत्त कर दिया गया है, तो उसके पश्चात् ऐसी चुनौती देने के लिए वाद लाने के अधिकार में सारभूत अंतर है। जबकि, किसी पेटेंट को अनुदत्त करने के लिए दिए गए आवेदन के विरुद्ध “कोई व्यक्ति” “विरोध के रूप में अभ्यावदेन” दे सकता है (पेटेंट अधिनियम की धारा 25(1) के अधीन), किंतु अनुदत्त किए गए पेटेंट को कोई “हितबद्ध व्यक्ति” ही “विरोध की सूचना” जारी करके चुनौती (पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन) दे सकता है। इसलिए, वाद लाने के अधिकार के विषय पर धारा 25(2) और धारा 64(1) एक समान हैं, क्योंकि अनुदत्त किए गए किसी पेटेंट को चुनौती देने के लिए वाद लाने का अधिकार इन दोनों उपबंधों में “किसी हितबद्ध व्यक्ति” को ही है। कोई पेटेंट अनुदत्त करने को लेकर चुनौती किसी “पेटेंट अतिलंघन वाद” में प्रतिवादी द्वारा भी दी जा सकती है। प्रतिवादी द्वारा ऐसा किसी “पेटेंट अतिलंघन वाद” में “प्रतिदावा” फाइल करके किया जा सकता है। जब पेटेंट अधिनियम की धारा 25(1) के अधीन अनुदत्त-पूर्व प्रक्रम पर कोई चुनौती दी जाती है, तो इसका अवधारण नियंत्रक द्वारा किया जाना चाहिए। “नियंत्रक” द्वारा पारित किए गए आदेश को अपील बोर्ड के समक्ष अपील फाइल करके चुनौती दी जा सकती है। जब धारा 25(2) के अधीन कोई चुनौती दी जाती है, तो यह चुनौती (पेटेंट) अनुदत्त करने की तारीख के प्रकाशन से एक वर्ष के भीतर दी जानी चाहिए। इस चुनौती की परीक्षा, प्रथमतः, धारा 25(3) के अधीन अनुध्यात “विरोध बोर्ड” द्वारा की जानी चाहिए। “विरोध बोर्ड” द्वारा की गई सिफारिशें फिर विचार के लिए “नियंत्रक” के पास रखी जानी चाहिए। पेटेंटधारी को सूचना जारी करने के पश्चात्, और पेटेंटधारी को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् “नियंत्रक” के लिए यह अपेक्षित है कि वह धारा 25(2) के अधीन फाइल की गई विरोध की सूचना पर अंतिम आदेश पारित करे। “नियंत्रक” द्वारा पारित किए गए ऐसे आदेश को “विरोध बोर्ड” के

समक्ष अपील फाइल करके चुनौती दी जा सकती है। धारा 64(1) के अधीन किसी हितबद्ध व्यक्ति द्वारा दी गई चुनौती का न्यायनिर्णयन, प्रथमतः, “अपील बोर्ड” द्वारा किया जाना चाहिए। यदि किसी अतिलंघन वाद के उत्तर में प्रतिवादी संबंधित पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए कोई प्रतिदावा फाइल करता है, तो न्यायनिर्णयन की उक्त प्रक्रिया अधिकारिता-प्राप्त उच्च न्यायालय के समक्ष चलाई जाएगी (पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) और धारा 104)। (पैरा 14, 15, 16, और 17)

यदि कोई कार्यवाहियां पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन किसी “हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा आरंभ की गई हैं, तो इससे उसी व्यक्ति का पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन “प्रतिसंहरण अर्जी” फाइल करने का अधिकार समाप्त हो जाएगा। और इसके साथ-साथ अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन “प्रतिदावा” (किसी अतिलंघन वाद के उत्तर में पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए) फाइल करने के लिए अनुदत्त अधिकार का अवलंब लेना भी समाप्त हो जाएगा। न्यायालय के मत में, यह पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के प्रारंभ में आने वाले “इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए” शब्दों का स्वाभाविक प्रभाव होगा। और यदि, इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए शब्दों का उपरोक्त अर्थ होना नहीं लगाया जाता है, तो वे अनावश्यक और फालतू हो जाएंगे। तथापि, ऊपर निर्दिष्ट स्थिति पर इतनी गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय के सुविचारित मत में, उपरोक्त स्थिति का कदापि उद्भूत होना असंभाव्य है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पेटेंट अधिनियम की धारा 25 में, अन्य बातों के साथ-साथ, किसी पेटेंट को अनुदत्त करने की प्रक्रिया का उपबंध किया गया है। यह प्रक्रिया आवेदन फाइल करने के साथ आरंभ होती है। द्वितीय कार्रवाई के अंतर्गत ईप्सित पेटेंट के ब्यौरों का प्रकाशन किया जाना अनुध्यात है। अगली कार्रवाई के अंतर्गत विरोध के रूप में (पेटेंट अनुदत्त करने) अभ्यावेदन फाइल किया जाना अनुध्यात है। यह कार्रवाई नियंत्रक द्वारा पेटेंट अनुदत्त करने या इनकार करने के अवधारण के साथ आगे बढ़ती है। नियंत्रक के विनिश्चय के पश्चात् अनुदत्त पेटेंट का प्रकाशन किया जाता है। इस प्रक्रिया से पेटेंट के अनुदत्त का विनिश्चय अंतिम हो जाता है। फिर भी, इससे पेटेंटधारी के अधिकार को अंतिमता प्राप्त नहीं हो जाती है। अनुदत्त के प्रकाशित होने के पश्चात्, कोई “हितबद्ध व्यक्ति” पेटेंट के अनुदत्त के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष के भीतर विरोध की सूचना

जारी कर सकता है। यदि जब कोई पेटेंट अनुदत्त करने को लेकर दी गई चुनौतियों का निपटारा पेटेंटधारी के पक्ष में हो जाता है, केवल तब और तब यह कहा जा सकता है कि पेटेंट धारित करने के अधिकार को स्थायित्व हो प्राप्त हो गया है। इसी प्रकार, यदि किसी पेटेंट के अनुदत्त के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष के भीतर कोई विराध की सूचना फाइल नहीं की जाती है, तो यह समझा जाएगा कि पेटेंट को स्थायित्व प्राप्त हो गया है। इस प्रकार, पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन परिकल्पित प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् ही पेटेंट को अंतिम अनुमोदन प्राप्त होता है। अतिलंघन के वाद में कोई प्रतिवादी पक्षकार, जो अतिलंघन के आरोप का खंडन करने की ईप्सा करता है, उसे प्रतिदावा प्रस्तुत करने की अनुज्ञा है ताकि वह वाद के वादी को समनुदेशित पेटेंट की विधिमान्यता को (पेटेंट अधिनियम की धारा 64 के अधीन) चुनौती दे सके। ऐसा इसलिए है क्योंकि कोई प्रतिदावा केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा फाइल किया जा सकता है जिसके विरुद्ध अतिलंघन का वाद (पेटेंटधारी द्वारा) फाइल किया गया है। (पैरा 18 और 19)

पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन किसी पेटेंट के अनुदत्त को चुनौती देने के लिए “हितबद्ध व्यक्ति” को एक सुधारक क्रियाविधि भी उपलब्ध है। यह क्रियाविधि पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन “हितबद्ध व्यक्ति” के लिए उपबंधित इसी प्रकार के उपचार के अतिरिक्त है। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में, “कोई हितबद्ध व्यक्ति” शब्दों के सही तात्पर्य का मूल्यांकन करना आवश्यक है। हितबद्ध व्यक्ति पद को पेटेंट अधिनियम की धारा 2(1)(न) में परिभाषित किया गया है। जब तक कि संदर्भ के अधीन अन्यथा अपेक्षित न हो, पूर्वउल्लिखित धारा 2(1)(न) के निबंधनों के अनुसार कोई हितबद्ध व्यक्ति वह व्यक्ति होगा जो उसी क्षेत्र में अनुसंधान के कार्य में, या संवर्द्धन में लगा है जिससे आविष्कार संबंधित है। सरल शब्दों में, किसी हितबद्ध व्यक्ति के अंतर्गत वह व्यक्ति भी आता है जिसका किसी पेटेंट के साथ प्रत्यक्ष, वर्तमान और वास्तविक हित है और पेटेंट अनुदत्त करने से उसके उपरोक्त अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। हितबद्ध व्यक्ति के अंतर्गत वह व्यक्ति भी आएगा जो या तो स्वतः आविष्कार का (जो पेटेंटकृत किया गया है) स्वतंत्र रूप से उपयोग करना चाहता है, या प्रक्रिया (जिसे पेटेंटकृत किया गया है) का विदोहन अपने व्यक्तिगत उत्पादन के क्रियाकलाप में करना चाहता है। इसलिए “हितबद्ध व्यक्ति” पद स्थायी नहीं है। वही व्यक्ति उस समय एक हितबद्ध व्यक्ति न हो, जब संबंधित पेटेंट के अनुदत्त को प्रकाशित किया गया था, और फिर

भी किसी पश्चात्वर्ती समय पर अपने क्रियाकलापों के कारण वह ऐसा स्वरूप या स्थिति धारण कर सकता है। इसीलिए, किसी हितबद्ध व्यक्ति में किसी पेटेंट के अनुदत्त को, इसके प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए, चुनौती देने की स्वतंत्रता पेटेंट अधिनियम की धारा 64 द्वारा अतिरिक्त रूप से निहित की गई है। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसिल की यह दलील है कि प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थियों ने “कोई हितबद्ध व्यक्ति” की स्थिति और दृष्टिकोण अपनाकर उसी पेटेंट को चुनौती देने के लिए “प्रतिसंहरण याचिका (याचिकाएं)” फाइल की है (की हैं), जिसे उसी समय “प्रतिदावे” फाइल करके भी चुनौती दी गई है। उपरोक्त प्रतिदावे अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए अतिलंघन वाद (वादों) के उत्तर में फाइल किए गए हैं। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसिल की यह दलील है कि प्रत्यर्थियों को उपरोक्त उपचारों में से केवल एक उपचार को चुनना चाहिए। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसिल के अनुसार, प्रत्यर्थियों द्वारा अपनाई गई कार्रवाई से प्रतिसंहरण अर्जी में कोई निष्कर्ष और प्रतिदावे में कोई अलग निष्कर्ष निकाला जा सकता है। न्यायालय को उपरोक्त इस दलील को स्वीकार करने में थोड़ी-सी भी हिचकिचाहट नहीं है कि यद्यपि प्रत्यर्थियों को पेटेंट अधिनियम की धारा 64 में एक से अधिक उपचार उपलब्ध हैं, तो भी इसमें उपबंधित भिन्न-भिन्न उपचारों को एक-दूसरे से अलग करते हुए इसमें प्रयुक्त “या” शब्द उन्हें एक ही प्रयोजन के लिए साथ-साथ दोनों उपचारों का उपभोग करने के अधिकार से वंचित कर देगा। सिद्धांत के तौर पर भी, यही सही विधिक स्थिति है। (पैरा 20, 21 और 22)

अवधारण के लिए यह प्रश्न उद्भूत होता है कि प्रत्यर्थियों को उपरोक्त दोनों उपचारों को चुनने के पश्चात् दोनों में से कौन-सा उपचार जारी रखने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए। उपरोक्त प्रश्न के उत्तर का अवधारण, यदि संभव होता है तो, स्वतः पेटेंट अधिनियम के उपबंधों से करना होगा। इस संबंध में न्यायालय सर्वप्रथम यह अभिलिखित कर सकता है कि विरोधी पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसिलों ने न्यायालय का ध्यान पेटेंट अधिनियम के ऐसे किसी उपबंध की ओर आकर्षित नहीं किया है। जबकि, एक ओर, निस्संदेह यह दलील दी गई है कि विकल्प उच्चतर न्यायालय के पक्ष में जाना चाहिए। न्यायालय सरसरी तौर पर यह अभिलिखित कर सकता है कि “प्रतिदावे” का अवधारण करने का अधिकार उच्चतर न्यायालय अर्थात् अधिकारिता-प्राप्त उच्च न्यायालय को होगा [पेटेंट

अधिनियम की धारा 64(1) और 104] । दूसरी ओर, उपरोक्त दलील का यह इंगित करते हुए विरोध किए जाने का प्रयास किया गया है कि पेटेंट अधिनियम के अधीन पारित आदेश (आदेशों) को चुनौती देने के लिए विधान-मंडल द्वारा दिए गए अवसरों को कम नहीं किया जा सकता है । इस संबंध में यह दलील दी गई कि जहां कोई प्रतिसंहरण की अर्जी फाइल की जाती है वहां विधान-मंडल द्वारा दिए गए उपचार उन उपचारों से कहीं अधिक हैं जहां “प्रतिदावे” के माध्यम से प्रतिसंहरण की ईप्सा की जाती है । इस प्रकार, पहली दलील से व्युत्पन्न विधिसम्मत निष्कर्ष का समान रूप से दूसरी दलील द्वारा विधिसम्मत रूप से खंडन होता है । चूंकि पेटेंट अधिनियम के उपबंधों से कोई विधिसम्मत हल नहीं निकाला जा सकता है, इसलिए विवाद्यक को सुलझाने के लिए विधि के ज्ञात सिद्धांतों का अवलंब लेना आवश्यक है । अतः न्यायालय विधि के स्वीकृत सिद्धांतों के आधार पर विवाद्यक को सुलझाने का प्रयत्न करेगा । जहां कोई विवाद्यक उन्हीं पक्षकारों के बीच ऐसे न्यायालय में न्यायनिर्णयन करने के लिए पहले ही लंबित है जिसे उस विवाद्यक पर न्यायनिर्णयन करने की अधिकारिता है, वहां उन्हीं पक्षकारों के बीच उसी विवाद्यक पर किसी पश्चात्पूर्वी वाद में कार्यवाही करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । प्रस्तुत संविवाद में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए इसी प्रकार का प्रश्न उद्भूत होता है । यदि प्रत्यर्थियों ने अपनी “कोई हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत से “अतिलंघन वाद” संस्थित करने से पूर्व “प्रतिसंहरण अर्जी” फाइल की थी तो उन्हें उसी वादहेतुक पर “प्रतिदावा” फाइल करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । उपरोक्त स्थिति में स्वाभाविक निष्कर्ष यह होगा कि पेटेंट अनुदत्त करने की विधिमान्यता “प्रतिसंहरण अर्जी” में अवधारित की जाएगी । इसलिए उपरोक्त स्थिति में, “प्रतिसंहरण अर्जी” को जारी रखे जाने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, किंतु “प्रतिदावे” को जारी रखने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । इसलिए उपरोक्त दशा में, यह स्पष्ट है कि स्थिति का हल उसी रीति में किया जाएगा, जैसा कि इसका विरोधी पक्षकारों द्वारा भिन्न-भिन्न अधिकारिता वाले न्यायालयों के समक्ष फाइल किए गए प्रति-वादों में किया जाता । न्यायालय के सुविचारित मत में, उपरोक्त निष्कर्ष पेटेंट अधिनियम के सुसंगत उपबंधों के एक सामंजस्यपूर्ण निर्वचन के लिए अत्यावश्यक है । उन मामलों में, जहां इसमें के अपीलार्थियों द्वारा (“अतिलंघन वाद” में वादी के रूप में) “अतिलंघन वाद” प्रत्यर्थियों द्वारा (“अतिलंघन वाद” में प्रतिवादियों के रूप में) “प्रतिसंहरण अर्जी (अर्जियां)” फाइल करने से पूर्व

फाइल किया गया था (किए गए थे), वहां प्रत्यर्थियों को पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) से प्रकट होने वाली शक्ति और प्राधिकार के अधीन पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करने के लिए “प्रतिदावा (प्रतिदावे)” फाइल करने का अधिकार था। एक बार “अतिलंघन वाद (वादों)” के उत्तर में प्रतिदावा फाइल करने के पश्चात्, उसी वादहेतु के आधार पर, जैसा कि ऊपर अभिलिखित किया गया है, इसमें के प्रत्यर्थियों (“अतिलंघन वाद” में प्रतिवादियों) को यह स्वतंत्रता नहीं होगी कि वे “प्रतिसंहरण अर्जी (अर्जियां)” फाइल करें, क्योंकि वे प्राड.न्याय के नियम द्वारा उसी तरह वर्जित होंगे। इसलिए, “अतिलंघन वाद” संस्थित करने की तुलना में समय के हिसाब से बाद में फाइल की गई “प्रतिसंहरण अर्जियां” विधि की दृष्टि से असंधार्य होंगी। ऐसे मामलों में, प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए प्रतिदावे का निपटारा करते समय पेटेंट के प्रतिसंहरण की प्रार्थना का न्यायनिर्णयन किया जाएगा। इसलिए उपरोक्त स्थिति में, जबकि “प्रतिदावे” को जारी रखे जाने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, किंतु “प्रतिसंहरण अर्जी” को जारी रखे जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों की परीक्षा करने के पश्चात् न्यायालय का यह मत है कि इनसे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं – प्रथम, “किसी हितबद्ध व्यक्ति” ने पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन कार्यवाहियां फाइल की हैं, तो इससे उसी व्यक्ति को पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन उसी प्रकार के सभी अधिकार समाप्त हो जाएंगे। इसमें “किसी हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत में कोई “प्रतिसंहरण अर्जी” फाइल करने का अधिकार [पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन] और साथ ही किसी “प्रतिदावे” के माध्यम से [पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन भी] एक प्रतिवादी की हैसियत में किसी पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करने का अधिकार भी सम्मिलित है। द्वितीय, यदि “किसी हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन उसमें निहित स्वतंत्रता का प्रयोग करते हुए कोई “प्रतिसंहरण अर्जी” उसके विरुद्ध “अतिलंघन वाद” संस्थित होने से पूर्व फाइल की जाती है, तो वह “प्रतिदावे” के माध्यम से पेटेंट के प्रतिसंहरण (जिसके आधार पर उसके विरुद्ध अतिलंघन वाद फाइल किया गया है) की ईप्सा करने के लिए विधि की दृष्टि से वंचित हो जाएगा। तृतीय, जहां किसी “अतिलंघन वाद” के उत्तर में प्रतिवादी ने पहले ही पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा (जिसके आधार पर अतिलंघन वाद फाइल किया गया है) “प्रतिदावे” के माध्यम से की है, वहां प्रतिवादी इसके पश्चात्

“किसी हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत में “प्रतिसंहरण अर्जी” के द्वारा संबंधित पेटेंट को चुनौती नहीं दे सकता है। (पैरा 23, 24, 25 और 26)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की सिविल अपील सं. 6718.

2011 के एफएओ (ओएस) सं. 7 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 20 जनवरी, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलार्थियों की ओर से

सर्वश्री टी. आर. अंधियार्जुन, सुधीर चन्द्र, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ प्रवीण आनंद, हरी शंकर के., स्वर्ण चोपड़ा, (सुश्री) टी. सौक्ष्मया, आदित्य वर्मा, अंशुमान उपाध्याय, (सुश्री) एस. लक्ष्मी, विभव मित्तल और सौमिक घोसाल

प्रत्यर्थियों की ओर से

सर्वश्री सोली जे. सोराबजी, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ सुदर्शन सिंह शेखावत, अशीम सूद, एम. पी. देवनाथ और मिश्रा सौरभ

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर ने दिया।

न्या. खेहर – हमें सूचित किया गया है कि डा. ऐलायस वुबेन (अपीलार्थी सं. 1, जिसे इसमें इसके पश्चात् ‘अपीलार्थी’ कहा गया है) एक वैज्ञानिक-इंजीनियर है। अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि उसके नाम में पवन टरबाइन जनरेटर्स और पवन उर्जा परिवर्तक के क्षेत्र में कई आविष्कार हैं। अपीलार्थी ने विभिन्न बौद्धिक सम्पदा अधिकारों, जिनमें लगभग 2700 पेटेंट (60 से अधिक देशों में) सम्मिलित हैं, का स्वामी और धारक होने का दावा किया है। हमें सूचित किया गया है कि उपर्युक्त पेटेंटों में से अपीलार्थी के पास भारत में लगभग 100 पेटेंट हैं। अपीलार्थी पवन टरबाइनों के विनिर्माण के कार्य में भी लगा है। उसने पवन टरबाइनों के क्षेत्र में विश्व के तीन सबसे बड़े विनिर्माताओं की श्रेणी में होने का दावा किया है। अपीलार्थी द्वारा उपर्युक्त विनिर्माण प्रक्रिया ईनरकॉन जीएमबीएच के नाम से चलाई जा रही है। अपीलार्थी सं. 2, वुबेन प्रोप्रटिज़ जीएमबीएच ने तारीख 5 जनवरी, 2012 के समनुदेशन करार के माध्यम से डा. ऐलायस वुबेन से संबंधित भारत में पंजीकृत सभी डिज़ाइनों और पेटेंटों (जिनमें लंबित पंजीकरण भी हैं) में अधिकार, हक और हित अर्जित किया है।

अपीलार्थी की विनिर्माण प्रक्रिया, अभिकथित रूप से, लगभग 27 देशों में चल रही है। ईनरकॉन समूह ने दावा किया है कि उसके विश्वभर में 8000 से अधिक लोग नियोजित हैं। जहां तक भारत का संबंध है, डा. ऐलायस वुबेन उपर्युक्त विनिर्माण प्रक्रिया योगेश मेहरा और अजय मेहरा (प्रत्यर्थी सं. 1 और 2) के साथ सहउद्यम भागीदारी में चला रहा है। भारतीय उद्यम ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड (जो इसमें प्रत्यर्थी सं. 3 है) के व्यापार नाम में चलाया जा रहा है। हमें सूचित किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 3 का नाम बदलकर वाइंड वर्ल्ड (इंडिया) लिमिटेड कर दिया गया है। तथापि, हम प्रस्तुत संविवाद पर विचार करते समय प्रत्यर्थी सं. 3 को ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड के रूप में निर्दिष्ट करेंगे। वास्तव में, योगेश मेहरा और अजय मेहरा (पूर्वोल्लिखित) ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड के निदेशक हैं।

2. ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड वर्ष 1984 में ईनरकॉन जीएमबीएच और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के बीच एक सहउद्यम के रूप में गठित की गई थी। हमें बताया गया है कि ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड मूलतः अपीलार्थी डा. ऐलायस वुबेन द्वारा अनुदत्त की गई अनुज्ञप्तियों को अग्रसर करने के लिए अपनी विनिर्माण प्रक्रिया चला रही थी। अपीलार्थी के अनुसार, तकनीकी व्यवहार ज्ञान का उपयोग करने के लिए अनुज्ञप्तियां अपीलार्थी द्वारा लिखित करारों के माध्यम से ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड के पास निहित की गई थीं। पक्षकारों के बीच ये करार समय-समय पर निष्पादित किए गए थे और ऐसा अंतिम करार तारीख 29 सितम्बर, 2006 को निष्पादित किया गया था। अपीलार्थी के अनुसार, ये करार बौद्धिक सम्पदा अनुज्ञप्ति करार थे। हमें सूचित किया गया है कि तारीख 29 सितम्बर, 2006 के अंतिम करार से पूर्व के सभी करारों (1994 के तकनीकी व्यवहार ज्ञान करार और 2000 के तकनीकी व्यवहार ज्ञान करार सहित) का अतिक्रान्त हो गया था। अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि तारीख 29 सितम्बर, 2006 का बौद्धिक सम्पदा अनुज्ञप्ति करार ईनरकॉन जीएमबीएच द्वारा तारीख 8 दिसम्बर, 2008 को समाप्त कर दिया गया था। यह दलील दी गई है कि तारीख 29 सितम्बर, 2006 के बौद्धिक सम्पदा अनुज्ञप्ति करार में अंतर्विष्ट बाध्यताओं को पूरा न किया जाना इस करार को समाप्त करने का कारण था।

3. अपीलार्थी डा. ऐलायस वुबेन के अनुसार, ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड के साथ बौद्धिक सम्पदा अनुज्ञप्ति करारों के समाप्त होने के

बावजूद इस मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 अपीलार्थी के पेटेंटों का उपयोग करते रहे और इस प्रकार सम्यक् प्राधिकार के बिना अपीलार्थी से संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का उपयोग किया गया। प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 के इस कार्य से अपीलार्थी का अत्यधिक अहित हुआ है क्योंकि प्रत्यर्थियों द्वारा उसके तकनीकी व्यवहार ज्ञान का विदोहन किया जा रहा था। दिल्ली उच्च न्यायालय (जिसे इसमें इसके पश्चात् “उच्च न्यायालय” कहा गया है) द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में उल्लिखित तथ्यात्मक स्थिति के अनुसार, ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड ने बौद्धिक सम्पदा अपील बोर्ड (जिसे इसमें इसके पश्चात् “अपील बोर्ड” कहा गया है) के समक्ष जनवरी, 2009 में पेटेंट अधिनियम, 1970 (जिसको इसमें इसके पश्चात् “पेटेंट अधिनियम” कहा गया है) की धारा 64(1) के अधीन 19 “प्रतिसंहरण अर्जियां” फाइल की थीं। ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड ने उपर्युक्त अर्जियों के माध्यम से अपीलार्थी के नाम में धारित पेटेंटों के प्रतिसंहरण की ईप्सा की थी।

4. ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड की “अपील बोर्ड” में समावेदन करने की कार्रवाई से नाराज होकर डा. ऐलायस वुबेन ने कई सारे “पेटेंट अतिलंघन वाद” फाइल किए। उसने इन वादों में, अन्य के साथ-साथ, योगेश मेहरा, अजय मेहरा और ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड को अभियोजित किया। हमें बताया गया है कि ऐसा प्रथम वाद (2009 का वाद सं. 1349) तारीख 27 जुलाई, 2009 को फाइल किया गया था। तीन अन्य इसी प्रकार के वाद (2009 का वाद सं. 1963, 2009 का वाद सं. 1967 और 2009 का वाद सं. 1968) तारीख 20 सितम्बर, 2009 को फाइल किए गए थे। पांचवां वाद (2010 का वाद सं. 176) तारीख 28 जनवरी, 2010 को फाइल किया गया था। छठा वाद (2010 का वाद सं. 1305) तारीख 2 जुलाई, 2010 को फाइल किया गया था। अंतिम वाद (2010 का वाद सं. 1333) तारीख 5 जुलाई, 2010 को फाइल किया गया था। कुल मिलाकर 10 “पेटेंट अतिलंघन वाद” ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड द्वारा “अपील बोर्ड” के समक्ष पहले ही 19 “प्रतिसंहरण अर्जियां” संस्थित करने के पश्चात् फाइल किए गए थे।

5. यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थी, डा. ऐलायस वुबेन द्वारा “पेटेंट अतिलंघन वाद” उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए थे। उपरोक्त वादों में, मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों को यह स्वतंत्रता थी कि वे पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए “प्रतिदावे” के रूप में एक प्रार्थना-पत्र दें, जो कि “पेटेंट अतिलंघन वाद” का आधार बना है। अपीलार्थी द्वारा ऊपरवर्णित “अतिलंघन

वाद” फाइल करने के पश्चात्, प्रत्यर्थियों ने कुछेक “अतिलंघन वादों” के उत्तर में “प्रतिदावे” फाइल किए। उदाहरण के लिए, प्रथम वाद (2009 के वाद सं. 1349) के उत्तर में “प्रतिदावा” तारीख 9 सितम्बर, 2009 को फाइल किया गया था; 2009 के वाद सं. 1963 में “प्रतिदावा” तारीख 30 जनवरी, 2010 को फाइल किया गया था ; 2010 के वाद सं. 176 में “प्रतिदावा” तारीख 30 अप्रैल, 2010 को फाइल किया गया था। इसी प्रकार, अन्य वादों में भी “प्रतिदावे” फाइल किए गए थे।

6. अपीलार्थी द्वारा “पेटेंट अतिलंघन वाद” (ऊपर निर्दिष्ट) संस्थित करने के पश्चात्, ईनरकॉन इंडिया लिमिटेड ने कथित रूप से अपील बोर्ड के समक्ष चार और प्रतिसंहरण अर्जियां भी फाइल कीं। प्रत्यर्थियों द्वारा ये प्रतिसंहरण अर्जियां वर्ष 2010 और 2011 में फाइल की गई थीं। पूर्वगामी दो पैराओं तथा इस पैरा में “प्रतिसंहरण अर्जियां” (प्रत्यर्थियों द्वारा), “अतिलंघन वाद” (अपीलार्थी द्वारा) और “प्रतिदावे” (प्रत्यर्थियों द्वारा) फाइल किए जाने के समय का उल्लेख किया गया है।

7. ऊपर अभिलिखित तथ्यात्मक स्थिति के वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी के नाम में धारित पेटेंटों के प्रतिसंहरण की प्रार्थना करते हुए “अपील बोर्ड” के समक्ष 23 “प्रतिसंहरण अर्जियां” फाइल कीं। मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों द्वारा “पेटेंट अतिलंघन वादों” के उत्तर में फाइल किए गए “प्रतिदावों” के द्वारा भी हू-ब-हू इसी प्रकार की प्रार्थना की गई है। यह बात विवादग्रस्त नहीं है कि प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल की गई “प्रतिसंहरण अर्जियों” में से कई अर्जियों का “अपील बोर्ड” द्वारा निपटारा किया गया है, जबकि कुछ अभी विचार के लिए लंबित हैं। उपरोक्त के बावजूद, प्रत्यर्थियों द्वारा ये सभी मुद्दे “प्रतिदावों” के माध्यम से उच्च न्यायालय के समक्ष पुनः उठाए जा रहे हैं।

8. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसिलों द्वारा दी गई मुख्य दलीलें पेटेंट अधिनियम की धारा 64 से प्रकट होती हैं। उक्त दलीलों को पूरी तरह से समझने के लिए धारा 64 को इसमें नीचे उद्धृत करना आवश्यक है :-

“धारा 64. पेटेंटों का प्रतिसंहरण – (1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए, पेटेंट, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् अनुदत्त किया गया हो, किसी हितबद्ध व्यक्ति की या केन्द्रीय सरकार की अर्जी पर अपील बोर्ड द्वारा

या पेटेंट के अतिलंघन के किसी वाद में के किसी प्रतिदावे पर उच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आधारों में से किसी आधार पर प्रतिसंहत किया जा सकेगा, अर्थात् :-

(क) उस आविष्कार का, जहां तक उसका दावा पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में किया गया है, दावा भारत में अनुदत्त किसी अन्य पेटेंट के पूर्ण विनिर्देश में अंतर्विष्ट पूर्वतर पूर्वकता तारीख के विधिमान्य दावे में किया गया था ;

(ख) वह पेटेंट ऐसे व्यक्ति के आवेदन पर अनुदत्त किया गया था, जो उसके लिए आवेदन करने के लिए इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन हकदार नहीं था ;

(ग) वह पेटेंट, अर्जीदार के या उस व्यक्ति के, जिससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन या जिसके माध्यम से वह दावा करता है, अधिकारों का अतिलंघन करके सदोष अभिप्राप्त किया गया था ;

(घ) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे का विषय इस अधिनियम के अर्थ में आविष्कार नहीं है ;

(ङ) दावे की पूर्वकता तारीख से पूर्व भारत में जो कुछ सार्वजनिक रूप से ज्ञात था या सार्वजनिक रूप से उपयोग किया गया था या जो कुछ धारा 13 में निर्दिष्ट दस्तावेजों में से किसी में भारत में या अन्यत्र प्रकाशित किया गया था, उसको ध्यान में रखते हुए, वह आविष्कार, जहां तक कि उसका दावा पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में किया गया है, नया नहीं है ;

(च) दावे की पूर्वकता तारीख से पूर्व भारत में जो कुछ सार्वजनिक रूप से ज्ञात था या सार्वजनिक रूप से उपयोग किया गया था या जो कुछ धारा 13 में निर्दिष्ट दस्तावेजों में से किसी में भारत में या अन्यत्र प्रकाशित किया गया था, उसको ध्यान में रखते हुए, वह आविष्कार, जहां तक कि उसका दावा पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में किया गया है, स्पष्ट है और उसमें कोई आविष्कारिक क्रिया अन्तर्ग्रस्त नहीं है ;

(छ) वह आविष्कार, जहां तक कि उसका दावा पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में किया गया है, उपयोगी नहीं है ;

(ज) पूर्ण विनिर्देश में आविष्कार का तथा उसके क्रियान्वयन के ढंग का पर्याप्त और ठीक वर्णन नहीं किया गया है, अर्थात् पूर्ण विनिर्देश में यथा अंतर्विष्ट आविष्कार के ढंग का वर्णन या अनुदेश स्वतः इस बात के लिए पर्याप्त नहीं है कि भारत में कोई व्यक्ति, जो उस कला में जिससे वह आविष्कार संबद्ध है, औसत कुशलता या उसका औसत ज्ञान रखता है, उस आविष्कार का क्रियान्वयन कर सके या उसमें उसके क्रियान्वयन का उत्तम ढंग नहीं दिया गया है जो पेटेंट के आवेदक को ज्ञात था और जिसके लिए वह संरक्षण का दावा करने का हकदार था ;

(झ) पूर्ण विनिर्देश के दावे का क्षेत्र पर्याप्त और स्पष्ट रूप से परिनिश्चित नहीं किया गया है या पूर्ण विनिर्देश का कोई दावा विनिर्देश में प्रकट की गई बात पर पर्याप्त रूप से आधारित नहीं है ;

(ञ) वह पेटेंट मिथ्या सुझाव या व्यपदेशन के आधार पर अभिप्राप्त किया था ;

(ट) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे का विषय इस अधिनियम के अधीन पेटेंट होने योग्य नहीं है ;

(ठ) वह आविष्कार, जहां तक कि उसका दावा पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में किया गया है, उस दावे की पूर्विकता तारीख से पूर्व उपधारा (3) में यथावर्णित रीति से भिन्न रीति से भारत में गुप्त रूप से उपयोग में लाया जाता था ;

(ड) पेटेंट के आवेदक ने नियंत्रक को धारा 8 द्वारा अपेक्षित जानकारी नहीं दी है या उसने ऐसी जानकारी दी है जो उसके ज्ञान में किसी तात्विक विशिष्टि में मिथ्या थी ;

(ढ) आवेदक ने धारा 35 के अधीन दिए गए गोपनीयता के निदेश का उल्लंघन किया है अथवा धारा 39 का उल्लंघन करके, भारत के बाहर पेटेंट अनुदत्त किए जाने के लिए आवेदन किया है या करवाया है ;

(ण) धारा 57 या धारा 58 के अधीन पूर्ण विनिर्देश को संशोधित करने की इजाजत कपट द्वारा अभिप्राप्त की गई थी ;

(त) पूर्ण विनिर्देश में आविष्कार के लिए उपयोग में लाए गए जैव पदार्थ के स्रोत या भौगोलिक मूल का प्रकटन नहीं किया गया है या उसका गलत वर्णन किया गया है ;

(थ) जहां तक पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में दावा किया गया आविष्कार भारत में या अन्यत्र किसी स्थानीय या देशी समुदाय के भीतर उपलब्ध मौखिक या अन्य जानकारी को ध्यान में रखते हुए, पूर्वानुमानित था ।

(2) उपधारा (1) के खंड (ड) और (च) के प्रयोजनों के लिए,—

(क) निजी दस्तावेज या गुप्त परीक्षण या गुप्त उपयोग को विचार में नहीं लिया जाएगा ; तथा

(ख) जहां पेटेंट किसी प्रक्रिया के लिए या किसी ऐसे उत्पाद के लिए है जिसका निर्माण वर्णित या दावाकृत प्रक्रिया द्वारा किया गया है, वहां उस उत्पाद का, जिसका विदेश में उस प्रक्रिया द्वारा निर्माण किया गया है, भारत में किया गया आयात, ऐसा आयात करने की तारीख को, उस दशा के सिवाय जब ऐसा आयात केवल युक्तियुक्त परीक्षण या प्रयोग के लिए किया गया था, उस आविष्कार का भारत में ज्ञात या उपयोग माना जाएगा ।

(3) आविष्कार के किसी ऐसे उपयोग को उपधारा (1) के खंड (ठ) के प्रयोजनों के लिए विचार में नहीं लिया जाएगा जो,—

(क) केवल युक्तियुक्त परीक्षण या प्रयोग के लिए किया गया हो ; अथवा

(ख) पेटेंट के आवेदक या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जिससे उसका हक व्युत्पन्न होता है, सरकार को या सरकार द्वारा प्राधिकृत व्यक्ति को या किसी सरकारी उपक्रम को उस आविष्कार के प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः संसूचित या प्रकट कर देने के परिणामस्वरूप सरकार द्वारा या यथापूर्वोक्त प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा या किसी सरकारी उपक्रम द्वारा किया गया है ; अथवा

(ग) पेटेंट के आवेदक द्वारा या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जिससे उसका हक व्युत्पन्न होता है, उस आविष्कार के

संसूचित या प्रकट कर देने के परिणामस्वरूप और आवेदक की या किसी ऐसे व्यक्ति को जिससे उसका हक व्युत्पन्न होता है, सहमति या उपमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया गया है।

(4) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कोई पेटेंट केन्द्रीय सरकार की अर्जी पर उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिसंहत किया जा सकेगा, यदि उच्च न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि पेटेंटधारी केन्द्रीय सरकार के प्रयोजनों के लिए धारा 99 के अर्थ में पेटेंटकृत आविष्कार का युक्तियुक्त निबंधनों पर निर्माण, उपयोग या प्रयोग करने के केन्द्रीय सरकार के निवेदन का अनुपालन करने में युक्तियुक्त हेतुक के बिना असफल रहा है।

(5) किसी पेटेंट के इस धारा के अधीन प्रतिसंहरण के लिए ऐसी अर्जी की सूचना की तामील ऐसे सभी व्यक्तियों पर की जाएगी, जिनके बारे में रजिस्टर से यह प्रतीत होता है कि वे पेटेंट के स्वत्वधारी हैं या उसमें अंश या हित रखते हैं और सूचना की तामील किसी अन्य व्यक्ति पर करना आवश्यक नहीं होगा।”

9. विद्वान् काउंसेल द्वारा पेटेंट अधिनियम से अवलंब लिए गए पेटेंट के प्रतिसंहरण से संबंधित सुसंगत उपबंध को उद्धृत करने के पश्चात्, हम अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करेंगे। हमारे सुविचारित मत में, भले ही कुछ दलीलें भिन्न शब्दों में दी गई हैं, फिर भी वे उन्हीं विधिक दलीलों पर आधारित हैं अर्थात् किसी अतिलंघन वाद में प्रतिवादी किसी पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए “प्रतिदावा” करता है, तो ऐसी चुनौती की विधिमान्यता का अवधारण केवल उच्च न्यायालय द्वारा, अर्थात् “प्रतिदावे” पर विचार करते समय, किया जा सकता है। और इसके पश्चात् (अतिलंघन वाद में प्रतिदावा फाइल करने के पश्चात्) पेटेंट की विधिमान्यता पर न्यायनिर्णयन करने की “अपील बोर्ड” की अधिकारिता समाप्त हो जाती है। मामले के इस पहलू पर अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई भिन्न-भिन्न दलीलें संक्षेप में इसमें नीचे दी जा रही हैं :

प्रथमतः, यह दलील दी गई कि जहां किसी पेटेंट का अतिलंघन करने के लिए उच्च न्यायालय में फाइल किए गए वाद के उत्तर में प्रतिदावा संस्थित किया जाता है, वहां अपील बोर्ड के समक्ष फाइल की गई प्रतिसंहरण अर्जी

में आगे कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती है। इस संबंध में आगे यह दलील दी गई कि इस बात से फर्क नहीं पड़ता है कि ऐसी कार्यवाहियां अतिलंघन का वाद फाइल करने से पूर्व संस्थित की गई थीं या उसके पश्चात्।

द्वितीयतः, यह दलील दी गई कि प्रतिसंहरण के लिए फाइल किए गए “प्रतिदावे” का विनिश्चय करने के लिए उच्च न्यायालय की अधिकारिता अनन्य है और साथ-साथ “अपील बोर्ड” के समक्ष कार्यवाहियां आरंभ करके इस अधिकारिता का हनन नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रतिदावे को अग्रसर करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष की कार्यवाहियों से अधीनस्थ न्यायालय (“अपील बोर्ड”) के समक्ष उसी पेटेंट के विरुद्ध उन्हीं आधारों पर की गई इसी प्रकार की सभी कार्यवाहियां निरर्थक हो जाएंगी और इसका स्पष्ट कारण यह है कि निचले न्यायालय को उच्चतर न्यायालय के लिए रास्ता साफ करना होगा।

तृतीयतः, यह दलील दी गई कि अतिलंघन के लिए वाद में पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए किए गए प्रतिदावे का विनिश्चय करने के लिए उच्च न्यायालय की अधिकारिता का उसी पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए उन्हीं आधारों पर “अपील बोर्ड” के समक्ष लंबित प्रतिसंहरण के लिए फाइल की गई किसी स्वतंत्र अर्जी द्वारा हनन नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में यह दलील दी गई कि अपील बोर्ड केवल एक प्रशासनिक अधिकरण है, जो कि न तो उच्च न्यायालय से उच्चतर है और न ही एक-समान प्रास्थिति (उच्च न्यायालय के समान) निहित है। तदनुसार, यह दलील दी गई कि “अपील बोर्ड” द्वारा किए गए अवधारण को, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा (रिट कार्यवाहियों के माध्यम से किसी समुचित मामले में) अन्यथा सही किया जा सकता है, उच्च न्यायालय के समक्ष प्रतिदावे के माध्यम से किए गए प्रतिसंहरण के अभिवाक् को निरर्थक करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है।

चतुर्थतः, यह दलील दी गई कि जब एक बार प्रतिसंहरण के लिए कोई प्रतिदावा संस्थित कर दिया जाता है, तब केवल उच्च न्यायालय में ही प्रतिसंहरण के अभिवाक् के गुणागुण का अवधारण करने का भारसाधन निहित होगा। पेटेंट अधिनियम की धारा 104 के परंतुक का अवलंब लेते हुए यह प्रकथन करने की ईप्सा की गई कि जब एक बार अतिलंघन के दावे में प्रतिदावा फाइल कर दिया गया है, तो इसे अवधारण के लिए उच्च न्यायालय को अंतरित किया जाना चाहिए।

10. इससे पूर्व कि हम अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करें, किसी पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए धारा 64(1) के अधीन उपलभ्य विकल्पों का पहले विश्लेषण करना आवश्यक है। हमारे सुविचारित में, धारा 64(1) में तीन अलग-अलग परिस्थितियों में किसी पेटेंट को चुनौती देने के लिए स्वतंत्रता निहित है। प्रथमतः, किसी “हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा की गई अर्जी पर। द्वितीयतः, केन्द्रीय सरकार की अर्जी पर। उपरोक्त दो विकल्पों की दशा में, प्रतिसंहरण के लिए अर्जी अपील बोर्ड के समक्ष फाइल की जाएगी। तृतीयतः, पेटेंट के अतिलंघन के किसी वाद में के किसी “प्रतिदावे” द्वारा। तृतीय विकल्प केवल अधिकारिता-प्राप्त उच्च न्यायालय द्वारा ही न्यायनिर्णय है। पेटेंट अधिनियम के उपबंधों में अंतर्विष्ट आज्ञा को देखते हुए, किसी पेटेंट के प्रतिसंहरण के लिए वाद लाने का अधिकार तीन अलग-अलग सत्ताओं, अर्थात् “हितबद्ध व्यक्ति”, “केन्द्रीय सरकार” और “अतिलंघन के वाद” में “प्रतिदावे” के माध्यम से प्रतिवादी को उपलभ्य है। उपबंध के अवलंब लिए गए विनिर्दिष्ट भाग पर निर्भर करते हुए, ऐसी चुनौती दो अलग-अलग न्यायालयों अर्थात् अपील बोर्ड या अधिकारिता-प्राप्त उच्च न्यायालय के समक्ष अनुज्ञेय है। हमारा उपरोक्त अवधारण पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) और धारा 104 के वाचन से प्रकट होता है।

11. पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि न्यूनाधिक, साधारणतया, किसी पेटेंट के प्रतिसंहरण की तब ईप्सा की जा सकती है, यदि पेटेंट पूर्वतर पूर्विकता का विधिमान्य और असली दावा होने के बावजूद अनुदत्त किया गया था [धारा 64 की उपधारा (1)(क)]; या यदि पेटेंट ऐसे व्यक्ति को अनुदत्त किया गया था जो उसके लिए हकदार नहीं था [धारा 64 की उपधारा (1)(ख)]; या यदि पेटेंट किसी अन्य व्यक्ति के अधिकारों की अनदेखी करके सदोष अनुदत्त किया गया था [धारा 64 की उपधारा (1)(ग)]; या यदि पेटेंट ऐसे विषय के लिए अनुदत्त किया गया था, जो आविष्कार नहीं है [धारा 64 की उपधारा (1)(घ)]; या यदि पेटेंट ऐसे विषय के लिए अनुदत्त किया गया था, जो नया नहीं था [धारा 64 की उपधारा (1)(ङ)]; या यदि पेटेंट ऐसे विषय के लिए अनुदत्त किया गया था, जो स्पष्ट है या कोई आविष्कारिक क्रिया अन्तर्ग्रस्त नहीं है [धारा 64 की उपधारा (1)(च)]; या यदि पेटेंट ऐसे विषय के लिए अनुदत्त किया गया है जो उपयोगी नहीं है [धारा 64 की उपधारा (1)(छ)]; या पेटेंट ऐसे विषय के लिए अनुदत्त किया गया है, जो वर्णन या अन्वेषण के कार्य

को ऐसे व्यक्ति को पूरी तरह से स्पष्ट नहीं करता है जिसका उस विषय से संबंध है जिससे वह आविष्कार संबद्ध है [धारा 64 की उपधारा (1)(ज)]; या यदि पेटेंट ऐसे विषय के लिए अनुदत्त किया गया था, जो सुभिन्न और निश्चित रूप से निश्चायक नहीं है [धारा 64 की उपधारा (1)(झ)]; या यदि पेटेंट विषय के गलत वर्णन/चित्रण के आधार पर अनुदत्त किया गया था [धारा 64 की उपधारा (1)(ञ)]; या यदि पेटेंट ऐसे विषय के लिए अनुदत्त किया गया था, जो अनुदत्त नहीं किया जाता यदि विषय को पूर्णतः प्रकट किया गया होता [धारा 64 की उपधारा (1)(ट)]; या यदि पेटेंट ऐसे विषय के लिए अनुदत्त किया गया था, जो भारत में पहले ही गुप्त रूप से उपयोग में लाया जा रहा था [धारा 64 की उपधारा (1)(ठ)]; या यदि पेटेंट, विदेश में पेटेंट अनुदत्त करने के लिए दिए गए आवेदन की सूचना को प्रकट करने में असफल रहने के बावजूद, अनुदत्त किया गया था या यदि ऐसी सूचना गलत रूप से दी गई थी [धारा 64 की उपधारा (1)(ड)]; या यदि पेटेंट अधिनियम के अधीन जारी गोपनीयता के निदेशों का उल्लंघन किया गया है या भारत में निवासी किसी व्यक्ति द्वारा भारत के बाहर पेटेंट अनुदत्त करने के लिए आवेदन किया गया है [धारा 64 की उपधारा (1)(ढ)]; या यदि पेटेंट के विनिर्देश का संशोधन कपट द्वारा अभिप्राप्त किया गया था [धारा 64 की उपधारा (1)(ण)]; या यदि आविष्कार के ब्यौरे इसमें प्रयुक्त जैव पदार्थ के स्रोत का प्रकटन नहीं करते हैं (या गलत प्रकटन करते हैं) [धारा 64 की उपधारा (1)(त)]; या यदि आविष्कार के ब्यौरे भारत में या अन्यत्र किसी स्थानीय या देशी समुदाय के भीतर उपलब्ध थे [धारा 64 की उपधारा (1)(थ)] ।

12. अब हम किसी व्यक्ति या सत्ता को पेटेंट अधिनियम के अधीन अनुदत्त पेटेंट को चुनौती देने के लिए किसी हितबद्ध व्यक्ति को धारा 64 के अधीन उपलब्ध उपचार से भिन्न उपचार की संक्षेप में अवेक्षा करेंगे । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, पेटेंट अधिनियम की धारा 64 का निर्वचन पेटेंट अधिनियम के अन्य उपबंधों, जिनके अधीन अनुदत्त किए गए पेटेंट को चुनौती दी जा सकती है, के संयोजन में करना कठिन है । इस संबंध में, सर्वप्रथम पेटेंट अधिनियम की धारा 25 के प्रति निर्देश किए जाने की आवश्यकता है । धारा 25 इसमें नीचे उद्धृत की जा रही है :-

“25. पेटेंट का विरोध – (1) जहां, पेटेंट के लिए कोई आवेदन प्रकाशित कर दिया गया है किंतु पेटेंट अनुदत्त नहीं किया गया है, वहां कोई व्यक्ति लिखित में नियंत्रक को निम्नलिखित आधारों में से

किसी आधार पर पेटेंट अनुदत्त करने के विरुद्ध विरोध के रूप में अभ्यावेदन दे सकेगा, अर्थात् यह कि –

(क) पेटेंट के आवेदक ने या उस व्यक्ति ने जिसके अधीन या मार्फत वह दावा करता है, आविष्कार को या उसके किसी भाग को उससे या ऐसे व्यक्ति से जिसके अधीन या जिसकी मार्फत वह दावा करता है, गलत ढंग से अभिप्राप्त किया है ;

(ख) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में अभी तक दावाकृत आविष्कार को दावे की पूर्विकता की तारीख से पूर्व –

(i) किसी पेटेंट के लिए किसी आवेदन के अनुसरण में भारत में 1 जनवरी, 1912 को या उसके पश्चात् फाइल किए गए किसी विनिर्देश में ; या

(ii) भारत में या कहीं और किसी अन्य दस्तावेज में, प्रकाशित कर दिया गया है :

परंतु उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट आधार वहां उपलब्ध नहीं होगा जहां ऐसे प्रकाशन से धारा 29 की उपधारा (2) या उपधारा (3) के आधार पर आविष्कार का पूर्वानुमान नहीं होता है ;

(ग) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में दावाकृत आविष्कार का किसी पूर्ण विनिर्देश के किसी ऐसे दावे में दावा किया गया है जो आवेदक के दावे की पूर्विकता तारीख को या उसके पश्चात् प्रकाशित किया गया है और भारत में किसी पेटेंट के लिए किसी आवेदन के अनुसरण में फाइल किया गया है, जो ऐसा दावा है जिसकी पूर्विकता तारीख आवेदक के दावे की पूर्विकता तारीख से पूर्वतर है ;

(घ) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में अभी तक दावाकृत आविष्कार भारत में उस दावे की पूर्विकता की तारीख से पूर्व सार्वजनिक रूप से ज्ञात या सार्वजनिक रूप से प्रयोग में था ।

स्पष्टीकरण – इस खंड के प्रयोजनों के लिए, किसी ऐसी प्रक्रिया से संबंधित किसी आविष्कार के बारे में, जिसके लिए किसी पेटेंट का दावा किया गया है, यह समझा जाएगा कि वह दावे की पूर्विकता की तारीख से पूर्व भारत में सार्वजनिक रूप से

ज्ञात हो चुका है या उसका सार्वजनिक रूप से प्रयोग हो चुका है यदि उस प्रक्रिया द्वारा निर्मित कोई उत्पाद उस तारीख से पूर्व भारत में पहले ही आयातित हो चुका है उसके सिवाय जहां ऐसा आयात युक्तियुक्त विचारण या केवल प्रयोग के प्रयोजनों के लिए हुआ है ;

(ड) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में अभी तक दावाकृत आविष्कार स्पष्ट है और खंड (ख) में यथा उल्लिखित प्रकाशित विषय को ध्यान में रखते हुए या उस विषय को ध्यान में रखते हुए, जो आवेदक के दावे की पूर्विकता की तारीख से पूर्व भारत में प्रयोग में था, उसमें स्पष्ट रूप से कोई आविष्कार संबंधी कार्रवाई अंतर्वलित नहीं है ;

(च) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे का विषय, इस अधिनियम के अर्थान्तर्गत कोई आविष्कार नहीं है या उस अधिनियम के अधीन पेटेंट योग्य नहीं है ;

(छ) पूर्ण विनिर्देश, पर्याप्त रूप से और स्पष्ट रूप से आविष्कार का या उस पद्धति का, जिसके द्वारा इसका पालन किया जाना है, वर्णन नहीं करता है ;

(ज) आवेदक धारा 8 द्वारा अपेक्षित सूचना नियंत्रक को प्रकट करने में असफल रहा है या उसने ऐसी जानकारी प्रस्तुत की है जो किसी सारवान् विशिष्टि में उसकी जानकारी में गलत थी ;

(झ) कन्वेन्शन आवेदन की दशा में, यह आवेदन, आवेदक द्वारा या किसी व्यक्ति द्वारा, जिससे उसका हक व्युत्पन्न होता है, कन्वेन्शन देश में किए गए आविष्कार के संरक्षण के लिए किए गए प्रथम आवेदन की तारीख से 12 मास के भीतर नहीं किया गया था ;

(ञ) पूर्ण विनिर्देश, आविष्कार के लिए उपयोग किए गए जैव पदार्थ के स्रोत या भौगोलिक उद्गम को प्रकट नहीं करता है या गलत रूप से उल्लिखित करता है ;

(ट) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में जहां तक दावा किया गया है, आविष्कार भारत में या किसी स्थानीय या स्वदेशी

समुदाय के भीतर या कहीं और उपलब्ध मौखिक या अन्यथा जानकारी को ध्यान में रखते हुए पूर्वानुमानित है, किंतु न कि किसी अन्य आधार पर,

और नियंत्रक, यदि ऐसे व्यक्ति द्वारा सुनवाई के लिए अनुरोध किया जाए, तो उसे सुनेगा और ऐसे अभ्यावेदन पर ऐसी रीति से और ऐसी अवधि के भीतर जो विहित की जाए उसका निपटान करेगा ।

(2) पेटेंट अनुदत्त करने के पश्चात् किसी समय किंतु पेटेंट को अनुदत्त करने की तारीख के प्रकाशन से एक वर्ष की अवधि के अवसान से पूर्व, कोई हितबद्ध व्यक्ति नियंत्रक को, विहित रीति में, निम्नलिखित आधारों में से किसी पर विरोध की सूचना दे सकेगा, अर्थात् यह कि –

(क) पेटेंटधारी या उस व्यक्ति ने, जिसके अधीन या मार्फत वह दावा करता है, आविष्कार को या उसके किसी भाग को उससे या ऐसे व्यक्ति से जिसके अधीन या जिसकी मार्फत वह दावा करता है, गलत ढंग से अभिप्राप्त किया गया है ;

(ख) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में अभी तक दावाकृत आविष्कार को दावे की पूर्विकता की तारीख से पूर्व –

(i) किसी पेटेंट के लिए किसी आवेदन के अनुसरण में भारत में 1 जनवरी, 1912 को या उसके पश्चात् फाइल किए गए किसी विनिर्देश में ; या

(ii) भारत में कहीं और किसी अन्य दस्तावेज में,

प्रकाशित कर दिया गया है :

परंतु उपखंड (ii) में विनिर्दिष्ट आधार वहां उपलब्ध नहीं होगा जहां ऐसे प्रकाशन से धारा 29 की उपधारा (2) या उपधारा (3) के आधार पर आविष्कार का पूर्वानुमान नहीं होता है ;

(ग) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में दावाकृत आविष्कार का किसी पूर्ण विनिर्देश के किसी ऐसे दावे में दावा किया गया है जो पेटेंटधारी के दावे की पूर्विकता तारीख को या उसके

पश्चात् प्रकाशित किया गया है और भारत में किसी पेटेंट के लिए किसी आवेदन के अनुसरण में फाइल किया गया है, जो ऐसा दावा है जिसकी पूर्विकता तारीख पेटेंटधारी के दावे की पूर्विकता तारीख से पूर्वतर है ;

(घ) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में अभी तक दावाकृत आविष्कार भारत में उस दावे की पूर्विकता की तारीख से पूर्व सार्वजनिक रूप से ज्ञात या सार्वजनिक रूप से प्रयोग में था ।

स्पष्टीकरण – इस खंड के प्रयोजनों के लिए, किसी ऐसी प्रक्रिया से संबंधित किसी आविष्कार के बारे में, जिसके लिए कोई पेटेंट अनुदत्त किया जाता है, यह समझा जाएगा कि वह दावे की पूर्विकता की तारीख से पूर्व भारत में सार्वजनिक रूप से ज्ञात हो चुका है या उसका सार्वजनिक रूप से प्रयोग हो चुका है यदि उस प्रक्रिया द्वारा निर्मित कोई उत्पाद उस तारीख से पूर्व भारत में पहले ही आयातित हो चुका है उसके सिवाय जहां ऐसा आयात युक्तियुक्त विचारण या केवल प्रयोग के प्रयोजनों के लिए हुआ है ;

(ङ) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में अभी तक दावाकृत आविष्कार स्पष्ट है और खंड (ख) में यथा उल्लिखित प्रकाशित विषय को ध्यान में रखते हुए या उस विषय को ध्यान में रखते हुए, जो आवेदक के दावे की पूर्विकता की तारीख से पूर्व भारत में प्रयोग में था, उसमें स्पष्ट रूप से कोई आविष्कार संबंधी कार्रवाई अंतर्वलित नहीं है ;

(च) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे का विषय, इस अधिनियम के अर्थान्तर्गत कोई आविष्कार नहीं है या उस अधिनियम के अधीन पेटेंट योग्य नहीं है ;

(छ) पूर्ण विनिर्देश, पर्याप्त रूप से और स्पष्ट रूप से आविष्कार का या उस पद्धति का, जिसके द्वारा इसका पालन किया जाना है, वर्णन नहीं करता है ;

(ज) पेटेंटधारी धारा 8 द्वारा अपेक्षित सूचना नियंत्रक को प्रकट करने में असफल रहा है या उसने ऐसी जानकारी प्रस्तुत की है जो किसी सारवान् विशिष्टि में उसकी जानकारी में गलत थी ;

(झ) कन्वेन्शन आवेदन पर अनुदत्त किसी पेटेंट की दशा में, पेटेंट के लिए आवेदन किसी कन्वेन्शन देश या भारत में पेटेंट द्वारा या ऐसे व्यक्ति द्वारा जिससे वह हक प्राप्त करता है, किए गए आविष्कार की सुरक्षा के लिए पहले आवेदन की तारीख से 12 मास के भीतर नहीं किया गया था ;

(ज) पूर्ण विनिर्देश, आविष्कार के लिए उपयोग किए गए जैव पदार्थ के स्रोत या भौगोलिक उद्गम को प्रकट नहीं करता है या गलत रूप से उल्लिखित करता है ;

(ट) पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में अभी तक दावाकृत आविष्कार भारत में या कहीं और किसी स्थानीय या स्वदेशी समुदाय के भीतर उपलब्ध मौखिक या अन्यथा जानकारी को ध्यान में रखते हुए पूर्वानुमानित था,

किंतु न कि किसी अन्य आधार पर ।

(3) (क) जहां विरोध की ऐसी कोई सूचना उपधारा (3) के अधीन सम्यक् रूप से दी जाती है, वहां नियंत्रक पेटेंटधारी को अधिसूचित करेगा ।

(ख) विरोध की सूचना की प्राप्ति पर नियंत्रक, लिखित में, आदेश द्वारा, विरोध बोर्ड रूप में ज्ञात एक बोर्ड का गठन करेगा जिसमें ऐसे अधिकारी होंगे जो अवधारित किए जाएं और विरोध की ऐसी सूचना को दस्तावेजों सहित उस बोर्ड को परीक्षा के लिए निर्देशित करेगा और उसकी सिफारिशों को नियंत्रक को प्रस्तुत करेगा ।

(ग) खंड (ख) के अधीन गठित प्रत्येक विरोध बोर्ड ऐसी प्रक्रिया के अनुसरण में, जो विहित की जाए, परीक्षा करेगा ।

(4) विरोध बोर्ड की सिफारिश प्राप्त करने पर और पेटेंटधारी और विरोधी को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् नियंत्रक पेटेंट को बनाए रखने या उसमें संशोधन करने या उसे प्रतिसंहत करने का आदेश देगा ।

(5) उपधारा (2) के खंड (घ) या खंड (ङ) में उल्लिखित आधारों की बाबत उपधारा (4) के अधीन आदेश पारित करते समय, नियंत्रक किसी व्यक्तिगत दस्तावेज या गुप्त विचारण या गुप्त प्रयोग

को ध्यान में नहीं रखेगा ।

(6) यदि नियंत्रक उपधारा (5) के अधीन ऐसा आदेश पारित करता है कि पेटेंट विनिर्देश या किसी अन्य दस्तावेज के संशोधन के अधीन रखा जाएगा तो पेटेंट तदनुसार संशोधित होगा ।”

13. पेटेंट अधिनियम की धारा 25 के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि पेटेंट अनुदत्त करने के लिए फाइल किए गए आवेदन के विरुद्ध “कोई व्यक्ति” न कि केवल “हितबद्ध व्यक्ति” ही (जैसा कि पेटेंट अधिनियम की धारा 64 में है) “विरोध के रूप में अभ्यावेदन” दे सकता है । यह अवसर यहां तक कि पेटेंट अनुदत्त करने से पूर्व उपलब्ध किया गया है । कोई पेटेंट अनुदत्त करने के विरुद्ध यह विरोध पेटेंट अनुदत्त करने के लिए दिए गए आवेदन को प्रकाशित करने के पश्चात् कार्यान्वित होता है । न्यूनाधिक, साधारणतया, कोई पेटेंट अनुदत्त करने का विरोध तब किया जा सकता है यदि पेटेंट के लिए आवेदक ने अभ्यावेदनकर्ता से, जो पेटेंट अनुदत्त करने का विरोध करता है, आविष्कार गलत ढंग से अभिप्राप्त किया था [धारा 25 की उपधारा (1)(क)]; या यदि पेटेंट के लिए आवेदन दावे की पूर्विकता तारीख से पूर्व प्रकाशित किया जाता है [धारा 25 की उपधारा (1)(ख)]; या यदि किसी आविष्कार के संबंध में पेटेंट के लिए आवेदन वैसे ही आविष्कार के लिए पहले ही प्रकाशित आवेदन के पश्चात् प्रकाशित किया जाता है [धारा 25 की उपधारा (1)(ग)]; या यदि कोई आविष्कार, जिसके संबंध में पेटेंट की ईप्सा की गई है, पूर्विकता की तारीख से पूर्व सार्वजनिक रूप से ज्ञात था या प्रयोग में था [धारा 25 की उपधारा (1)(घ)]; या यदि कोई आवेदन ऐसे विषय के संबंध में है, जो स्पष्ट है और कोई आविष्कारिक क्रिया अंतर्वलित नहीं है [धारा 25 की उपधारा (1)(ङ)]; या यदि किसी पेटेंट के लिए कोई आवेदन ऐसे विषय के लिए किया गया है, जो आविष्कार नहीं है [धारा 25 की उपधारा (1)(च)]; या यदि किसी पेटेंट के लिए आवेदन ऐसी रीति में किया गया है, जो आविष्कार का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं करती है या उस पद्धति का वर्णन नहीं है जिसके द्वारा इसे क्रियान्वित किया जाना है [धारा 25 की उपधारा (1)(छ)]; या यदि किसी पेटेंट के लिए आवेदक विदेश में कोई पेटेंट अनुदत्त करने के लिए दिए गए अपने आवेदन के बारे में जानकारी प्रकट करने में असफल रहा है [धारा 25 की उपधारा (1)(ज)]; या यदि किसी पेटेंट के लिए आवेदन कन्वेन्शन आवेदन की प्रकृति का है और यह आवेदन कन्वेन्शन देश में किए गए प्रथम आवेदन के एक वर्ष के पश्चात् किया गया है [धारा 25 की उपधारा

(1)(झ)]; या यदि किसी पेटेंट के लिए आवेदन में आविष्कार के लिए उपयोग किए गए जैव पदार्थ के स्रोत या उद्गम को प्रकट नहीं किया गया है (या गलत ढंग से प्रकट किया गया है) [धारा 25 की उपधारा (1)(ज)]; या यदि किसी आविष्कार के लिए आवेदन ऐसे विषय के संबंध में है, जो भारत में या कहीं और किसी स्थानीय या देशी समुदाय के भीतर उपलब्ध ज्ञान को ध्यान में रखते हुए पूर्वानुमानित किया जा सकता है [धारा 25 की उपधारा (1)(ट)] ।

14. धारा 25(2) के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि केवल कोई “हितबद्ध व्यक्ति” ही न कि “कोई व्यक्ति” (जैसा कि पेटेंट अधिनियम की धारा 25(1) में है) कोई पेटेंट अनुदत्त करने को ऐसे अनुदत्त के प्रकाशन से एक वर्ष के भीतर “नियंत्रक” को “विरोध की सूचना” जारी करके चुनौती दे सकता है । उपरोक्त उपबंध से, न्यूनाधिक, साधारणतया, यह भी प्रकट होता है कि “नियंत्रक को” ऐसे “विरोध की सूचना” पेटेंट अधिनियम की धारा 64 की उपधारा (1)(क), (ख), (ग), (घ), (ङ), (च), (ज), (झ) और (ण) में वर्णित आधारों पर दे सकता है । धारा 25(2) के अधीन चुनौती देने के लिए शेष आधार उन आधारों के समान ही हैं जो पेटेंट अधिनियम की धारा 25(1) में अंतर्विष्ट हैं ।

15. अनुदत्त किए गए किसी पेटेंट को “विरोध की सूचना” के माध्यम से चुनौती उन सभी आधारों पर दी जा सकती है जो धारा 25(1) के अधीन कोई पेटेंट अनुदत्त करने के लिए किए गए आवेदन को चुनौती देने के लिए अनुज्ञात हैं । तथापि, जब कोई पेटेंट अनुदत्त कर दिया गया है, तो उसके पश्चात् ऐसी चुनौती देने के लिए वाद लाने के अधिकार में सारभूत अंतर है । जबकि, किसी पेटेंट को अनुदत्त करने के लिए दिए गए आवेदन के विरुद्ध “कोई व्यक्ति” “विरोध के रूप में अभ्यावेदन” दे सकता है (पेटेंट अधिनियम की धारा 25(1) के अधीन), किंतु अनुदत्त किए गए पेटेंट को कोई “हितबद्ध व्यक्ति” ही “विरोध की सूचना” जारी करके चुनौती (पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन) दे सकता है । इसलिए, वाद लाने के अधिकार के विषय पर धारा 25(2) और धारा 64(1) एक समान हैं, क्योंकि अनुदत्त किए गए किसी पेटेंट को चुनौती देने के लिए वाद लाने का अधिकार इन दोनों उपबंधों में “किसी हितबद्ध व्यक्ति” को ही है । कोई पेटेंट अनुदत्त करने को लेकर चुनौती किसी “पेटेंट अतिलंघन वाद” में प्रतिवादी द्वारा भी दी जा सकती है । प्रतिवादी द्वारा ऐसा किसी “पेटेंट अतिलंघन वाद” में “प्रतिदावा” फाइल करके किया जा सकता है ।

16. जब पेटेंट अधिनियम की धारा 25(1) के अधीन अनुदत्त-पूर्व प्रक्रम पर कोई चुनौती दी जाती है, तो इसका अवधारण “नियंत्रक” द्वारा किया जाना चाहिए। “नियंत्रक” द्वारा पारित किए गए आदेश को “अपील बोर्ड” के समक्ष अपील फाइल करके चुनौती दी जा सकती है। जब धारा 25(2) के अधीन कोई चुनौती दी जाती है, तो यह चुनौती (पेटेंट) अनुदत्त करने की तारीख के प्रकाशन से एक वर्ष के भीतर दी जानी चाहिए। इस चुनौती की परीक्षा, प्रथमतः, धारा 25(3) के अधीन अनुध्यात “विरोध बोर्ड” द्वारा की जानी चाहिए। “विरोध बोर्ड” द्वारा की गई सिफारिशें फिर विचार के लिए “नियंत्रक” के पास रखी जानी चाहिए। पेटेंटेधारी को सूचना जारी करने के पश्चात्, और पेटेंटेधारी को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् “नियंत्रक” के लिए यह अपेक्षित है कि वह धारा 25(2) के अधीन फाइल की गई विरोध की सूचना पर अंतिम आदेश पारित करे। “नियंत्रक” द्वारा पारित किए गए ऐसे आदेश को “विरोध बोर्ड” के समक्ष अपील फाइल करके चुनौती दी जा सकती है। धारा 64(1) के अधीन किसी हितबद्ध व्यक्ति द्वारा दी गई चुनौती का न्यायनिर्णयन, प्रथमतः, “अपील बोर्ड” द्वारा किया जाना चाहिए। यदि किसी अतिलंघन वाद के उत्तर में प्रतिवादी संबंधित पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए कोई प्रतिदावा फाइल करता है, तो न्यायनिर्णयन की उक्त प्रक्रिया अधिकारिता-प्राप्त उच्च न्यायालय के समक्ष चलाई जाएगी (पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) और धारा 104 देखें)।

17. विद्वान् काउंसिलों को सुनने, और पेटेंटों के प्रतिसंहरण से संबंधित पेटेंट अधिनियम के विभिन्न उपबंधों की परीक्षा करने के पश्चात् अब हम प्रस्तुत संविवाद की परीक्षा करेंगे। हमारे सुविचारित मत में, पेटेंट अधिनियम की धारा 64 की गहन परीक्षा करने की आवश्यकता है। पूर्वोल्लिखित धारा 64 “इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए” शब्दों से प्रारंभ होती है, न कि “इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना” या “इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के होते हुए भी” शब्दों से। विधान-मंडल ने धारा 64 को जिन शब्दों से प्रारंभ किया है, उनसे आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि धारा 64 में अंतर्विष्ट उपबंध पेटेंट अधिनियम में अंतर्विष्ट अन्य सभी उपबंधों के अधीनस्थ हैं। पेटेंट अधिनियम की धारा 64 का यह आमुख यह आज्ञा देता है कि धारा 64 में अंतर्विष्ट निदेश पेटेंट अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीनस्थ और सहायक होंगे। सरल शब्दों में यह कहा

जा सकता है कि यदि पेटेंट अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध है, जो धारा 64 में अंतर्विष्ट आज्ञा के विरोध में है, तो पेटेंट अधिनियम की धारा 64 निष्प्रभावी हो जाएगी और अन्य उपबंध संदर्भाधीन विषय पर प्रभावी होगा (होंगे)। इसलिए पेटेंट अधिनियम की धारा 64 का ऐसा निर्वचन नहीं किया जा सकता है जो पेटेंट अधिनियम के किसी अन्य उपबंध (उपबंधों) के विरोध में हो।

18. यदि कोई कार्यवाहियां पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन किसी “हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा आरंभ की गई हैं, तो इससे उसी व्यक्ति का पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन “प्रतिसंहरण अर्जी” फाइल करने का अधिकार समाप्त हो जाएगा। और इसके साथ-साथ अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन “प्रतिदावा” (किसी अतिलंघन वाद के उत्तर में पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए) फाइल करने के लिए अनुदत्त अधिकार का अवलंब लेना भी समाप्त हो जाएगा। हमारे मत में, यह पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के प्रारंभ में आने वाले “इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए.....” शब्दों का स्वाभाविक प्रभाव होगा। और यदि, इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के अधीन रहते हुए.....शब्दों का उपरोक्त अर्थ होना नहीं लगाया जाता है, तो वे अनावश्यक और फालतू हो जाएंगे। तथापि, ऊपर निर्दिष्ट स्थिति पर इतनी गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे सुविचारित मत में, उपरोक्त स्थिति का कदापि उद्भूत होना असंभाव्य है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पेटेंट अधिनियम की धारा 25 में, अन्य बातों के साथ-साथ, किसी पेटेंट को अनुदत्त करने की प्रक्रिया का उपबंध किया गया है। यह प्रक्रिया आवेदन फाइल करने के साथ आरंभ होती है। द्वितीय कार्रवाई के अंतर्गत ईप्सित पेटेंट के ब्यौरों का प्रकाशन किया जाना अनुध्यात है। अगली कार्रवाई के अंतर्गत विरोध के रूप में (पेटेंट अनुदत्त करने) अभ्यावेदन फाइल किया जाना अनुध्यात है। यह कार्रवाई नियंत्रक द्वारा पेटेंट अनुदत्त करने या इनकार करने के अवधारण के साथ आगे बढ़ती है। नियंत्रक के विनिश्चय के पश्चात् (पेटेंट के) अनुदत्त का प्रकाशन किया जाता है। इस प्रक्रिया से पेटेंट के अनुदत्त का विनिश्चय अंतिम हो जाता है। फिर भी, इससे पेटेंटधारी के अधिकार को अंतिमता प्राप्त नहीं हो जाती है। अनुदत्त के प्रकाशित होने के पश्चात्, कोई “हितबद्ध व्यक्ति” पेटेंट के अनुदत्त के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष के भीतर विरोध की सूचना जारी कर सकता है। यदि जब कोई पेटेंट अनुदत्त करने को लेकर

दी गई चुनौतियों का निपटारा पेटेंटधारी के पक्ष में हो जाता है, केवल तब और तब यह कहा जा सकता है कि पेटेंट धारित करने के अधिकार को स्थायित्व प्राप्त हो गया है। इसी प्रकार, यदि किसी पेटेंट के अनुदत्त के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष के भीतर कोई विरोध की सूचना फाइल नहीं की जाती है, तो यह समझा जाएगा कि पेटेंट को स्थायित्व प्राप्त हो गया है। इस प्रकार, पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन परिकल्पित प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् ही पेटेंट को अंतिम अनुमोदन प्राप्त होता है।

19. अतिलंघन के वाद में कोई प्रतिवादी पक्षकार, जो अतिलंघन के आरोप का खंडन करने की ईप्सा करता है, उसे प्रतिदावा प्रस्तुत करने की अनुज्ञा है ताकि वह वाद के वादी को समनुदेशित पेटेंट की विधिमान्यता को (पेटेंट अधिनियम की धारा 64 के अधीन) चुनौती दे सके। ऐसा इसलिए है क्योंकि कोई प्रतिदावा केवल ऐसे व्यक्ति द्वारा फाइल किया जा सकता है जिसके विरुद्ध अतिलंघन का वाद (पेटेंटधारी द्वारा) फाइल किया गया है। ऐसी चुनौती के आधार पहले ही ऊपर वर्णित किए गए हैं।

20. पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन किसी पेटेंट के अनुदत्त को चुनौती देने के लिए “हितबद्ध व्यक्ति” को एक सुधारक क्रियाविधि भी उपलब्ध है। यह क्रियाविधि पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन “हितबद्ध व्यक्ति” के लिए उपबंधित इसी प्रकार के उपचार के अतिरिक्त है। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में, “कोई हितबद्ध व्यक्ति” शब्दों के सही तात्पर्य का मूल्यांकन करना आवश्यक है। हितबद्ध व्यक्ति पद को पेटेंट अधिनियम की धारा 2(1)(न) में परिभाषित किया गया है। जब तक कि संदर्भ के अधीन अन्यथा अपेक्षित न हो, पूर्वोल्लिखित धारा 2(1)(न) के निबंधनों के अनुसार कोई हितबद्ध व्यक्ति वह व्यक्ति होगा जो उसी क्षेत्र में अनुसंधान के कार्य में, या संवर्द्धन में लगा है जिससे आविष्कार संबंधित है। सरल शब्दों में, किसी हितबद्ध व्यक्ति के अंतर्गत वह व्यक्ति भी आता है जिसका किसी पेटेंट के साथ प्रत्यक्ष, वर्तमान और वास्तविक हित है और पेटेंट अनुदत्त करने से उसके उपरोक्त अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। हितबद्ध व्यक्ति के अंतर्गत वह व्यक्ति भी आएगा जो या तो स्वतः आविष्कार का (जो पेटेंटकृत किया गया है) स्वतंत्र रूप से उपयोग करना चाहता है, या प्रक्रिया (जिसे पेटेंटकृत किया गया है) का विदोहन अपने व्यक्तिगत उत्पादन के क्रियाकलाप में करना चाहता है। इसलिए “हितबद्ध व्यक्ति” पद स्थायी नहीं है। वही व्यक्ति उस समय एक हितबद्ध व्यक्ति न

हो, जब संबंधित पेटेंट के अनुदत्त को प्रकाशित किया गया था, और फिर भी किसी पश्चात्वर्ती समय पर अपने क्रियाकलापों के कारण वह ऐसा स्वरूप या स्थिति धारण कर सकता है। इसीलिए, किसी हितबद्ध व्यक्ति में किसी पेटेंट के अनुदत्त को, इसके प्रतिसंहरण की ईप्सा करते हुए, चुनौती देने की स्वतंत्रता पेटेंट अधिनियम की धारा 64 द्वारा अतिरिक्त रूप से निहित की गई है।

21. पेटेंट अधिनियम की धारा 64 के अधीन अनुध्यात दो उपचारों पर आधारित अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की पांचवीं दलील यह है कि धारा 64(1) में “या” शब्द के प्रयोग से यह प्रदर्शित होता है कि किसी व्यक्ति को अनुदत्त पेटेंट को “प्रतिसंहरण” अर्जी फाइल करके चुनौती देने की “किसी हितबद्ध व्यक्ति” को प्रदान की गई स्वतंत्रता उसी व्यक्ति द्वारा साथ-साथ अर्थात् पहले तो प्रतिसंहरण अर्जी फाइल करके और उसी समय अतिलंघन के वाद में “प्रतिदावा” फाइल करके ग्रहण नहीं की जा सकती है। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील है कि “या” शब्द स्पष्ट रूप से वियोजक है और इसे संयोजक के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। विद्वान् काउंसेल के अनुसार, पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) में अभिव्यक्त उपरोक्त उपचार का उसी व्यक्ति द्वारा साथ-साथ लाभ नहीं उठाया जा सकता है। विद्वान् काउंसेल के अनुसार, संबंधित व्यक्ति को उपरोक्त उपचारों में एक को चुनना होगा। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल का सारगर्भित प्रकथन यह है कि प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थियों ने “कोई हितबद्ध व्यक्ति” की स्थिति और दृष्टिकोण अपनाकर उसी पेटेंट को चुनौती देने के लिए “प्रतिसंहरण याचिका (याचिकाएं)” फाइल की है (की हैं), जिसे उसी समय “प्रतिदावे” फाइल करके चुनौती दी गई है। उपरोक्त प्रतिदावे अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए अतिलंघन वाद (वादों) के उत्तर में फाइल किए गए हैं। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील है कि प्रत्यर्थियों को उपरोक्त उपचारों में से केवल एक उपचार को चुनना चाहिए। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल के अनुसार, प्रत्यर्थियों द्वारा अपनाई गई कार्रवाई से प्रतिसंहरण अर्जी में कोई निष्कर्ष और प्रतिदावे में कोई अलग निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

22. हमें उपरोक्त इस दलील (दलीलों के क्रम में पांचवीं) को स्वीकार करने में थोड़ी-सी भी हिचकिचाहट नहीं है कि यद्यपि प्रत्यर्थियों को पेटेंट अधिनियम की धारा 64 में एक से अधिक उपचार उपलब्ध हैं, तो भी इसमें

उपबंधित भिन्न-भिन्न उपचारों को एक-दूसरे से अलग करते हुए इसमें प्रयुक्त “या” शब्द उन्हें एक ही प्रयोजन के लिए साथ-साथ दोनों उपचारों का उपभोग करने के अधिकार से वंचित कर देगा। सिद्धांत के तौर पर भी, यही सही विधिक स्थिति है।

23. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसिल द्वारा दी गई दलीलों (जैसा कि पूर्वगामी पैराओं में उल्लेख किया गया है) को ध्यान में रखते हुए, अवधारण के लिए यह प्रश्न उद्भूत होता है कि प्रत्यर्थियों को उपरोक्त दोनों उपचारों को चुनने के पश्चात् दोनों में से कौन-सा उपचार जारी रखने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए। उपरोक्त प्रश्न के उत्तर का अवधारण, यदि संभव होता है तो, स्वतः पेटेंट अधिनियम के उपबंधों से करना होगा। इस संबंध में हम सर्वप्रथम यह अभिलिखित कर सकते हैं कि विरोधी पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसिलों ने हमारा ध्यान पेटेंट अधिनियम के ऐसे किसी उपबंध की ओर आकर्षित नहीं किया है। जबकि, एक ओर, निस्संदेह यह दलील दी गई है कि विकल्प उच्चतर न्यायालय के पक्ष में जाना चाहिए। अन्य चुनौतियों की बाबत वाद लाने के अधिकार के बारे में ब्यौरा इसमें ऊपर पैरा 16 में वर्णित किया गया है। हम सरसरी तौर पर यह अभिलिखित कर सकते हैं कि “प्रतिदावे” का अवधारण करने का अधिकार उच्चतर न्यायालय अर्थात् अधिकारिता-प्राप्त उच्च न्यायालय को होगा (पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) और 104)। दूसरी ओर, उपरोक्त दलील का यह इंगित करते हुए विरोध किए जाने का प्रयास किया गया है कि पेटेंट अधिनियम के अधीन पारित आदेश (आदेशों) को चुनौती देने के लिए विधान-मंडल द्वारा दिए गए अवसरों को कम नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में यह दलील दी गई कि जहां कोई प्रतिसंहरण की अर्जी फाइल की जाती है वहां विधान-मंडल द्वारा दिए गए उपचार उन उपचारों से कहीं अधिक हैं जहां “प्रतिदावे” के माध्यम से प्रतिसंहरण की ईप्सा की जाती है। इस प्रकार, पहली दलील से व्युत्पन्न विधिसम्मत निष्कर्ष का समान रूप से दूसरी दलील द्वारा विधिसम्मत रूप से खंडन होता है। चूंकि पेटेंट अधिनियम के उपबंधों से कोई विधिसम्मत हल नहीं निकाला जा सकता है, इसलिए विवाद्यक को सुलझाने के लिए विधि के ज्ञात सिद्धांतों का अवलंब लेना आवश्यक है। अतः हम विधि के स्वीकृत सिद्धांतों के आधार पर विवाद्यक को सुलझाने का प्रयत्न करेंगे।

24. किसी “प्रतिदावे” को, सभी उद्देश्यों और प्रयोजनों के लिए, ऐसे व्यक्ति द्वारा फाइल किए गए वाद के रूप में समझना चाहिए जिसे

प्रतिवादी के रूप में अभियोजित किया जाता है। “प्रतिदावा” आवश्यक रूप से किसी वाद में किए गए दावे का विरोध करने के लिए फाइल किया जाता है। प्रतिदावे का विचारण संयुक्त रूप से वादी द्वारा फाइल किए गए वाद के साथ किया जाता है और उसका वैसा ही प्रभाव है जैसा कि किसी प्रति-वाद का होता है। इसलिए, सभी उद्देश्यों और प्रयोजनों के लिए, किसी प्रतिदावे को एक वादपत्र के रूप में समझा जाता है और वादपत्रों को लागू होने वाले नियमों द्वारा शासित होता है। न्यायालय को किसी वाद तथा प्रतिदावे का विचारण करते हुए वाद में किए गए निवेदन (निवेदनों) के साथ-साथ उन निवेदनों पर भी अपना निर्णय सुनाना होता है जो किसी प्रतिदावे में किए गए हैं। चूंकि प्रतिदावे का स्वरूप एक स्वतंत्र वाद का होता है, इसलिए प्रतिदावे पर वहां कार्यवाही करने लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है जहां प्रतिवादी ने वादी के विरुद्ध पहले ही उसी वादहेतु के आधार पर कोई वाद संस्थित किया है। उपरोक्त निष्कर्ष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् “सिविल प्रक्रिया संहिता” कहा गया है) की धारा 151 के साथ पठित धारा 10 में निश्चित किए गए विधि के स्वीकृत सिद्धांत के आधार पर निकलता है। उपरोक्त दोनों उपबंधों को इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :-

“10. वाद का रोक दिया जाना – कोई न्यायालय ऐसे किसी वाद के विचारण में जिसमें विवाद्य-विषय उसी के अधीन मुकदमा करने वाले किन्हीं पक्षकारों के बीच के या ऐसे पक्षकारों के बीच के, जिनसे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन वे या उनमें से कोई दावा करते हैं, किसी पूर्वतन संस्थित वाद में भी प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्य है, आगे कार्यवाही नहीं करेगा, जहां ऐसा वाद उसी न्यायालय में या भारत में के किसी अन्य ऐसे न्यायालय में, जो दावा किया गया अनुतोष देने की अधिकारिता रखता है या भारत की सीमाओं के परे वाले किसी ऐसे न्यायालय में, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित किया गया है या चालू रखा गया है और, वैसी ही अधिकारिता रखता है, या उच्चतम न्यायालय के समक्ष लंबित है।

स्पष्टीकरण – विदेशी न्यायालय में किसी वाद का लंबित होना उसी वाद-हेतुक पर आधारित किसी वाद का विचारण करने से भारत में के न्यायालयों को प्रवारित नहीं करता।

151. न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति की व्यावृत्ति – इस

संहिता की किसी भी बात के बारे में यह नहीं समझा जाएगा कि वह ऐसे आदेशों के देने की न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति को परिसीमित या प्रभावित करती है, जो न्याय के उद्देश्यों के लिए या न्यायालय की आदेशिका के दुरुपयोग का निवारण करने के लिए आवश्यक है।”

अतः, जहां कोई विवाद्यक उन्हीं पक्षकारों के बीच ऐसे न्यायालय में न्यायनिर्णयन करने के लिए पहले ही लंबित है जिसे उस विवाद्यक पर न्यायनिर्णयन करने की अधिकारिता है, वहां उन्हीं पक्षकारों के बीच उसी विवाद्यक पर किसी पश्चात्तर्वती वाद में कार्यवाही करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत संविवाद में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए इसी प्रकार का प्रश्न उद्भूत होता है। यदि प्रत्यर्थियों ने अपनी “कोई हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत से “अतिलंघन वाद” संस्थित करने से पूर्व “प्रतिसंहरण अर्जी” फाइल की थी तो उन्हें उसी वादहेतुक पर “प्रतिदावा” फाइल करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त स्थिति में स्वाभाविक निष्कर्ष यह होगा कि पेटेंट अनुदत्त करने की विधिमान्यता “प्रतिसंहरण अर्जी” में अवधारित की जाएगी। इसलिए उपरोक्त स्थिति में, “प्रतिसंहरण अर्जी” को जारी रखे जाने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, किंतु “प्रतिदावे” को जारी रखने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है। इसलिए उपरोक्त दशा में, यह स्पष्ट है कि स्थिति का हल उसी रीति में किया जाएगा, जैसा कि इसका विरोधी पक्षकारों द्वारा भिन्न-भिन्न अधिकारिता वाले न्यायालयों के समक्ष फाइल किए गए प्रति-वादों में किया जाता। हमारे सुविचारित मत में, उपरोक्त निष्कर्ष पेटेंट अधिनियम के सुसंगत उपबंधों के एक सामंजस्यपूर्ण निर्वचन के लिए अत्यावश्यक है।

25. उन मामलों में, जहां इसमें के अपीलार्थियों द्वारा (“अतिलंघन वाद” में वादी के रूप में) “अतिलंघन वाद” प्रत्यर्थियों द्वारा (“अतिलंघन वाद” में प्रतिवादियों के रूप में) “प्रतिसंहरण अर्जी (अर्जियां)” फाइल करने से पूर्व फाइल किया गया था (किए गए थे), वहां प्रत्यर्थियों को पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) से प्रकट होने वाली शक्ति और प्राधिकार के अधीन पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करने के लिए “प्रतिदावा (प्रतिदावे)” फाइल करने का अधिकार था। एक बार “अतिलंघन वाद (वादों)” के उत्तर में प्रतिदावा फाइल करने के पश्चात्, उसी वादहेतु के आधार पर, जैसा कि ऊपर अभिलिखित किया गया है, इसमें के प्रत्यर्थियों (“अतिलंघन वाद” में

प्रतिवादियों) को यह स्वतंत्रता नहीं थी कि वे “प्रतिसंहरण अर्जी (अर्जियां)” फाइल करें, क्योंकि वे प्राड न्याय के नियम द्वारा उसी तरह वर्जित थे। इसलिए, “अतिलंघन वाद” संस्थित करने की तुलना में समय के हिसाब से बाद में फाइल की गई “प्रतिसंहरण अर्जियां” विधि की दृष्टि से असंधार्य होंगी। ऐसे मामलों में, प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए प्रतिदावे का निपटारा करते समय पेटेंट के प्रतिसंहरण की प्रार्थना का न्यायनिर्णयन किया जाएगा। इसलिए उपरोक्त स्थिति में, जबकि “प्रतिदावे” को जारी रखे जाने के लिए अनुज्ञात किया जाएगा, किंतु “प्रतिसंहरण अर्जी” को जारी रखे जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है।

26. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसिल द्वारा दी गई चार दलीलों (इस निर्णय के पैरा 9 में वर्णित) और पांचवीं दलील (पैरा 21 में हमारे इस अवधारण में उल्लिखित) की परीक्षा करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि इनसे निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :-

प्रथम, “किसी हितबद्ध व्यक्ति” ने पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन कार्यवाहियां फाइल की हैं, तो इससे उसी व्यक्ति को पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन उसी प्रकार के सभी अधिकार समाप्त हो जाएंगे। इसमें “किसी हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत में कोई “प्रतिसंहरण अर्जी” फाइल करने का अधिकार (पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन) और साथ ही किसी “प्रतिदावे” के माध्यम से (पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन भी) एक प्रतिवादी की हैसियत में किसी पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा करने का अधिकार भी सम्मिलित है।

द्वितीय, यदि “किसी हितबद्ध व्यक्ति” द्वारा पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन उसमें निहित स्वतंत्रता का प्रयोग करते हुए कोई “प्रतिसंहरण अर्जी” उसके विरुद्ध “अतिलंघन वाद” संस्थित होने से पूर्व फाइल की जाती है, तो वह “प्रतिदावे” के माध्यम से पेटेंट के प्रतिसंहरण (जिसके आधार पर उसके विरुद्ध अतिलंघन वाद फाइल किया गया है) की ईप्सा करने के लिए विधि की दृष्टि से वंचित हो जाएगा। पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन उसे “प्रतिदावे” के माध्यम से अनुदत्त उपचार से इनकारी ऊपर पैरा 24 में वर्णित विधि के सिद्धांत पर आधारित है।

तृतीय, जहां किसी “अतिलंघन वाद” के उत्तर में प्रतिवादी ने पहले ही पेटेंट के प्रतिसंहरण की ईप्सा (जिसके आधार पर अतिलंघन वाद फाइल किया गया है) “प्रतिदावे” के माध्यम से की है, वहां प्रतिवादी इसके पश्चात्

“किसी हितबद्ध व्यक्ति” की हैसियत में “प्रतिसंहरण अर्जी” के द्वारा संबंधित पेटेंट को चुनौती नहीं दे सकता है। पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन “प्रतिसंहरण अर्जी” के द्वारा उसे अनुदत्त इस उपचार से इनकार किया जाना भी ऊपर पैरा 24 में अभिव्यक्त की गई विधि के उन्हीं सिद्धांतों पर आधारित है।

27. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा छठी दलील यह है कि जहां तक प्रस्तुत संविवाद का संबंध है, वह उस सहमति आदेश द्वारा शासित होना चाहिए था, जो उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 1 सितम्बर, 2010 को पारित किया गया था जिसमें प्रत्यर्थी (प्रतिवादियों के रूप में) इस बात के लिए सहमत हुए थे कि पक्षकारों के बीच लंबित वादों और “प्रतिदावों” को समेकित कर दिया जाए और स्वयं उच्च न्यायालय द्वारा सुनवाई की जाए। उपरोक्त सहमति आदेश को इसमें नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

“इस न्यायालय ने पूर्ववर्ती कार्यवाहियों में पक्षकारों से यह अभिनिश्चित करने की अपेक्षा की थी कि क्या सभी वादों में चल रहे विचारण को समेकित किया जा सकता है, क्योंकि उनमें तथ्य और विधि के सामान्य प्रश्नों का अवधारण किया जाना अंतर्वलित है। पक्षकार अपने-अपने काउंसेलों के माध्यम से, उनका अनुदेश प्राप्त करने के पश्चात्, इस बात के लिए सहमत हुए कि उक्त प्रक्रिया स्वीकार्य है। न्यायालय ने उनकी सुनवाई करने के पश्चात् उनकी सहमति को अभिलिखित किया और यह अवधारित किया कि उपरोक्त वादों और उनसे संबद्ध कार्यवाहियों का विनिश्चय करने में निम्नलिखित अनुसूची और प्रक्रिया का पालन किया जाएगा।

1. विधि संबंधी निम्नलिखित वादों, जिनमें एक समान पक्षकार और एक समान विवाद्यक हैं, सुविधा की दृष्टि से समेकित किया जाए -

(क) डा. ऐलायस वुबेन **बनाम** ऐनरकॉन इंडिया लिमिटेड, 2009 का सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1967 ;

(ख) ऐनरकॉन जीएमबीएच **बनाम** ऐनरकॉन (इंडिया) लिमिटेड और एक अन्य, 2009 का सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1968 ;

(ग) ऐलायस वुबेन **बनाम** योगेश मेहरा और अन्य, 2009

का सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1349 ;

(घ) ऐलायस वुबेन **बनाम** योगेश मेहरा और अन्य, 2009 का सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1963 ;

(ड.) ऐलायस वुबेन **बनाम** सविता आयल टेक्नोलॉजिज लिमिटेड और अन्य, 2010 का सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1333 ;

(च) ऐलायस वुबेन **बनाम** केएस आयल्स लिमिटेड और अन्य, 2010 का सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1335 ;

(छ) ऐलायस वुबेन **बनाम** एमटेक (इंडिया) इलैक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड और अन्य, 2010 का सिविल वाद (मूल वाद) सं. 176 ;

(ज) ऐलायस वुबेन **बनाम** वायु (इंडिया) पावर कारपोरेशन लिमिटेड, 2010 का सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1501.

2. उपरोक्त वादों में वादियों के अंतरिम व्यादेश के आवेदन फिलहाल तैयार नहीं किए गए हैं, पक्षकार सहमत हैं कि सभी वादों का विचारण शीघ्रता से किया जाए। इसलिए वादियों ने यह अनुरोध किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 के अधीन अंतरिम व्यादेश के लिए आवेदनों का निपटारा, ऐसे अनुरोध के लिए न्यायालय में समावदेन करने की स्वतंत्रता के साथ, यदि आवश्यक हो, किया जाए।

(क) 2009 के सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1349 में 2009 का अंतरिम आवेदन सं. 9431.

(ख) 2009 के सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1967 में 2009 का अंतरिम आवेदन सं. 13460.

(ग) 2009 के सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1968 में 2009 का अंतरिम आवेदन सं. 13463.

(घ) 2009 के सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1963 में 2009 का अंतरिम आवेदन सं. 13448.

(ड.) 2010 के सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1333 में 2010 का अंतरिम आवेदन सं. 8368.

(च) 2010 के सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1333 में 2010 का अंतरिम आवेदन सं. 8467.

(छ) 2010 के सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1501 में 2010 का अंतरिम आवेदन सं. 9753.

3. पक्षकारों द्वारा इस माननीय न्यायालय के आदेशों की अवमानना के लिए फाइल किए आवेदनों पर फिलहाल जोर नहीं दिया जा रहा है। पक्षकारों ने यह निवेदन किया है कि निम्नलिखित आवेदनों का निपटारा किया जाए –

(क) 2009 के सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1349 से उद्भूत न्यायालय अवमान अधिनियम की धारा 11 के अधीन 2010 का सिविल अवमान आवेदन सं. 11.

(ख) 2010 के सिविल वाद (मूल वाद) सं. 1968 में फाइल किया गया 2010 का अंतरिम आवेदन सं. 4096 (सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 नियम 2क के अधीन फाइल किया गया)।

पक्षकारों ने यह भी कथन किया है कि विवाद्यक जो उपरोक्त आवेदनों में उद्भूत हुए हैं, उन्हें मुख्य वाद में के विवाद्यकों के रूप में समझा जाए।

4. पक्षकार इस बात के लिए सहमत हैं कि उपरोक्त वादों में त्वरित विचारण के लिए निम्नलिखित अनुसूची का पालन किया जाए –

(क) सभी आठ वादों में, तत्संबंधी प्रतिदावों सहित, अभिवचनों का समापन आठ सप्ताह अर्थात् तारीख 25 अक्टूबर, 2010 तक या इससे पूर्व हो जाए (सभी उत्तर तीन सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 20 सितम्बर, 2010 तक और उसके पश्चात् सभी प्रत्युत्तर पांच सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 25 अक्टूबर, 2010 तक फाइल किए जाएं)।

(ख) वर्तमान वाद के न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक अतिरिक्त दस्तावेज, यदि कोई हो, इसके पश्चात् चार सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 25 नवम्बर, 2010 तक या इससे पूर्व फाइल किए जाएंगे।

(ग) इसके पश्चात् शपथपत्र के द्वारा स्वीकृति/प्रत्याख्यान अतिरिक्त दस्तावेज फाइल करने के पश्चात् दो सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 9 दिसम्बर, 2010 तक या इससे पूर्व फाइल किए जाएं ।

(घ) इसके पश्चात् ऊपर वर्णित वादों में एक समान विवाद्यकों को दो सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 24 दिसम्बर, 2010 तक विरचित किया जाएगा ।

(ङ) इसके पश्चात् साक्षियों और शपथपत्रों की सूची ऐसे साक्षियों के साक्ष्य द्वारा छह सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 4 फरवरी, 2011 तक या इससे पूर्व फाइल की जाएगी ।

(च) मौखिक साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 1 के अधीन कोई स्थानीय आयुक्त, जिसकी फीस दोनों पक्षकारों द्वारा संयुक्त रूप से दी जाएगी, नियुक्त किया जाएगा ।

(छ) वादी की ओर से साक्षियों की प्रतिपरीक्षा आठ सप्ताह के भीतर अर्थात् तारीख 1 अप्रैल, 2011 तक की जाएगी ।

(ज) प्रतिवादियों की ओर से साक्षियों की प्रतिपरीक्षा आठ सप्ताह की अवधि के भीतर अर्थात् तारीख 27 मई, 2011 तक की जाएगी ।

(झ) एक तकनीकी रिपोर्ट फाइल करके न्यायालय की सहायता के लिए कोई वैज्ञानिक सलाहकार (यदि आवश्यक हो) नियुक्त किया जाएगा और उसकी रिपोर्ट के आधार पर पक्षकारों को सलाहकार की परीक्षा करने के लिए अनुज्ञात किया जाए ।

(ञ) उपरोक्त प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् न्यायालय के समक्ष अंतिम दलीलों के लिए वादों को सूचीबद्ध किया जाए ।

5. पक्षकार सहमत हैं कि ऊपर यथा निर्धारित अनुसूची का उपरोक्त वादों में चल रहे विचारण में तीव्रता लाने के लिए पालन किया जाएगा ।

6. यह न्यायालय यह निदेश देता है कि पक्षकार उपरोक्त पैरा 5 में उपदर्शित प्रक्रिया का अनुसरण करेंगे और इसमें वर्णित अनुसूची

का अनुपालन करेंगे । न्यायालय पैरा 2 में वर्णित समुचित स्वतंत्रता के साथ उपरोक्त पैरा 2 और 3 में वर्णित आवेदनों का निपटारा करने का भी निदेश देता है ।

7. सभी वादों को निदेशों के लिए तारीख 16 नवम्बर, 2010 को और पुनः तारीख 24 दिसम्बर, 2010 को सूचीबद्ध किया जाए ।’

अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह भी दलील है कि उपरोक्त सहमति आदेश को क्रियान्वित किया गया था, क्योंकि उच्च न्यायालय ने अतिलंघन वादों और प्रतिदावों में तारीख 20 सितम्बर, 2011 को विवाद्यक विरचित किए थे । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 1 सितम्बर, 2010 के उपरोक्त सहमति आदेश के पश्चात् भी, प्रत्यर्थियों ने अपील बोर्ड के समक्ष प्रतिसंहरण अर्जियों को जारी रखा । यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थियों द्वारा अपनाई गई उपरोक्त प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अपीलार्थी को अनुदत्त छह पेटेंटों की बाबत प्रतिसंहरण के आदेश पारित किए गए थे । यह दलील दी गई कि उपरोक्त सभी पेटेंट उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित प्रतिदावों में भी विचाराधीन थे । अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह भी दलील है कि प्रत्यर्थियों द्वारा अपनाई गई क्रियाविधि न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आती है । तदनुसार, यह दलील दी गई कि प्रत्यर्थियों द्वारा अपनाई गई क्रियाविधि को गलत और अवैध होने के कारण अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए । इस निमित्त, अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह भी दलील है कि एक ही वाद हेतुक की बाबत उन्हीं पक्षकारों के बीच एक से अधिक कार्यवाहियां चलाना विधि की दृष्टि में अननुज्ञेय है ।

28. हमने अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई छठी दलील पर गंभीरता से विचार किया है । अब यह सुस्थिर है कि प्रक्रिया के नियमों का उद्देश्य संबंधित पक्षकारों को उनके सारभूत अधिकारों पर आधारित न्याय को सुनिश्चित करना है । इसलिए आमतौर पर यह कहा जाता है कि प्रक्रिया के सभी नियम न्याय के अनुचरी के सिवाय कुछ नहीं है । प्रस्तुत मामले जैसे किसी मामले में, यदि विवाद का निपटारा नितान्त रूप से विधि द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया के अनुसार किया जाना है, तो जो प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए, हमारे द्वारा उसे पहले ही ऊपर प्रस्तुत किया गया है । हमने इसमें ऊपर अभिलिखित अपने निष्कर्षों में यह तय किया है

कि संबंधित पक्षकारों द्वारा जो उपचार अपनाया जाएगा, वह पेटेंट अधिनियम की धारा 25(2) के अधीन कार्यवाहियों को संस्थित करने की तारीख, पेटेंट अधिनियम की धारा 64(1) के अधीन प्रतिसंहरण अर्जी संस्थित करने की तारीख और साथ ही पेटेंट अधिनियम के अध्याय 18 के अधीन अतिलंघन के वाद में प्रतिदावा संस्थित करने की तारीख पर निर्भर करेगा। वर्तमान आदेश के प्रारंभ में उल्लिखित तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी ने कम-से-कम 19 अतिलंघन वाद फाइल किए हैं और प्रत्यर्थियों ने कम-से-कम 23 प्रतिसंहरण अर्जियां फाइल की हैं। प्रत्यर्थियों ने अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए पेटेंट के अतिलंघन के वादों में प्रतिदावे भी फाइल किए हैं। वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में, भले ही एक ही पेटेंट के लिए दी गई अनेक चुनौतियों के स्थान पर, जैसा कि वर्तमान मामले में है, हमारे उपरोक्त अवधारण द्वारा, केवल एक विनिर्दिष्ट चुनौती देने तक सीमित किया गया है, तो भी वह चुनौती अलग-अलग न्यायालय के समक्ष दी जानी चाहिए। प्रस्तुत मामले में, विवाद एक समान प्रकृति के और उन्हीं पक्षकारों के बीच हैं, भले ही ये भिन्न-भिन्न पेटेंटों की बाबत हों। इसलिए संबंधित पक्षकारों के लिए यह सुविधाजनक होगा कि वे किसी एक न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के समक्ष इनके निपटारे के लिए सहमत हों। संबंधित न्यायनिर्णायक प्राधिकारी के लिए भी यह सुविधाजनक होगा। तदनुसार, संबंधित पक्षकारों की सुविधा की दृष्टि से, वे सहमति के आधार पर इस बात के लिए स्वतंत्र होंगे कि एकाधिक उपचारों में से उस एक उपचार को स्वीकार करें, जो वे अपने बीच लंबित विभिन्न मामलों में अपने विवाद के निपटारे के लिए जारी रखेंगे। विधि में परिकल्पित उपलब्ध उपचारों में से एक पर सहमति देने के पश्चात्, सहमत पक्षकारों में से किसी को भी सहमति दिए गए उस न्यायालय के अतिरिक्त किसी अन्य न्यायालय से प्रतितोष की ईप्सा करने की स्वतंत्रता नहीं होगी। इसलिए, हम तद्द्वारा यह अभिपुष्टि करते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 1 सितम्बर, 2010 को पारित किया गया सहमति आदेश, प्रक्रिया के विषय पर होने के कारण और ऐसे न्यायालय के समक्ष होने के कारण जिसे उस पर विचार करने की कानूनी अधिकारिता थी, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूर्णतः न्यायोचित है।

29. अपीलार्थियों की ओर से दी गई अगली और अंतिम दलील व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 (जिसको इसमें इसके पश्चात् “व्यापार चिह्न अधिनियम” कहा गया है) की धारा 124 पर आधारित है। ऊपर

उल्लिखित धारा 124 को इसमें नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

“124. जहां व्यापार चिह्न के रजिस्ट्रीकरण की विधिमान्यता प्रश्नगत की जाती है वहां कार्यवाहियों का रोका जाना, आदि -

(1) जहां किसी व्यापार चिह्न के अतिलंघन के लिए किसी वाद में -

(क) प्रतिवादी यह अभिवचन करता है कि वादी के व्यापार चिह्न का रजिस्ट्रीकरण अविधिमान्य है ; या

(ख) प्रतिवादी धारा 30 की उपधारा (2) के खण्ड (ड) के अधीन प्रतिवाद करता है और वादी प्रतिवादी के व्यापार चिह्न के रजिस्ट्रीकरण की अविधिमान्यता का अभिवचन करता है,

वहां वाद का विचारण करने वाला न्यायालय (जिसे इसमें इसके पश्चात् ‘न्यायालय’ कहा गया है) -

(i) यदि वादी या प्रतिवादी के व्यापार चिह्न के संबंध में रजिस्टर के परिशोधन के लिए कोई कार्यवाहियां रजिस्ट्रार या अपील बोर्ड के समक्ष लंबित हैं, तो ऐसी कार्यवाहियों के अंतिम निपटारे के लंबित रहने तक वाद को रोक देगा ;

(ii) यदि कोई ऐसी कार्यवाहियां लंबित नहीं हैं और न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि वादी या प्रतिवादी के व्यापार चिह्न के रजिस्ट्रीकरण की अविधिमान्यता के बारे में अभिवचन प्रथमदृष्ट्या मान्य हैं तो उसके बारे में विवाद्यक बनाएगा और मामले को विवाद्यक बनाने की तारीख से तीन मास की अवधि के लिए स्थगित कर देगा जिससे कि संबद्ध पक्षकार रजिस्टर के परिशोधन के लिए अपील बोर्ड को आवेदन करने में समर्थ हो सकें ।

(2) यदि संबद्ध पक्षकार न्यायालय में यह साबित करता है कि उसने उपधारा (1) के खंड (ख) (ii) में निर्दिष्ट ऐसा कोई आवेदन उसमें विनिर्दिष्ट समय के भीतर या उसे विस्तारित समय के भीतर जो न्यायालय पर्याप्त कारण से अनुज्ञात करे,

किया है, तो जब तक परिशोधन की कार्यवाहियों का अंतिम निपटान न हो जाए तब तक वाद का विचारण रुक जाएगा ।

(3) यदि यथापूर्वोक्त कोई ऐसा आवेदन ऐसे विनिर्दिष्ट समय के भीतर या ऐसे विस्तारित समय के भीतर जो न्यायालय अनुज्ञात करे, नहीं किया गया है, तो संबद्ध व्यापार चिह्न के रजिस्ट्रीकरण की विधिमान्यता के बारे में विवादक परित्यक्त समझा जाएगा और न्यायालय मामले में अन्य विवादकों की बाबत वाद में आगे कार्यवाही करेगा ।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) में निर्दिष्ट परिशोधन कार्यवाहियों में दिया गया अंतिम आदेश पक्षकारों पर आबद्धकर होगा और जहां तक व्यापार चिह्न के रजिस्ट्रीकरण की विधिमान्यता के बारे में विवादक से संबंधित है, न्यायालय वाद को ऐसे आदेश के अनुरूप निपटाएगा ।

(5) इस धारा के अधीन व्यापार चिह्न के अतिलंघन के किसी वाद को रोकने से न्यायालय वाद के रुके रहने की अवधि के दौरान (व्यादेश अनुदत्त करने वाले, लेखा रखने का निदेश देने वाले, रिसीवर नियुक्त करने वाले या संपत्ति कुर्क करने वाले किसी आदेश सहित) कोई अन्तर्वर्ती आदेश करने से प्रवारित नहीं होगा ।”

अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की जोरदार दलील यह है कि विधान-मंडल द्वारा ऐसी ही स्थिति पर, जैसी कि वर्तमान संविवाद में उद्भूत हुई है, व्यापार चिह्न अधिनियम के अधीन विचार किया गया है, क्योंकि धारा 124 में संबंधित न्यायालय को किसी व्यापार चिह्न के अतिलंघन के लिए वाद में की कार्यवाहियों को, प्रत्यर्थियों द्वारा व्यापार चिह्न के परिशोधन के लिए “अपील बोर्ड” के समक्ष आरंभ की गई लंबित कार्यवाहियों के अंतिम निपटारे तक, रोकने की शक्ति दी गई है । तदनुसार, अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील है कि यद्यपि व्यापार चिह्न अधिनियम में प्रस्तुत की गई स्थिति जैसी स्थिति पेटेंट अधिनियम के अधीन किसी विवादग्रस्त पेटेंट के अनुदत्त करने से उद्भूत हो सकती है, तो भी विधान-मंडल द्वारा पेटेंट अधिनियम के अधीन ऐसा कोई संरक्षात्मक उपाय उपबंधित नहीं किया गया है ।

30. यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि विद्वान् काउंसेल द्वारा

वर्तमान दलील देने का कारण यह है कि अपीलार्थी एक ही पेटेंट के प्रतिसंहरण के विषय पर अलग-अलग न्यायालय के समक्ष साथ-साथ दो कार्यवाहियां चलाए जाने के लिए इच्छुक नहीं हैं। अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करते समय अभिलिखित की गई अपनी चर्चा में हमने अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की इस दलील को स्वीकार किया है कि किसी पेटेंट के अनुदत्त को चुनौती देने के लिए पेटेंट अधिनियम की धारा 64 के अधीन उपलब्ध दो उपचारों में से केवल एक उपचार का उपभोग किया जा सकता है। तदनुसार, उक्त उपचार का या तो किसी हितबद्ध व्यक्ति की हैसियत में, या प्रतिदावे में प्रतिवादी की हैसियत में उपभोग किया जा सकता है। हमने इसमें ऊपर पहले ही यह निष्कर्ष निकाला है कि उपरोक्त उपचारों में से किसी एक का उपभोग करने के पश्चात् उसी व्यक्ति को उसे उपलब्ध दूसरे अनुकल्प को चुनकर किसी पेटेंट के अनुदत्त को चुनौती देने की स्वतंत्रता नहीं है। उपरोक्त निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थियों की ओर से दी गई यह दलील विचार करने योग्य नहीं है।

31. अतः, आक्षेपित आदेश इसमें ऊपर अभिलिखित निबंधनों में अपास्त किया जाता है। इस अपील का उपरोक्त निबंधनों में निपटारा किया जाता है।

अपील का निपटारा किया गया।

जस.

[2014] 3 उम. नि. प. 284

खीम सिंह

बनाम

उत्तराखंड राज्य

8 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति वी. गोपाल गोड़ा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – अभियुक्त का अपनी पत्नी (मृतका) के चरित्र पर संदेह होने के कारण उनके बीच अक्सर झगड़ा होना, घटना की रात्रि में अभियुक्त का अपने मकान से गायब हो जाना और सुबह अपने मकान पर वापस आने पर गायब रहने का स्पष्टीकरण देने में असफल रहने का उसका आचरण, उसके बताने पर मकान के अंदर से रक्तरंजित कुल्हाड़ी बरामद होना, अभियुक्त और मृतका के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध न होने की बात की संपुष्टि साक्षियों के मौखिक साक्ष्य से होना ऐसी परिस्थितियां हैं, जिनकी श्रृंखला पूर्ण है और इन पर एक साथ विचार करने पर केवल अभियुक्त की दोषिता का निष्कर्ष निकलता है, इसलिए विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई, मान्य है।

संक्षिप्त तथ्य, जिनसे यह अपील उद्भूत हुई, इस प्रकार हैं कि अभियुक्त-अपीलार्थी अपनी पत्नी (मृतका) के साथ अपने आवासीय मकान में रह रहा था। अभियुक्त पहले अपने गांव से बाहर नौकरी में था, किंतु पिछले चार-पांच वर्षों से वह वापस आ गया था और श्रमिक के रूप में कार्य कर रहा था। उसकी पत्नी (मृतका) क्रोधी स्वभाव की थी और अक्सर उसके साथ झगड़ती रहती थी। गांव में यह संदेह किया जाता था कि वह एक दुश्चरित्र स्त्री है और इस कारण अभियुक्त के भी उसके साथ अच्छे संबंध नहीं थे। अक्सर वे आपस में झगड़ते रहते थे। तारीख 17 जुलाई, 1987 को भी सायंकाल में उनका झगड़ा हुआ था। तारीख 18 जुलाई, 1987 को सुबह-सुबह बहादुर सिंह नामक व्यक्ति (जिसकी मृत्यु हो चुकी है), जो गांववासी था, जब अभियुक्त खीम सिंह के मकान के सामने से गुजर रहा था तो उसने पाया कि मकान का दरवाजा बंद था और बाहर कोई नहीं था। उसने दरवाजा खोला और मकान के अंदर गया और हिमुली देवी को मृत पड़े पाया। उसने शोर मचाया, जिस पर अभियुक्त की

माता भी वहां आ गई। उसने गांव के सभापति को भी बुलाया। उन सभी ने देखा कि मृतका कमरे के अंदर पड़ी हुई थी और उसके शरीर पर क्षतियां थीं तथा उसकी मृत्यु हो गई थी। गांव के सभापति ने लिखित रिपोर्ट तैयार की। उक्त रिपोर्ट में सभापति ने यह उल्लेख किया कि अभियुक्त ने ही अपनी पत्नी की हत्या की है और पटवारी से अनुरोध किया कि वे आएँ और मामले का अन्वेषण करें। वह सभापति के मकान पर आया और उसका कथन अभिलिखित किया। वह उसके साथ अभियुक्त के मकान पर गया, जहां मृतका को मकान के अंदर मृत पड़े हुए पाया। अन्य औपचारिकताएं पूर्ण करने के पश्चात् अभियुक्त को, जो वहां मौजूद था, गिरफ्तार किया गया। अभियुक्त के बताने पर मकान के अंदर एक रक्तरंजित कुल्हाड़ी पाई गई। अन्वेषण पूरा किया गया और अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। विचारण न्यायालय ने पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित मौखिक और दस्तावेजी दोनों प्रकार के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अभियुक्त खीम सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी ठहराया। उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय की अभिपुष्टि की गई। उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई। उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – तारीख 17 और 18 जुलाई, 1987 की मध्यवर्ती रात्रि में हिमुली देवी की कुल्हाड़ी से हत्या कर दी गई थी। अभियुक्त खीम सिंह के सिवाय उक्त मकान में कोई और नहीं रहता था। इसलिए हिमुली देवी की हत्या अभियुक्त के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति द्वारा हमला करने के परिणामस्वरूप नहीं हुई थी। तारीख 18 जुलाई, 1987 की सुबह अभियुक्त का आचरण अस्वाभाविक था। वह इस बात का स्पष्टीकरण देने में असफल रहा कि घटना की रात को वह कहां था। उपर्युक्त परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में, इस बात की परीक्षा करनी होगी कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब ली गई परिस्थितियों से घटना की श्रृंखला बनती है और क्या पारिस्थितिक साक्ष्य की कड़ी पूर्ण है, जो हत्या कारित करने में अभियुक्त की अंतर्ग्रस्तता को दर्शित करने के लिए पर्याप्त हो सके। मनुली देवी (अभि. सा. 1) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि तारीख 17 जुलाई, 1987 को सायंकाल में खीम सिंह और उसकी पत्नी के बीच झगड़ा हुआ था। तथापि, उसने यह भी कहा कि झगड़ा सूर्यास्त से पहले हुआ था। मनुली देवी अभियुक्त की माता होने के कारण एक बहुत ही स्वाभाविक

साक्षी है और उसके परिसाक्ष्य की विश्वसनीयता को त्यक्त नहीं किया जा सकता है। उसके कथन में यह बात आई है कि वह अपने एक अन्य पुत्र लछम सिंह के साथ एक अलग मकान में रहती है, जो अभियुक्त के मकान से सटा है। उसने स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि खीम सिंह और उसकी पत्नी एकसाथ रहते थे और वह (हिमुली देवी) अभियुक्त का कहना नहीं मानती थी। बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) ने भी, जो कि एक निकट पड़ोसी ही है, यह कथन किया है कि हरेला के पर्व पर अर्थात् तारीख 17 जुलाई, 1987 को लगभग 6.30 बजे अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच झगड़ा हुआ था और उसने चिल्लाने की आवाज सुनी थी। उसके कथन के इस भाग को प्रतिपरीक्षा में चुनौती नहीं दी गई है। बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) गांव का प्रधान होने के नाते एक स्वतंत्र साक्षी है और इसलिए उसके पास अभियुक्त को हत्या के अपराध में मिथ्या रूप से फंसाने का कोई कारण नहीं था। अतः अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक यह साबित किया है कि अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच पूर्ववर्ती सायंकाल में झगड़ा हुआ था। अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में प्रश्न सं. 3 और 4 के उत्तर में यह कहा कि तारीख 17 जुलाई, 1987 को वह अपने मकान में नहीं था। इस कथन पर अभियुक्त के ऐसे किसी स्पष्टीकरण के अभाव में कि वह तारीख 17 जुलाई, 1987 की रात्रि में कहां था, विश्वास नहीं किया जा सकता है। अभियुक्त यह स्पष्ट नहीं कर सका कि वह तारीख 17 जुलाई, 1987 की रात्रि में कहां था। अभियुक्त का आचरण यह प्रकट नहीं करने के कारण अस्वाभाविक है कि वह घटना वाली रात में कहां रहा था और इससे यह स्पष्ट होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसका कथन विश्वसनीय नहीं है। अभियुक्त की सगी माता, मनुली देवी (अभि. सा. 4) तथा गांव के प्रधान बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) के परिसाक्ष्य से यह पूरी तरह सिद्ध होता है कि घटना वाली रात को अभियुक्त मकान में ही मौजूद था और अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच झगड़ा हुआ था। अपने मकान से जाने का कोई कारण न दिए जाने के अभाव में, यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अभियुक्त उस रात्रि में अपने मकान में ही था। जोगा सिंह (अभि. सा. 5) ने अपने परिसाक्ष्य में यह कथन किया कि जब खीम सिंह सुबह मिला तो उसे पूछा गया कि वह रात्रि में कहां था, जिसके बारे में वह स्पष्ट नहीं कर सका। विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने उक्त कारण के लिए अपने निर्णय में यह मत व्यक्त किया कि मकान से अभिकथित अनुपस्थिति के बारे में स्पष्टीकरण न देने के अभियुक्त के इस आचरण से उसके द्वारा अपनाया

गया यह पक्षकथन कि वह मकान में मौजूद नहीं था, विश्वसनीय नहीं है। स्पष्ट तौर पर, अभियोजन पक्ष संदेह के परे यह सिद्ध करने में सफल रहा है कि यह अभियुक्त तारीख 17 और 18 जुलाई, 1987 की मध्य रात्रि में अपने मकान में मौजूद था। उच्च न्यायालय अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा इस बिंदु पर निकाले गए निष्कर्ष से असहमत नहीं हो पाया कि अभियुक्त खीम सिंह घटना के दिन अपने मकान में ही मौजूद था और इस न्यायालय के पास भी इस निष्कर्ष से असहमत होने के लिए कोई कारण नहीं है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष द्वारा तीसरी परिस्थिति को पूरी तरह साबित किया गया है। बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) का कथन, जिसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि गांव में रहने वाले किसी भी व्यक्ति की मृतका हिमुली देवी से दुश्मनी नहीं थी, पूरी तरह से सुसंगत है। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि अभियुक्त ग्रामवासियों से अभिकथित दुश्मनी होने का कोई कारण बताने में असफल रहा और उसने इस संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में एक शब्द भी नहीं कहा। इसलिए यह अनुमान लगाने का कोई कारण नहीं है कि हिमुली देवी, जो घटना वाली रात को अभियुक्त-पति के साथ मकान में थी, की हत्या गांव के किसी और व्यक्ति ने की थी। अन्वेषक अधिकारी, नारायण सिंह (अभि. सा. 6), पटवारी की अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा कराई गई थी। उसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि अभियुक्त के बताने पर अपराध करने में प्रयुक्त की गई कुल्हाड़ी बरामद की गई थी। इस साक्षी की प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा की गई थी। उसने प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से इस बात से इनकार किया कि अभियुक्त के बताने पर कुल्हाड़ी (हमला करने के लिए प्रयुक्त आयुध) बरामद नहीं की गई थी। चिकित्सा अधिकारी, डा. एन. डी. पुनेथा (अभि. सा. 7) ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह कथन किया कि मृतका के शरीर पर मृत्यु-पूर्व पहुंची क्षति सं. 1 कुल्हाड़ी जैसे भारी धारदार आयुध से कारित की जा सकती थी और क्षति सं. 2 कुल्हाड़ी के कुंद/उल्टे सिरे से या पथरीली जगह पर गिराकर कारित की जा सकती थी। उसके कथन के इस भाग को उसकी प्रतिपरीक्षा में प्रश्नगत नहीं किया गया था। अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 6) के कथन में यह बात आई है कि अभियुक्त के बताने पर बरामद की गई कुल्हाड़ी रक्तरंजित थी और उस पर बाल चिपके हुए थे। कुल्हाड़ी के रक्तरंजित भाग और कुल्हाड़ी के वजन आदि के संबंध में इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा की गई थी। यह सिद्ध होता है कि रक्तरंजित कुल्हाड़ी, प्रदर्श क-2, अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभियुक्त के मकान से

बरामद की गई थी। हिमुली देवी की मानव वध मृत्यु की संपुष्टि तारीख 18 जुलाई, 1987 की सुबह में अभियुक्त के आचरण से होती है। जोगा सिंह (अभि. सा. 5) ने यह कथन किया है कि जब सुबह अभियुक्त को पाया तो उससे रात्रि में उसके ठिकाने के बारे में पूछा गया और वह इसको स्पष्ट नहीं कर सका। यहां तक कि अभियुक्त के भाई लछम सिंह की पत्नी खिमुली देवी (अभि. सा. 2) ने यह कथन किया है कि अभियुक्त सुबह मकान से बाहर था और इधर-उधर घूम रहा था। यद्यपि अभियुक्त शोर मचा रहा था कि उसकी पत्नी की हत्या हो गई है, तो भी उसने मामले की रिपोर्ट दाखिल करने के लिए प्रधान या संबद्ध पटवारी से संपर्क करना आवश्यक नहीं समझा। तथापि, अभियुक्त का यह कथन, कि वह रात्रि में मकान में मौजूद नहीं था, मनुली देवी (अभि. सा. 1) और ऊपर निर्दिष्ट अन्य साक्षियों के सकारात्मक और विश्वासप्रद परिसाक्ष्य पर विचार करते हुए अविश्वसनीय प्रतीत होता है। बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) ने यह कथन किया है कि अभियुक्त के मकान का दरवाजा अन्दर से बंद नहीं था। यह बात भी अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों में से एक है, जिस पर यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार किया जा सकता है कि अभियुक्त ने अपराध करने के पश्चात् दरवाजा खोला और बाहर चला गया। मनुली देवी (अभि. सा. 1) अभियुक्त की माता, बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) प्रधान और खिमुली देवी (अभि. सा. 2) देवरानी ने भी यह बात कही है कि अभियुक्त को अंतिम बार मृतका के साथ देखा गया था। वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब लिए गए पारिस्थितिक साक्ष्य की कड़ी के उपरोक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिमुली देवी की हत्या करने के अपराध के लिए अभियुक्त दोषी है क्योंकि सभी परिस्थितियों पर एकसाथ विचार करने पर केवल अभियुक्त-अपीलार्थी के दोषी होने की परिकल्पना का निष्कर्ष निकलता है। अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब लिए गए पारिस्थितिक साक्ष्य की कड़ी अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए पूर्ण है। न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी खीम सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध और आजीवन कारावास के लिए दंडादिष्ट किया गया है, जिसकी अभिपुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा भी की गई है। (पैरा 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25 और 26)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1986.

2001 की दांडिक अपील सं. 1388 (पुराना सं. 1988 की दांडिक अपील सं. 1165) में नैनीताल स्थित उत्तरांचल उच्च न्यायालय के तारीख 24 अगस्त, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से

सर्वश्री फिरोज़ अहमद और आर. एस. शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से

सर्वश्री मुकेश वर्मा, पंकज के. सिंह और जतिन्दर कुमार भाटिया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपील 2001 की दांडिक अपील सं. 1388 (पुराना सं. 1988 की दांडिक अपील सं. 1165) में नैनीताल स्थित उत्तरांचल (अब उत्तराखंड) उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 24 अगस्त, 2005 को पारित किए गए निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा सेशन न्यायाधीश, अल्मोड़ा द्वारा 1987 के सेशन विचारण सं. 54 (राज्य बनाम खीम सिंह) में तारीख 30 मार्च, 1988 को पारित दोषसिद्धि के उस निर्णय और आदेश को मान्य ठहराया है, जिसके द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था ।

2. अभिलेख पर की सामग्री से यथा प्रकटित संक्षिप्त तथ्य, जिनसे यह अपील उद्भूत हुई, ये हैं कि अभियुक्त खीम सिंह अपनी पत्नी हिमुली देवी के साथ गांव सिमगारी स्थित अपने आवासीय मकान में रह रहा था । उसका मोहन सिंह नामक एक पुत्र है और वह भी उनके साथ रह रहा था, किंतु वह कुछ दिन से अपनी दादी के साथ रह रहा था, जो अभियुक्त खीम सिंह के मकान से सटे उसके भाई लछम सिंह के मकान में रह रही थी । अभियुक्त खीम सिंह पहले अपने गांव से बाहर नौकरी में था, किंतु पिछले चार-पांच वर्षों से वह वापस आ गया था और श्रमिक के रूप में कार्य कर रहा था । उसकी पत्नी हिमुली देवी क्रोधी स्वभाव की थी और अक्सर खीम सिंह के साथ झगड़ती रहती थी । गांव में यह संदेह किया जाता था कि वह एक दुश्चरित्र स्त्री है और इस कारण अभियुक्त खीम सिंह के भी उसके साथ अच्छे संबंध नहीं थे । अक्सर वे आपस में झगड़ते रहते थे । तारीख 17 जुलाई, 1987 को भी सायंकाल में उनका झगड़ा हुआ था । तारीख 18 जुलाई, 1987 को सुबह-सुबह बहादुर सिंह नामक व्यक्ति

(जिसकी मृत्यु हो चुकी है), जो गांववासी था, जब अभियुक्त खीम सिंह के मकान के सामने से गुजर रहा था तो उसने पाया कि मकान का दरवाजा बंद था और बाहर कोई नहीं था। उसने दरवाजा खोला और मकान के अंदर गया और हिमुली देवी को मृत पड़े पाया। उसने शोर मचाया, जिस पर अभियुक्त की माता भी वहां आ गई। उसने गांव के सभापति बच्ची सिंह को भी बुलाया। उन सभी ने देखा कि हिमुली देवी कमरे के अंदर पड़ी हुई थी और उसके शरीर पर क्षतियां थीं तथा उसकी मृत्यु हो गई थी।

3. गांव के सभापति बच्ची सिंह ने लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1 तैयार की। इसे किशन सिंह नामक व्यक्ति के माध्यम से क्षेत्र के पटवारी को भेजा गया। उक्त रिपोर्ट में सभापति ने यह उल्लेख किया कि अभियुक्त खीम सिंह ने ही अपनी पत्नी हिमुली देवी की हत्या की है और पटवारी से अनुरोध किया कि वे आएँ और मामले का अन्वेषण करें। पटवारी, नारायण सिंह को लिखित रिपोर्ट तारीख 18 जुलाई, 1987 को पूर्वाह्न में 11.30 बजे प्राप्त हुई और उसने उसके आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, प्रदर्श क-3, तैयार की। वह बच्ची सिंह के मकान पर आया और उसका कथन अभिलिखित किया। वह बच्ची सिंह के साथ अभियुक्त के मकान पर गया, जहां हिमुली देवी को मकान के अंदर मृत पड़े हुए पाया। शव को अभिरक्षा में लिया गया और मृत्युसमीक्षा रिपोर्ट, प्रदर्श क-4, तैयार की गई तथा शव को मुहरबंद किया गया। मरणोत्तर परीक्षा करने का अनुरोध करते हुए एक पत्र, प्रदर्श क-5, भी तैयार किया गया। शव पर से रक्तरंजित वस्त्रों को अभिरक्षा में लिया गया और फर्द, प्रदर्श क-6, तैयार की गई। जहां शव पड़ा हुआ था, उस स्थान से रक्तरंजित और सादी मिट्टी भी ली गई तथा मुहरबंद की गई और एक फर्द, प्रदर्श क-7, तैयार की गई। घटना के स्थल को स्थल-नक्शे, प्रदर्श क-8, में भी दर्शाया गया। अभियुक्त खीम सिंह को, जो वहां मौजूद था, गिरफ्तार किया गया और एक फर्द, प्रदर्श क-9, तैयार की गई। अभियुक्त के बताने पर मकान के अंदर एक रक्तरंजित कुल्हाड़ी पाई गई और एक फर्द, प्रदर्श क-2, तैयार की गई। मुहरबंद वस्तुएं चपरासी को सौंपी गईं और फर्द, प्रदर्श क-10, तैयार की गई। मनुली देवी (अभि. सा. 1) और खिमुली देवी (अभि. सा. 2) के कथन अभिलिखित किए गए। तारीख 19 जुलाई और 22 जुलाई, 1987 के बीच अन्य साक्षियों, जिनमें जोगा सिंह (अभि. सा. 5) भी सम्मिलित था, के कथन अभिलिखित किए गए। मुहरबंद वस्तुएं रासायनिक परीक्षण के

लिए भेजी गईं। अन्वेषण पूरा किया गया और अभियुक्त के विरुद्ध तारीख 22 अगस्त, 1988 को आरोप पत्र, प्रदर्श क-14, प्रस्तुत किया गया।

4. शव को मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा गया और मरणोत्तर परीक्षा तारीख 19 जुलाई, 1987 को पूर्वाह्न में 10.30 बजे बागेसनर में डा. एन. डी. पुनेथा द्वारा की गई। उसने शव पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व की क्षतियां पाई :-

“1. सिर के गण्डवर्ध क्षेत्र के बाईं ओर 5 से. मी. x 2 से. मी. आकार का हड्डी की गहराई तक विदीर्ण घाव मौजूद।

2. सिर के अनुकपालीय क्षेत्र पर 5 से. मी. x 3 से. मी. आकार का नील मौजूद। मुख से अध-पचा भोजन बाहर निकल रहा था।”

5. आंतरिक परीक्षण करने पर दो क्षतियों के नीचे अस्थि का अस्थिभंग पाया गया। इन क्षतियों के नीचे थक्केदार रक्त भी पाया गया था। उदर में थोड़ी मात्रा में अध-पचा भोजन पाया गया था। बड़ी और छोटी आंतों में गैस थी। चिकित्सा अधिकारी की राय में यह मृत्यु शव पर पाई गई दो क्षतियों द्वारा, जो प्रकृति के साधारण अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं, पहुंचे सदमे और रक्तस्राव के परिणामस्वरूप हुई थी। मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट, प्रदर्श क-15, तैयार की गई थी। मृत्यु होने का समय लगभग एक दिन पहले का था और डाक्टर की राय में यह मृत्यु 17/18 जुलाई, 1987 की रात्रि में कारित हुई थी। उसने यह भी राय दी कि क्षतियां कुल्हाड़ी जैसे किसी भारी धारदार आयुध से कारित की गई थीं।

6. पटवारी-सिमगारी ने आवश्यक औपचारिकताएं पूर्ण करने के पश्चात् अभियुक्त के विरुद्ध तारीख 22 अगस्त, 1987 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अल्मोड़ा के न्यायालय में आरोप पत्र, प्रदर्श क-14, फाइल किया। चूंकि अपराध अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए अभियुक्त के विचारण के लिए मामला सेशन न्यायाधीश, अल्मोड़ा को सुपुर्द किया गया। सेशन न्यायाधीश ने अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोपित किया और अभियुक्त ने यह अभिवाक् किया कि वह दोषी नहीं है और विचारण किए जाने का दावा किया।

7. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के लिए

मौखिक साक्ष्य के रूप में कुल सात साक्षियों, अर्थात् मनुली देवी (अभि. सा. 1) मृतका की सास, खिमुली देवी (अभि. सा. 2) मृतका की देवरानी (गोतानी), मोहन सिंह (अभि. सा. 3) अभियुक्त और मृतका का अप्राप्तवय पुत्र, बच्ची सिंह (अभि. सा. 4), जोगा सिंह (अभि. सा. 5) पड़ोसी, नारायण सिंह-पटवारी (अभि. सा. 6) और डा. एन. डी. पुनेथा (अभि. सा. 7) जिसने मृतका के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी, की परीक्षा कराई। अभियोजन पक्ष ने पटवारी के चपरासी भगत सिंह का तारीख 5 जनवरी, 1988 का शपथपत्र भी साक्ष्य में प्रस्तुत किया। ऊपर निर्दिष्ट सभी दस्तावेज अभियोजन पक्ष द्वारा फाइल किए गए थे। विचारण न्यायालय ने पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित मौखिक और दस्तावेजी दोनों प्रकार के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् अभियुक्त खीम सिंह को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी ठहराया।

8. अभियुक्त की ओर से हाजिर न्याय-मित्र श्री फिरोज़ अहमद ने निर्णय को मुख्य रूप से इस आधार पर चुनौती दी कि अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के लिए पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला पूर्ण नहीं है। यह दलील दी गई कि अपीलार्थी को किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के अभाव में मात्र संदेह के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है। यह भी दलील दी गई कि नातेदार, जैसे सास (अभि. सा. 1), देवरानी (अभि. सा. 2) और यहां तक कि पड़ोसी बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) और जोगा सिंह (अभि. सा. 5) को पक्षद्रोही घोषित किया गया था और इसलिए अभियुक्त को दोषी साबित करने के लिए कोई पर्याप्त साक्ष्य नहीं है।

9. इस मामले में घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है। मामला पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है। अभियुक्त की माता, मनुली देवी (अभि. सा. 1) ने अपने परिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 17 जुलाई, 1987 को हरेला के पर्व पर सायंकाल में अभियुक्त और उसकी पत्नी हिमुली देवी के बीच झगड़ा हुआ था। अगली सुबह अर्थात् तारीख 18 जुलाई, 1987 को बहादुर सिंह नामक व्यक्ति ने अभियुक्त के मकान का दरवाजा बंद पाया और जब उसने दरवाजे को धक्का दिया तो उसने मकान के अंदर हिमुली देवी को मृत पड़े हुए पाया। बहादुर सिंह ने सभापति, बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) को बुलाया। उसके पश्चात् पटवारी भी घटनास्थल पर आया। तथापि, अभि. सा. 1 ने यह कथन किया कि अभियुक्त खीम सिंह और हिमुली देवी के बीच विवाद के पश्चात् उसने अभियुक्त खीम सिंह को नहीं देखा था और इस साक्षी को पक्षद्रोही घोषित

किया गया था । तथापि, उसने यह स्वीकार किया कि मकान में केवल खीम सिंह और उसकी पत्नी रह रहे थे । उसका पुत्र मोहन सिंह उसके साथ रह रहा था । खिमुली देवी (अभि. सा. 2) अभियुक्त के भाई लछम सिंह की पत्नी है और मृतका हिमुली देवी की देवरानी (गोतानी) है । अभि. सा. 2 के अनुसार, उसे जानकारी नहीं है कि अभियुक्त और मृतका के बीच कोई झगड़ा हुआ था । हरेला पर्व के दिन वह अपने खेत गई हुई थी । अगली सुबह भी वह खेत चली गई थी, किंतु जब वह वापस आई तो उसने हिमुली देवी को मृत पड़े हुए देखा । मोहन सिंह (अभि. सा. 3) अभियुक्त का अप्राप्तवय पुत्र है । उसने यह कथन किया कि वह अपनी दादी के मकान के अंदर था और उसे नहीं पता कि उसके पिता के मकान में क्या हुआ था ।

10. बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) गांव का प्रधान है । उसने यह कथन किया कि खीम सिंह और उसकी पत्नी हिमुली देवी अक्सर झगड़ते रहते थे । ग्रामवासियों में यह बात भी होती थी कि अभियुक्त की पत्नी दुश्चरित्र है और इस कारण अभियुक्त खीम सिंह अपनी पत्नी से नाराज रहता था और वे अक्सर झगड़ते रहते थे । इस साक्षी ने आगे यह कथन किया कि तारीख 17 जुलाई, 1987 को सायंकाल में खीम सिंह और उसकी पत्नी मृतका हिमुली देवी के बीच झगड़ा हुआ था । सुबह-सुबह लगभग 6.30 बजे अभियुक्त की माता इस साक्षी के पास आई और बताया कि हिमुली देवी उठी नहीं है और खीम सिंह भी वहां नहीं है । जब वह खीम सिंह के मकान पर गया, तो उसने पाया कि दरवाजा खुला था और यह पाया कि हिमुली देवी क्षतिग्रस्त और मृत पड़ी हुई थी । खीम सिंह वहां नहीं पाया गया । बहादुर सिंह, जोगा सिंह (अभि. सा. 5), लछम सिंह, राम सिंह और अन्य व्यक्ति भी वहां आ गए और उस समय तक खीम सिंह को भी अपने मकान की ओर आते हुए पाया । इस साक्षी ने यह भी साक्ष्य दिया कि उसने बहादुर सिंह से लिखवाकर लिखित रिपोर्ट, प्रदर्श क-1, तैयार कराई और उसे संबंधित पटवारी के पास भेजा । इस साक्षी ने यह भी कथन किया कि जब पटवारी आया, तो अभियुक्त के बताने पर उसके मकान से एक रक्तरंजित कुल्हाड़ी बरामद की गई और फर्द, प्रदर्श क-2, तैयार की गई । गांव के एक अन्य निवासी, जोगा सिंह (अभि. सा. 5) ने अपने परिसाक्ष्य में बहुत हिचकिचाहट के साथ यह कथन किया कि अभियुक्त की पत्नी दुश्चरित्र नहीं थी । उसने यह कथन किया कि वह सभापति के बुलाने पर खीम सिंह के मकान पर गया था । उसने वहां हिमुली देवी को मृत पाया । अभियुक्त खीम सिंह उस समय वहां नहीं था, किंतु पलभर

पश्चात् उसे अपने मकान की ओर आते हुए देखा । नारायण सिंह (अभि. सा. 6), पटवारी अन्वेषक अधिकारी है और डा. एन. डी. पुनेथा (अभि. सा. 7) ने शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी । ये दोनों औपचारिक साक्षी हैं और अपनी-अपनी रिपोर्ट को साबित किया है । मोहन सिंह (अभि. सा. 3), आयु लगभग 8 वर्ष, जो अभियुक्त खीम सिंह का अप्राप्तवय पुत्र है, का साक्ष्य तात्विक नहीं है ।

11. अभियुक्त-अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में अपने विरुद्ध लगे अभ्यारोपणों से इनकार किया । उसने इस बात से इनकार किया कि उसकी पत्नी उसका कहना नहीं मानती थी और वह उससे झगड़ा करता था । उसने इस बात से भी इनकार किया कि वह दुश्चरित्र थी और इस कारण वह उससे नाराज था । उसने यह प्रकथन किया कि वह मृत्यु के अभिकथित समय पर वहां नहीं था, इसलिए उसके और उसकी पत्नी के बीच झगड़ा या कहा-सुनी होने का प्रश्न ही नहीं है । अभियुक्त ने यह खुलासा नहीं किया कि वह सुसंगत तारीख को कहां था । तथापि, उसने उसके बताने पर रक्तरंजित कुल्हाड़ी की बरामदगी होने की बात से इनकार किया । उसने यह दावा किया कि साक्षियों की उससे दुश्मनी थी, इसलिए उन्होंने उसके विरुद्ध मिथ्या रूप से साक्ष्य दिए । प्रश्न सं. 11 के उत्तर में अभियुक्त ने यह कहा कि वह यह दावा नहीं कर सकता कि सुसंगत तारीख और समय पर उसकी पत्नी की हत्या कुल्हाड़ी से की गई थी । उसने यह स्वीकार किया कि पटवारी ने उसे तारीख 18 जुलाई, 1987 को गिरफ्तार किया था । उसने यह भी दावा किया कि उसके पास अपनी पत्नी, जो पिछले लगभग 17 वर्षों से उसके साथ रह रही थी, की हत्या करने का कोई कारण नहीं था ।

12. हिमुली देवी की मृत्यु 17 और 18 जुलाई की मध्यवर्ती रात्रि में हुई थी और डा. एन. डी. पुनेथा (अभि. सा. 7) द्वारा तैयार की गई मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट से उसकी मृत्यु पूरी तरह से साबित होती है । यह विवादग्रस्त नहीं है कि मृतका को ऊपर यथाउल्लिखित मृत्यु-पूर्व क्षतियां पहुंची थीं । यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि मृतका के शरीर पर पाई गई दो क्षतियां प्रकृति के साधारण अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । यह चुनौती नहीं दी गई है कि मृत्यु-पूर्व की क्षतियां स्वयं कारित की गई हो सकती हैं । अभियोजन पक्ष ने तद्द्वारा यह सिद्ध किया है कि मृतका हिमुली देवी की मृत्यु 17 और 18 जुलाई, 1987 की मध्यवर्ती रात्रि में उसे पहुंची मृत्यु-पूर्व की क्षतियों के परिणामस्वरूप हुई थी ।

13. अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य के परिशीलन से हमारा यह निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के लिए मनुली (अभि. सा. 1), खिमुली देवी (अभि. सा. 2), बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) और जोगा सिंह (अभि. सा. 5) के परिसाक्ष्य का अवलंब लिया है। यह देखने के लिए कि क्या अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच अक्सर झगड़ा होता रहता था या नहीं, चर्चा किए जाने के लिए इन साक्षियों के साक्ष्य सुसंगत हैं।

14. मनुली देवी (अभि. सा. 1) अभियुक्त की माता और मृतका की सास है। ऐसा होने पर, उसके पास अपने पुत्र को मिथ्या रूप से आलिप्त करने का कोई कारण नहीं हो सकता है। उसने अपने कथन में यह कहा है कि खीम सिंह की पत्नी हिमुली देवी खीम सिंह का कहना नहीं मानती थी, इसलिए खीम सिंह उससे अप्रसन्न रहता था। इस साक्षी ने यह कथन किया है कि हरेला के पर्व पर सायंकाल में खीम सिंह और उसकी पत्नी के बीच झगड़ा हुआ था। अगले दिन सुबह जब बहादुर सिंह ने हिमुली देवी के मकान का दरवाजा खोला तो इस साक्षी को भी हिमुली देवी मृत पड़ी हुई पाई गई। इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में आगे यह भी साक्ष्य दिया कि अभिकथित दुर्घटना के दिन सायंकाल में अभियुक्त मकान में मौजूद था और उसका अपनी पत्नी से झगड़ा हुआ था। इस साक्षी ने यह भी कथन किया कि हिमुली देवी तेज-मिजाज की स्त्री थी और अभियुक्त अक्सर उस पर हमला करता रहता था। इस साक्षी ने यह भी कथन किया कि इससे पहले हिमुली देवी अपने आप को फांसी लगाने के लिए जंगल में भी गई थी। ऐसे नैसर्गिक साक्षी के संपूर्ण साक्ष्य को मात्र इसलिए अस्वीकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि अभियोजन पक्ष ने उसे पक्षद्रोही घोषित करने के लिए कहा था और उनके अनुरोध पर अभियोजन पक्ष द्वारा उसकी प्रतिपरीक्षा की गई थी। यह प्रथम परिस्थिति कि हिमुली देवी तेज-मिजाज की थी, इसकी संपुष्टि गांव के प्रधान, बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) द्वारा भी की गई है। सामान्य तौर पर गांव के प्रधान के पास पारिवारिक मामलों की जानकारी होती है और ऐसे मामले को गांव में ही सुलझाने की कोशिश करता है। पारिवारिक विवादों को सुलझाने के लिए प्रधान एक कड़ी होता है, इसलिए जब कभी ऐसी कोई घटना घटती है तो तुरंत प्रधान को सूचित किया जाता है। वर्तमान मामले में, प्रधान (अभि. सा. 4) ने लिखित रिपोर्ट बनाई थी और बहादुर सिंह से लिखवाई थी, जिसने मृतका को अपने मकान के अंदर मृत पड़े हुए सबसे पहले देखा था और तुरंत प्रधान को घटनास्थल पर बुलाया था। बच्ची सिंह, प्रधान ने अपने कथन में यह कहा

कि खीम सिंह और उसकी पत्नी अक्सर झगड़ते रहते थे और गांव में यह अफवाह थी कि हिमुली देवी एक दुश्चरित्र स्त्री है और इस बात के कारण अभियुक्त खीम सिंह मृतका से अप्रसन्न रहता था ।

15. जोगा सिंह (अभि. सा. 5) भी उसी गांव का निवासी है । इस साक्षी ने, हालांकि हिचकिचाहट के साथ, यह कथन किया कि जहां तक उसकी जानकारी में है, हिमुली देवी का चरित्र अच्छा था । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि जोगा सिंह (अभि. सा. 5) का ऐसा कथन इस तथ्य का सूचक है कि संभाव्यतः हिमुली देवी ऐसी स्त्री थी जिस पर जोगा सिंह (अभि. सा. 5) का कदापि कोई विनिर्दिष्ट टीका-टिप्पणी करने का आशय नहीं था । तथापि, जोगा सिंह (अभि. सा. 5) ने यह कथन किया कि अभियुक्त और उसकी पत्नी कभी तो सौहार्दपूर्वक रहते थे और कभी-कभी उनमें झगड़ा भी होता था ।

16. साक्षियों के परिसाक्ष्य के उपरोक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपर्युक्त कारण से अभियुक्त अपनी पत्नी हिमुली देवी से अप्रसन्न रहता था और इसके परिणामस्वरूप अक्सर उनके बीच झगड़ा होता रहता था । मृत्यु की तारीख से पहले दिन सायंकाल में भी उनके बीच झगड़ा हुआ था ।

17. तारीख 17 और 18 जुलाई, 1987 की मध्यवर्ती रात्रि में हिमुली देवी की कुल्हाड़ी से हत्या कर दी गई थी । अभियुक्त खीम सिंह के सिवाय उक्त मकान में कोई और नहीं रहता था । इसलिए हिमुली देवी की हत्या अभियुक्त के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति द्वारा हमला करने के परिणामस्वरूप नहीं हुई थी । तारीख 18 जुलाई, 1987 की सुबह अभियुक्त का आचरण अस्वाभाविक था । वह इस बात का स्पष्टीकरण देने में असफल रहा कि घटना की रात को वह कहां था । उपर्युक्त परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में, इस बात की परीक्षा करनी होगी कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब ली गई परिस्थितियों से घटना की शृंखला बनती है और क्या पारिस्थितिक साक्ष्य की कड़ी पूर्ण है, जो हत्या कारित करने में अभियुक्त की अंतर्ग्रस्तता को दर्शित करने के लिए पर्याप्त हो सके ।

18. मनुली देवी (अभि. सा. 1) ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि तारीख 17 जुलाई, 1987 को सायंकाल में खीम सिंह और उसकी पत्नी के बीच झगड़ा हुआ था । तथापि, उसने यह भी कहा कि झगड़ा सूर्यास्त से पहले हुआ था । मनुली देवी अभियुक्त की माता होने के कारण एक बहुत ही स्वाभाविक साक्षी है और उसके परिसाक्ष्य की विश्वसनीयता

को त्यक्त नहीं किया जा सकता है। उसके कथन में यह बात आई है कि वह अपने एक अन्य पुत्र लछम सिंह के साथ एक अलग मकान में रहती है, जो अभियुक्त के मकान से सटा है। उसने स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि खीम सिंह और उसकी पत्नी एक-साथ रहते थे और वह (हिमुली देवी) अभियुक्त का कहना नहीं मानती थी। बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) ने भी, जो कि एक निकट पड़ोसी ही है, यह कथन किया है कि हरेला के पर्व पर अर्थात् तारीख 17 जुलाई, 1987 को लगभग 6.30 बजे अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच झगड़ा हुआ था और उसने चिल्लाने की आवाज सुनी थी। उसके कथन के इस भाग को प्रतिपरीक्षा में चुनौती नहीं दी गई है। बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) गांव का प्रधान होने के नाते एक स्वतंत्र साक्षी है और इसलिए उसके पास अभियुक्त को हत्या के अपराध में मिथ्या रूप से फंसाने का कोई कारण नहीं था। अतः अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक यह साबित किया है कि अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच पूर्ववर्ती सायंकाल में झगड़ा हुआ था।

19. अभियुक्त ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में प्रश्न सं. 3 और 4 के उत्तर में यह कहा कि तारीख 17 जुलाई, 1987 को वह अपने मकान में नहीं था। इस कथन पर अभियुक्त के ऐसे किसी स्पष्टीकरण के अभाव में कि वह तारीख 17 जुलाई, 1987 की रात्रि में कहां था, विश्वास नहीं किया जा सकता है। अभियुक्त यह स्पष्ट नहीं कर सका कि वह तारीख 17 जुलाई, 1987 की रात्रि में कहां था। अभियुक्त का आचरण यह प्रकट नहीं करने के कारण अस्वाभाविक है कि वह घटना वाली रात में कहां रहा था और इससे यह स्पष्ट होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसका कथन विश्वसनीय नहीं है। अभियुक्त की सगी माता, मनुली देवी (अभि. सा. 4) तथा गांव के प्रधान बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) के परिसाक्ष्य से यह पूरी तरह सिद्ध होता है कि घटना वाली रात को अभियुक्त मकान में ही मौजूद था और अभियुक्त और उसकी पत्नी के बीच झगड़ा हुआ था। अपने मकान से जाने का कोई कारण न दिए जाने के अभाव में, यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अभियुक्त उस रात्रि में अपने मकान में ही था।

20. जोगा सिंह (अभि. सा. 5) ने अपने परिसाक्ष्य में यह कथन किया कि जब खीम सिंह सुबह मिला तो उससे पूछा गया कि वह रात्रि में कहां था, जिसके बारे में वह स्पष्ट नहीं कर सका।

21. विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने उक्त कारण के लिए अपने निर्णय में

यह मत व्यक्त किया कि मकान से अभिकथित अनुपस्थिति के बारे में स्पष्टीकरण न देने के अभियुक्त के इस आचरण से उसके द्वारा अपनाया गया यह पक्षकथन कि वह मकान में मौजूद नहीं था, विश्वसनीय नहीं है। स्पष्ट तौर पर, अभियोजन पक्ष संदेह के परे यह सिद्ध करने में सफल रहा है कि यह अभियुक्त तारीख 17 और 18 जुलाई, 1987 की मध्य रात्रि में अपने मकान में मौजूद था। उच्च न्यायालय अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने के पश्चात् विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा इस बिंदु पर निकाले गए निष्कर्ष से असहमत नहीं हो पाया कि अभियुक्त खीम सिंह घटना के दिन अपने मकान में ही मौजूद था और हमारे पास भी इस निष्कर्ष से असहमत होने के लिए कोई कारण नहीं है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष द्वारा तीसरी परिस्थिति को पूरी तरह साबित किया गया है।

22. बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) का कथन, जिसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि गांव में रहने वाले किसी भी व्यक्ति की मृतका हिमुली देवी से दुश्मनी नहीं थी, पूरी तरह से सुसंगत है। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि अभियुक्त ग्रामवासियों से अभिकथित दुश्मनी होने का कोई कारण बताने में असफल रहा और उसने इस संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपने कथन में एक शब्द भी नहीं कहा। इसलिए यह अनुमान लगाने का कोई कारण नहीं है कि हिमुली देवी, जो घटना वाली रात को अभियुक्त-पति के साथ मकान में थी, की हत्या गांव के किसी और व्यक्ति ने की थी। अन्वेषक अधिकारी, नारायण सिंह (अभि. सा. 6), पटवारी की अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षा कराई गई थी। उसने स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि अभियुक्त के बताने पर अपराध करने में प्रयुक्त की गई कुल्हाड़ी बरामद की गई थी। इस साक्षी की प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा की गई थी। उसने प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से इस बात से इनकार किया कि अभियुक्त के बताने पर कुल्हाड़ी (हमला करने के लिए प्रयुक्त आयुध) बरामद नहीं की गई थी। चिकित्सा अधिकारी, डा. एन. डी. पुनेथा (अभि. सा. 7) ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह कथन किया कि मृतका के शरीर पर मृत्यु-पूर्व पहुंची क्षति सं. 1 कुल्हाड़ी जैसे भारी धारदार आयुध से कारित की जा सकती थी और क्षति सं. 2 कुल्हाड़ी के कुंद/उल्टे सिरे से या पथरीली जगह पर गिराकर कारित की जा सकती थी। उसके कथन के इस भाग को उसकी प्रतिपरीक्षा में प्रश्नगत नहीं किया गया था। अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 6) के कथन में यह बात आई है कि अभियुक्त के बताने पर बरामद की गई कुल्हाड़ी रक्तरंजित थी और उस पर बाल चिपके हुए थे। कुल्हाड़ी के रक्तरंजित भाग और कुल्हाड़ी के

वजन आदि के संबंध में इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा की गई थी। यह सिद्ध होता है कि रक्तरंजित कुल्हाड़ी, प्रदर्श क-2, अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभियुक्त के मकान से बरामद की गई थी।

23. हिमुली देवी की मानववध मृत्यु की संपुष्टि तारीख 18 जुलाई, 1987 की सुबह में अभियुक्त के आचरण से होती है। जोगा सिंह (अभि. सा. 5) ने यह कथन किया है कि जब सुबह अभियुक्त को पाया तो उससे रात्रि में उसके ठिकाने के बारे में पूछा गया और वह इसको स्पष्ट नहीं कर सका। यहां तक कि अभियुक्त के भाई लछम सिंह की पत्नी खिमुली देवी (अभि. सा. 2) ने यह कथन किया है कि अभियुक्त सुबह मकान से बाहर था और इधर-उधर घूम रहा था। यद्यपि अभियुक्त शोर मचा रहा था कि उसकी पत्नी की हत्या हो गई है, तो भी उसने मामले की रिपोर्ट दाखिल करने के लिए प्रधान या संबद्ध पटवारी से संपर्क करना आवश्यक नहीं समझा। तथापि, अभियुक्त का यह कथन, कि वह रात्रि में मकान में मौजूद नहीं था, मनुली देवी (अभि. सा. 1) और ऊपर निर्दिष्ट अन्य साक्षियों के सकारात्मक और विश्वासप्रद परिसाक्ष्य पर विचार करते हुए अविश्वसनीय प्रतीत होता है।

24. बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) ने यह कथन किया है कि अभियुक्त के मकान का दरवाजा अन्दर से बंद नहीं था। यह बात भी अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों में से एक है, जिस पर यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार किया जा सकता है कि अभियुक्त ने अपराध करने के पश्चात् दरवाजा खोला और बाहर चला गया।

25. मनुली देवी (अभि. सा. 1) अभियुक्त की माता, बच्ची सिंह (अभि. सा. 4) प्रधान और खिमुली देवी (अभि. सा. 2) देवरानी ने भी यह बात कही है कि अभियुक्त को अंतिम बार मृतका के साथ देखा गया था।

26. वर्तमान मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब लिए गए पारिस्थितिक साक्ष्य की कड़ी के उपरोक्त वर्णन से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिमुली देवी की हत्या करने के अपराध के लिए अभियुक्त दोषी है क्योंकि सभी परिस्थितियों पर एकसाथ विचार करने पर केवल अभियुक्त-अपीलार्थी के दोषी होने की परिकल्पना का निष्कर्ष निकलता है। अभियोजन पक्ष द्वारा अवलंब लिए गए पारिस्थितिक साक्ष्य की कड़ी अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित करने के लिए पूर्ण है। हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी खीम सिंह को भारतीय

दंड संहिता की धारा 302 के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध और आजीवन कारावास के लिए दंडादिष्ट किया गया है, जिसकी अभिपुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा भी की गई है।

27. परिणामतः, अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में कोई बल नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए। तदनुसार, यह अपील खारिज की जाती है। अपीलाधीन आक्षेपित निर्णय को कायम रखा जाता है। हम विद्वान् न्याय मित्र, श्री फिरोज़ अहमद द्वारा इस मामले में न्यायालय की सहायता करने में किए गए प्रयास की सराहना करते हैं और न्याय मित्र को 7,000/- रुपए की राशि का फीस के रूप में संदाय करने का निदेश देते हैं।

अपील खारिज की गई।

जस.

[2014] 3 उम. नि. प. 300

इंदू एयरवेज प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और अन्य

बनाम

मगनम एविएशन प्राइवेट लिमिटेड (मैसर्स) और एक अन्य

7 अगस्त, 2014

न्यायमूर्ति आर. एम. लोढ़ा और न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 138 – चैक का अनादरण – माल का प्रदाय करने के क्रय आदेशों के संबंध में क्रेता द्वारा विक्रेता को अग्रिम रकम के रूप में आगे की तारीख लिखा हुआ चैक जारी किया जाना – क्रेता द्वारा संदाय रोक देने के कारण चैक का अनादरण – धारा 138 के अधीन अपराध को लाने के लिए लेखीवाल पर चैक लिखने की तारीख को अस्तित्वयुक्त कोई ऋण या दायित्व का होना अत्यावश्यक है और क्रय आदेश के संबंध में अग्रिम रकम के रूप में जारी किए गए चैक को अस्तित्वयुक्त ऋण या दायित्व के लिए जारी किया गया नहीं कहा जा सकता है और चैक के अनादरण पर कोई आपराधिक दायित्व सृजित नहीं होता है।

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 138 – चैक का अनादरण – माल का प्रदाय करने की संविदा में अग्रिम रकम के संदाय की शर्त होना – क्रेता द्वारा विक्रेता को आगे की तारीख लिखा हुआ चैक जारी किया जाना – क्रेता द्वारा संदाय रोक देने के कारण चैक का अनादरण – चैक के अनादरण के कारण संविदा की ऐसी शर्त का भंग होने पर विक्रेता को हुई हानि की भरपाई क्रेता द्वारा करनी होगी किंतु इससे धारा 138 के अधीन आपराधिक दायित्व का सृजन नहीं होता है ।

क्रेता-अपीलार्थियों ने हवाई जहाज के कतिपय पुर्जों के प्रदाय के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 को दो क्रय आदेश दिए । इन क्रय आदेशों की बाबत क्रेताओं ने आगे की तारीख डाले हुए दो चैक भी जारी किए । उक्त चैक क्रय आदेशों के लिए अग्रिम संदाय के निमित्त जारी किए गए थे । संविदा के निबंधनों और शर्तों का एक निबंधन और शर्त यह थी कि प्रदायकर्ता को पूरी रकम अग्रिम दी जाएगी । जब इन चैकों को प्रस्तुत किया गया तो वे इस आधार पर अनादृत हो गए कि क्रेताओं ने संदाय रोक दिया है । प्रदायकर्ता ने क्रेताओं को एक सूचना भेजी और फिर क्रेताओं के विरुद्ध अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, नई दिल्ली के न्यायालय के समक्ष परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन एक परिवाद फाइल किया । संबंधित अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट ने अभिकथित अपराध का संज्ञान लिया और क्रेताओं को समन जारी किए । क्रेताओं ने समन जारी करने वाले आदेश को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 397 के अधीन पुनरीक्षण याचिका फाइल करके चुनौती दी । अपर सेशन न्यायाधीश ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् पुनरीक्षण याचिका मंजूर की और अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा जारी की गई आदेशिका को अभिखंडित कर दिया । प्रदायकर्ता ने अपर सेशन न्यायाधीश के आदेश को न्यायालय के समक्ष संहिता की धारा 482 के अधीन एक याचिका फाइल करके चुनौती दी । उच्च न्यायालय ने याचिका को मंजूर किया और अपर सेशन न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर दिया तथा क्रेताओं को आदेशिका जारी करने वाले अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के आदेश को प्रत्यावर्तित कर दिया । क्रेताओं ने उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 में आने वाली “किसी ऋण या अन्य दायित्व के उन्मोचन के लिए” अभिव्यक्ति का निर्वचन मामले के लिए महत्वपूर्ण और निश्चायक है । धारा 138 से संलग्न

स्पष्टीकरण में धारा 138 के प्रयोजन के लिए “ऋण या अन्य दायित्व” अभिव्यक्ति को स्पष्ट किया गया है। इस अभिव्यक्ति से कोई विधितः प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व अभिप्रेत है। यदि बैंक किसी ऋण या अन्य दायित्व के उन्मोचन में जारी किया गया है, तो धारा 138 में अनादृत बैंक को एक अपराध के रूप में माना गया है। स्पष्टीकरण से किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता है कि धारा 138 के अधीन अपराध को लाने के लिए बैंक लिखने की तारीख को अस्तित्वयुक्त विधितः प्रवर्तनीय कोई ऋण या अन्य दायित्व होना चाहिए। दूसरे शब्दों में धारा 138 के अधीन अपराध को लाने के लिए विद्यमान या भावी न्यायनिर्णीत दायित्व का होना अत्यावश्यक है। यदि माल क्रय करने के लिए अग्रिम संदाय के रूप में बैंक जारी किया जाता है और किसी कारणवश क्रय आदेश, इसके रद्दकरण या अन्यथा के कारण, अपने तर्कसंगत निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता है और सामग्री या माल, जिसके लिए क्रय आदेश दिया गया था, प्रदाय नहीं किया जाता है, तो न्यायालय की सुविचारित राय में, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि बैंक किसी विद्यमान ऋण या दायित्व के लिए लिखा गया था। बैंक द्वारा अग्रिम संदाय की प्रकृति के संदाय से यह उपदर्शित होता है कि बैंक लिखने के समय कोई विद्यमान दायित्व नहीं था। (पैरा 12 और 13)

दिल्ली उच्च न्यायालय का तर्काधार स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि वह सिविल दायित्व और परक्राम्य लिखत अधिनियम के अधीन आपराधिक दायित्व के बीच स्पष्ट विभेद को ध्यान में रखने में असफल रहा है। यदि कोई संविदा करने के समय संविदा की एक शर्त यह है कि क्रेता अग्रिम रूप से संदाय करेगा और उस शर्त का भंग किया जाता है, तब क्रेता को उस हानि की भरपाई करनी होगी जो विक्रेता को होगी किंतु इससे धारा 138 के अधीन आपराधिक दायित्व का सृजन नहीं होता है। धारा 138 के अधीन आपराधिक दायित्व लाने के लिए बैंक लिखने की तारीख को अस्तित्वयुक्त विधितः प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व होना चाहिए। यह न्यायालय दिल्ली उच्च न्यायालय के इस मत को स्वीकार नहीं कर सकता है कि ऐसी संविदा पर हस्ताक्षर करने के समय अग्रिम संदाय के निमित्त बैंक जारी किया जाना अस्तित्वयुक्त दायित्व के रूप में समझा जाना चाहिए और ऐसे बैंक का अनादरण परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध की कोटि में आता है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके, कि यदि आदेश प्रस्तुत करने और अग्रिम रकम देने के पश्चात् संदाय रोकने के निदेश जारी किए जाते हैं और आदेश रद्द किए

जाते हैं तो परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 को अधिनियमित करने का प्रयोजन विफल हो जाएगा, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 की परिधि से बाहर जाकर विचार किया है। यदि कोई चैक माल क्रय करने के लिए अग्रिम संदाय के रूप में जारी किया जाता है और किसी कारणवश क्रय आदेश या तो इसके रद्दकरण के कारण या अन्यथा अपने तर्कसंगत परिणाम पर नहीं पहुंचता है और प्रदायकर्ता द्वारा वह माल या वस्तुएं प्रदाय नहीं की जाती हैं जिसके लिए क्रय आदेश प्रस्तुत किया गया था, न्यायालय के सुविचारित मत में, यह नहीं कहा जा सकता है कि चैक किसी विद्यमान ऋण या दायित्व के लिए लिखा गया था। (पैरा 19)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

- [2008] (2008) 154 दिल्ली ला टाइम्स 579 :
मैसर्स मोज़ इंजीनियरिंग सिस्टम्स लिमिटेड
और अन्य बनाम मैसर्स ए. बी. शुगर्स लिमिटेड ; 10
- [2006] 2006 क्रिमिनल ला जर्नल 4330 (केरल) :
सप्लार्ई हाउस, जिसका प्रतिनिधित्व प्रबंध भागीदार
द्वारा किया गया बनाम उल्लास, प्रोपराइटर
ब्राइट एजेंसीज़ और एक अन्य ; 17, 20
- [2000] 2000 क्रिमिनल ला जर्नल 1988 (गुजरात) :
शंकू कंक््रीट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम
गुजरात राज्य और एक अन्य ; 15, 20
- [1997] 1997 क्रिमिनल ला जर्नल 1942 (आंध्र प्रदेश) :
मैसर्स स्वास्तिक कोएटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम
मैसर्स दीपक ब्रदर्स और अन्य ; 14, 20
- [1991] (1991) 1 सीटीसी 6 :
मैसर्स बालाजी सीफूड्स एक्सपोर्ट्स (इंडिया)
लिमिटेड और एक अन्य बनाम मैक इंडस्ट्रीज़
लिमिटेड । 15, 16, 20

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 830.

2009 के दांडिक प्रकीर्ण मामला सं. 244 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 27 अगस्त, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से

सर्वश्री एस. एन. भट्ट, एम. एल.
महाजन और गौरव महाजन

प्रत्यर्थियों की ओर से

सर्वश्री अशीम वाछेर और सुब्रमण्यम्
प्रसाद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. एम. लोढ़ा ने दिया ।

न्या. लोढ़ा – इजाजत दी जाती है ।

2. विशेष इजाजत लेकर की गई इस अपील में विचार के लिए जो एकमात्र प्रश्न उद्भूत होता है, यह है कि क्या अपीलार्थियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् “क्रेता” कहा गया है) द्वारा क्रय आदेशों की बाबत अग्रिम संदाय के रूप में जारी किए गए आगे की तारीख डाले हुए चैकों को वैध रूप से प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व के उन्मोचन के लिए माना जा सकता है और यदि माना जा सकता है, तो क्या ऐसे चैकों का अनादर परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (संक्षेप में “परक्राम्य लिखत अधिनियम”) की धारा 138 के अधीन अपराध की कोटि में आता है या नहीं । दिल्ली उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यह अपराध की कोटि में आता है ।

3. संक्षिप्त तथ्य ये हैं – क्रेताओं ने तारीख 19 फरवरी, 2007 और 26 फरवरी, 2007 को हवाई जहाज के कतिपय पूर्जों के प्रदाय के लिए प्रत्यर्थी सं. 1, मगनम एविएशन प्राइवेट लिमिटेड (जिसे इसमें इसके पश्चात् “प्रदायकर्ता” कहा गया है) को दो क्रय आदेश दिए । इन क्रय आदेशों की बाबत क्रेताओं ने, तारीख 15 मार्च, 2007 का 34,57,164/- रुपए की रकम का और तारीख 20 मार्च, 2007 का 15,91,820/- रुपए की रकम का, आगे की तारीख डाले हुए दो चैक भी जारी किए । उक्त चैक क्रय आदेशों के लिए अग्रिम संदाय के निमित्त जारी किए गए थे । संविदा के निबंधनों और शर्तों का एक निबंधन और शर्त यह थी कि प्रदायकर्ता को पूरी रकम अग्रिम दी जाएगी । प्रदायकर्ता का यह कहना है कि क्रेताओं द्वारा अग्रिम रकम इसलिए दी गई थी क्योंकि उन्हें पूर्जों विदेश से उपाप्त करने थे ।

4. जब इन चैकों को प्रस्तुत किया गया तो वे इस आधार पर अनादृत हो गए कि क्रेताओं ने संदाय रोक दिया है ।

5. यह विवादग्रस्त नहीं है कि प्रदायकर्ता को क्रेताओं से क्रय आदेशों को रद्द करने और दोनों चैक लौटाने के लिए अनुरोध करते हुए तारीख

22 मार्च, 2007 का पत्र प्राप्त हुआ था ।

6. प्रदायकर्ता ने तारीख 22 मार्च, 2007 के पत्र का उत्तर तारीख 23 मार्च, 2007 को भेजा और यह पूछा कि प्रदायकर्ता कब रकम लेने आए । उसके पश्चात्, प्रदायकर्ता ने तारीख 12 अप्रैल, 2007 को क्रेताओं को एक सूचना भेजी और फिर क्रेताओं के विरुद्ध अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट, नई दिल्ली के न्यायालय के समक्ष परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन एक परिवाद फाइल किया ।

7. संबंधित अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट ने तारीख 22 मई, 2007 को अभिकथित अपराध का संज्ञान लिया और क्रेताओं को समन जारी किए ।

8. क्रेताओं ने समन जारी करने वाले आदेश को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में “संहिता”) की धारा 397 के अधीन पुनरीक्षण याचिका फाइल करके चुनौती दी । अपर सेशन न्यायाधीश ने पक्षकारों को सुनने के पश्चात् तारीख 2 सितम्बर, 2008 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण याचिका मंजूर की और अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा जारी की गई आदेशिका को अभिखंडित कर दिया ।

9. प्रदायकर्ता ने अपर सेशन न्यायाधीश के आदेश को न्यायालय के समक्ष संहिता की धारा 482 के अधीन एक याचिका फाइल करके चुनौती दी । उच्च न्यायालय ने याचिका को मंजूर किया और अपर सेशन न्यायाधीश के आदेश को अपास्त कर दिया तथा क्रेताओं को आदेशिका जारी करने वाले अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट के आदेश को प्रत्यावर्तित किया ।

10. दिल्ली उच्च न्यायालय ने **मैसर्स मोज़ इंजीनियरिंग सिस्टम्स लिमिटेड और अन्य बनाम मैसर्स ए. बी. शुगर्स लिमिटेड**¹ वाले मामले में अपने पूर्ववर्ती विनिश्चय का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसी संविदा पर हस्ताक्षर करते समय चैक जारी करना एक दायित्व के लिए जारी किया गया माना जाना चाहिए, क्योंकि चैक में लिखी गई रकम चैक में उल्लिखित तारीख को उस व्यक्ति द्वारा संदेय है ।

11. परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 निम्नलिखित है :-

“138. खाते में अपर्याप्त निधियों, आदि के कारण कतिपय

¹ (2008) 154 दिल्ली ला टाइम्स 579.

चैक का अनादरण – जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए किसी बैंक के पास अपने द्वारा रखे गए खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी धनराशि के संदाय के लिए लिखा गया कोई चैक बैंक द्वारा संदाय किए बिना या तो इस कारण लौटा दिया जाता है कि उस खाते में जमा धनराशि उस चैक का आदरण करने के लिए अपर्याप्त है या वह उस रकम से अधिक है जिसका बैंक के साथ किए गए करार द्वारा उस खाते में से संदाय करने का ठहराव किया गया है, वहां ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है और वह, इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, चैक की रकम का दुगना तक हो सकेगा, या दोनों से दंडनीय होगा :

परन्तु इस धारा में अंतर्विष्ट कोई बात तब तक लागू नहीं होगी जब तक –

(क) वह चैक उसके लिखे जाने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर या उसकी विधिमान्यता की अवधि के भीतर, जो भी पूर्वतर हो, बैंक को प्रस्तुत न किया गया हो ;

(ख) चैक का पाने वाला या सम्यक् अनुक्रम में धारक चैक के लेखीवाल को, असंदत्त चैक के लौटाए जाने की बाबत बैंक से उसे सूचना की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर, लिखित में सूचना देकर उक्त धनराशि के संदाय के लिए मांग नहीं करता है ; और

(ग) ऐसे चैक का लेखीवाल, यथास्थिति, चैक के पाने वाले को या सम्यक् अनुक्रम में धारक को उक्त सूचना की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर उक्त धनराशि का संदाय करने में असफल रहता है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, “ऋण या दायित्व” से विधितः प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व अभिप्रेत है ।”

12. परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 में आने वाली “किसी ऋण या अन्य दायित्व के उन्मोचन के लिए” अभिव्यक्ति का निर्वचन मामले के लिए महत्वपूर्ण और निश्चायक है ।

13. धारा 138 से संलग्न स्पष्टीकरण में धारा 138 के प्रयोजन के लिए “ऋण या अन्य दायित्व” अभिव्यक्ति को स्पष्ट किया गया है। इस अभिव्यक्ति से कोई विधितः प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व अभिप्रेत है। यदि बैंक किसी ऋण या अन्य दायित्व के उन्मोचन में जारी किया गया है, तो धारा 138 में अनादृत बैंक को एक अपराध के रूप में माना गया है। स्पष्टीकरण से किसी प्रकार का संदेह नहीं रह जाता है कि धारा 138 के अधीन अपराध को लाने के लिए बैंक लिखने की तारीख को अस्तित्वयुक्त विधितः प्रवर्तनीय कोई ऋण या अन्य दायित्व होना चाहिए। दूसरे शब्दों में धारा 138 के अधीन अपराध को लाने के लिए विद्यमान या भावी न्यायनिर्णीत दायित्व का होना अत्यावश्यक है। यदि माल क्रय करने के लिए अग्रिम संदाय के रूप में बैंक जारी किया जाता है और किसी कारणवश क्रय आदेश, इसके रद्दकरण या अन्यथा के कारण, अपने तर्कसंगत निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता है और सामग्री या माल, जिसके लिए क्रय आदेश दिया गया था, प्रदाय नहीं किया जाता है, तो हमारी सुविचारित राय में, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि बैंक किसी विद्यमान ऋण या दायित्व के लिए लिखा गया था। बैंक द्वारा अग्रिम संदाय की प्रकृति के संदाय से यह उपदर्शित होता है कि बैंक लिखने के समय कोई विद्यमान दायित्व नहीं था।

14. **मैसर्स स्वास्तिक कोएटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम मैसर्स दीपक ब्रदर्स और अन्य¹** वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने धारा 138 के स्पष्टीकरण पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :-

“परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के स्पष्टीकरण से साफ तौर पर यह स्पष्ट होता है कि बैंक किसी प्रवर्तनीय दायित्व या ऋण से संबंधित होना चाहिए और क्योंकि बैंक जारी करने की तारीख को इस अर्थ में कोई विद्यमान दायित्व नहीं था कि संपत्ति का हक अभियुक्त को संक्रांत नहीं हुआ था चूंकि माल परिदत्त नहीं हुआ था.....।”

15. **शंकू कंक्रीट्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम गुजरात राज्य और एक अन्य²** वाले मामले में गुजरात उच्च न्यायालय ने परक्राम्य लिखत

¹ 1997 क्रिमिनल ला जर्नल 1942 (आंध्र प्रदेश).

² 2000 क्रिमिनल ला जर्नल 1988 (गुजरात).

अधिनियम की धारा 138 पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 को लागू करने के लिए उस तारीख को अस्तित्वयुक्त दायित्व या ऋण होना चाहिए जब चैक परिदत्त किया गया था। मात्र इस तथ्य से मामला परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 की परिधि से बाहर चला जाएगा कि संदाय किसी भावी तारीख को करने के लिए सहमति हुई थी और चैकों के परिदान की तारीख को कोई ऋण या दायित्व मौजूद नहीं था। गुजरात उच्च न्यायालय ने ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए **मैसर्स बालाजी सीफूड्स एक्सपोर्ट्स (इंडिया) लिमिटेड और एक अन्य बनाम मैक इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड¹** वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के विनिश्चय का अनुसरण किया।

16. **बालाजी सीफूड्स** (उपरोक्त) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :-

“परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 से यह स्पष्ट होता है कि जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए किसी बैंक के पास अपने द्वारा रखे गए खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी धनराशि के संदाय के लिए लिखा गया कोई चैक बैंक द्वारा संदाय किए बिना या तो इस कारण लौटा दिया जाता है कि उस खाते में जमा धनराशि उस चैक का आदरण करने के लिए अपर्याप्त है या वह उस रकम से अधिक है जिसका बैंक के साथ किए गए करार द्वारा उस खाते में से संदाय करने का ठहराव किया गया है, वहां ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अधिनियम की धारा के अधीन अपराध किया है। स्पष्टीकरण में यह उपबंधित है कि इस धारा के प्रयोजनों के लिए, “ऋण या दायित्व” से विधितः प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व अभिप्रेत है।”

17. **सप्लाई हाउस, जिसका प्रतिनिधित्व प्रबंध भागीदार द्वारा किया गया बनाम उल्लास, प्रोपराइटर ब्राइट एजेंसीज़ और एक अन्य²** वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 पर विचार करना था। उस मामले में, अभियुक्त द्वारा माल के प्रदाय के लिए आदेश के साथ-साथ आगे की तारीख लिखा हुआ चैक जारी किया

¹ (1991) 1 सीटीसी 6.

² 2006 क्रिमिनल ला जर्नल 4330 (केरल).

गया था । परिवादी द्वारा माल का प्रदाय नहीं किया गया । अभियुक्त ने पहले तो बैंक को चैक के विरुद्ध संदाय रोकने का निदेश दिया और फिर परिवादी को चैक प्रस्तुत न करने का अनुरोध किया क्योंकि उसने माल का प्रदाय नहीं किया था । चैक अनादृत हो गया । केरल उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया, “ प्रदर्श पी-1 चैक को ऐसा चैक नहीं कहा जा सकता है जो उसमें लिखी गई रकम के दायित्व के उन्मोचन में जारी किया गया हो, वस्तुतः, चैक, जैसा कि प्रदर्श डी-1 से प्रकट है, 28 मिक्सियों की कीमत की रकम के रूप में जारी किया गया था जिनका परिवादी ने प्रदाय नहीं किया था।”

18. आक्षेपित आदेश में दिल्ली उच्च न्यायालय का तर्काधार निम्नलिखित है :-

“8. यदि संविदा करने के समय संविदा की एक शर्त यह है कि क्रेता को रकम का संदाय अग्रिम रूप से करना होगा, तब अग्रिम संदाय करना क्रेता का दायित्व है । वस्तुओं के विक्रेता ने यदि उसे अग्रिम संदाय नहीं किया जाता तो संविदा नहीं की होती । विक्रेता द्वारा अग्रिम संदाय की शर्त सामान्यतः इस कारण से रखी जाती है कि क्रेता बाद में मुकर न जाए और उसके लिए विनिर्मित किए गए या उपाप्त किए गए माल को लेने से इनकार न कर दे । माल की कीमत का अग्रिम रूप से संदाय करना संविदा की एक शर्त होने के कारण क्रेता का दायित्व बन जाता है । क्रेता जिसने चैक जारी किया था, उसे संदाय या तो ड्राफ्ट द्वारा या नकद करने के लिए कहा जा सकता था । चूंकि चैक देना संदाय के अन्य प्रकार की तरह संदाय का एक प्रकार है और इसे सामान्यतः संदाय के रूप में स्वीकार किया जाता है । ऐसी संविदा पर हस्ताक्षर करने के समय चैक जारी करना एक दायित्व के विरुद्ध जारी किया गया समझा जाना चाहिए क्योंकि चैक में लिखी गई रकम उस व्यक्ति द्वारा चैक में वर्णित तारीख को संदेय होती है । जहां क्रेता या विनिर्माता, जारी किए गए चैक के आधार पर, माल का विनिर्माण करता है या माल को बाहर से उपाप्त करता है, और संविदा के आधार पर कार्रवाई की गई है, तो जिस क्षण विक्रेता या विनिर्माता संविदा के आधार पर कार्रवाई करता है या माल को उपाप्त करता है उसी क्षण क्रेता दायित्वाधीन हो जाता है । यदि किसी कारणवश विक्रेता माल का विनिर्माण करने या माल उपाप्त करने में असफल रहता है, तो केवल उन्हीं परिस्थितियों में

कोई दायित्व सृजित नहीं होता है। तथापि, जहां विक्रेता द्वारा क्रेता के लिए माल या कच्ची सामग्री को उपाप्त कर लिया गया है या विक्रेता द्वारा माल विनिर्मित कर दिया गया है, वहां यह नहीं कहा जा सकता है कि चैक दायित्व के विरुद्ध जारी नहीं किए गए थे। मेरा यह विचार है कि यदि दायित्व का अर्थान्वयन इस रीति में नहीं किया जाता है, तो चैक के अनादरण को एक अपराध के रूप में बनाने का प्रयोजन ही विफल हो जाता है। परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 को निर्मित या अधिनियमित करने का प्रयोजन वाणिज्यिक संव्यवहारों के स्थिरीकरण में चैक की स्वीकार्यता में वृद्धि करना, वाणिज्यिक संव्यवहारों में भरोसा पैदा करना और चैक को एक विश्वसनीय परक्राम्य लिखत के रूप में बनाना तथा यह देखना कि कारबार संव्यवहारों के चैकों का अनादरण न हो। परक्राम्य लिखत अधिनियम का प्रयोजन परक्राम्य लिखतों से संबंधित विधि के नियमों का एक सुव्यवस्थित विवरण बनाना और यह सुनिश्चित करना कि वाणिज्यिक लिखतों को एक व्यक्ति से दूसरे को संक्रांत होने वाले माल के समतुल्य समझा जाए। यदि आदेश प्रस्तुत करने और अग्रिम रकम देने के पश्चात् संदाय रोक देने के निदेश जारी किए जाते हैं और माल की कीमत को लेकर आदेश रद्द किए जाते हैं, तो इससे अधिनियम का एकमात्र प्रयोजन विफल हो जाएगा, जैसा कि इस मामले में किया गया है।”

19. दिल्ली उच्च न्यायालय का उपरोक्त तर्काधार स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि वह सिविल दायित्व और परक्राम्य लिखत अधिनियम के अधीन आपराधिक दायित्व के बीच स्पष्ट विभेद को ध्यान में रखने में असफल रहा है। यदि कोई संविदा करने के समय संविदा की एक शर्त यह है कि क्रेता अग्रिम रूप से संदाय करेगा और उस शर्त का भंग किया जाता है, तब क्रेता को उस हानि की भरपाई करनी होगी जो विक्रेता को होगी किंतु इससे धारा 138 के अधीन आपराधिक दायित्व का सृजन नहीं होता है। धारा 138 के अधीन आपराधिक दायित्व लाने के लिए चैक लिखने की तारीख को अस्तित्वयुक्त विधितः प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व होना चाहिए। हम दिल्ली उच्च न्यायालय के इस मत को स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि ऐसी संविदा पर हस्ताक्षर करने के समय अग्रिम संदाय के निमित्त चैक जारी किया जाना अस्तित्वयुक्त दायित्व के रूप में समझा जाना चाहिए और ऐसे चैक का अनादरण परक्राम्य लिखत

अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध की कोटि में आता है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके, कि यदि आदेश प्रस्तुत करने और अग्रिम रकम देने के पश्चात् संदाय रोकने के निदेश जारी किए जाते हैं और आदेश रद्द किए जाते हैं तो परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 को अधिनियमित करने का प्रयोजन विफल हो जाएगा, परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 की परिधि से बाहर जाकर विचार किया गया है। जैसी कि हमने ऊपर चर्चा की है, यदि कोई बैंक माल क्रय करने के लिए अग्रिम संदाय के रूप में जारी किया जाता है और किसी कारणवश क्रय आदेश या तो इसके रद्दकरण के कारण या अन्यथा अपने तर्कसंगत परिणाम पर नहीं पहुंचता है और प्रदायकर्ता द्वारा वह माल या वस्तुएं प्रदाय नहीं की जाती हैं जिसके लिए क्रय आदेश प्रस्तुत किया गया था, हमारे सुविचारित मत में, यह नहीं कहा जा सकता है कि बैंक किसी विद्यमान ऋण या दायित्व के लिए लिखा गया था।

20. हमारी राय में, **स्वास्तिक कोएटर्स** (उपरोक्त) वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा, **बालाजी सीफूड्स** (उपरोक्त) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा, **शंकू कंक्रीट्स** (उपरोक्त) वाले मामले में गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा और **उल्लास** (उपरोक्त) वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण सही है और परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 की स्कीम के अनुरूप है।

21. दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत है और स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

22. तदनुसार, यह दांडिक अपील मंजूर की जाती है और दिल्ली उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है तथा सेशन न्यायाधीश का आदेश प्रत्यावर्तित किया जाता है।

अपील मंजूर की गई।

जस.

संसद् के अधिनियम
ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008
(2009 का अधिनियम संख्यांक 4)

[7 जनवरी, 2009]

नागरिकों की उनके निकटतम स्थान पर न्याय तक पहुंच उपलब्ध कराने के प्रयोजनों के लिए ग्रामीण स्तर पर ग्राम न्यायालयों की स्थापना करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई नागरिक सामाजिक, आर्थिक या अन्य निःशक्तता के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित तो नहीं हो रहा है, और उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए
अधिनियम

भारत गणराज्य के उनसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

अध्याय 1
प्रारंभिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य, नागालैंड राज्य, अरुणाचल प्रदेश राज्य, सिक्किम राज्य और जनजातीय क्षेत्रों के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा में, “जनजातीय क्षेत्रों” पद से संविधान की छठी अनुसूची के पैरा 20 के नीचे सारणी के भाग 1, भाग 2, भाग 2क और भाग 3 में क्रमशः असम राज्य, मेघालय राज्य, त्रिपुरा राज्य और मिजोरम राज्य के विनिर्दिष्ट क्षेत्र अभिप्रेत हैं ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) “ग्राम न्यायालय” से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ख) “ग्राम पंचायत” से संविधान के अनुच्छेद 243ख के अधीन ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ग्राम स्तर पर गठित स्वायत्त शासन की कोई संस्था (किसी भी नाम से ज्ञात हो) अभिप्रेत है ;

(ग) “उच्च न्यायालय” से अभिप्रेत है, —

(i) किसी राज्य के संबंध में उस राज्य का उच्च न्यायालय ;

(ii) उस संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, जिसके लिए किसी राज्य के उच्च न्यायालय की अधिकारिता विधि द्वारा विस्तारित की गई है, वह उच्च न्यायालय ;

(iii) किसी अन्य संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, उस राज्यक्षेत्र के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय से भिन्न, दांडिक अपील का सर्वोच्च न्यायालय ;

(घ) “अधिसूचना” से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है और “अधिसूचित” पद का तदनुसार अर्थ लगाया जाएगा ;

(ङ) “न्यायाधिकारी” से धारा 5 के अधीन नियुक्त ग्राम न्यायालय का पीठासीन अधिकारी अभिप्रेत है ;

(च) “मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत” से संविधान के भाग 9 के उपबंधों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों के लिए संविधान के अनुच्छेद 243ख के अधीन मध्यवर्ती स्तर पर गठित स्वायत्त शासन की संस्था (किसी भी नाम से ज्ञात हो) अभिप्रेत है ;

(छ) “विहित” से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ज) “अनुसूची” से इस अधिनियम से संलग्न अनुसूची अभिप्रेत है ;

(झ) संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में “राज्य सरकार” से संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन नियुक्त उसका प्रशासक अभिप्रेत है ;

(ञ) उन शब्दों और पदों के जो, इसमें प्रयुक्त हैं, और परिभाषित नहीं हैं किंतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में परिभाषित हैं वही

अर्थ होंगे, जो उन संहिताओं में हैं ।

अध्याय 2 ग्राम न्यायालय

3. ग्राम न्यायालयों की स्थापना – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम द्वारा ग्राम न्यायालयों को प्रदत्त अधिकारिता और शक्तियों का प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात्, अधिसूचना द्वारा, जिले में मध्यवर्ती स्तर पर प्रत्येक पंचायत या मध्यवर्ती स्तर पर निकटवर्ती पंचायतों के समूह के लिए या जहां किसी राज्य में मध्यवर्ती स्तर पर कोई पंचायत नहीं है वहां निकटवर्ती ग्राम पंचायतों के समूह के लिए एक या अधिक ग्राम न्यायालय स्थापित कर सकेगी ।

(2) राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात् अधिसूचना द्वारा, ऐसे क्षेत्र की स्थानीय सीमाएं विनिर्दिष्ट करेगी, जिस पर ग्राम न्यायालय की अधिकारिता विस्तारित की जाएगी और किसी भी समय, ऐसी सीमाओं को बढ़ा सकेगी, कम कर सकेगी या परिवर्तित कर सकेगी ।

(3) उपधारा (1) के अधीन स्थापित ग्राम न्यायालय तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन स्थापित न्यायालयों के अतिरिक्त होंगे ।

4. ग्राम न्यायालय का मुख्यालय – प्रत्येक ग्राम न्यायालय का मुख्यालय उस मध्यवर्ती पंचायत के मुख्यालय पर, जिसमें ग्राम न्यायालय स्थापित है या ऐसे अन्य स्थान पर अवस्थित होगा, जो राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किया जाए ।

5. न्यायाधिकारी की नियुक्ति – राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के परामर्श से, प्रत्येक ग्राम न्यायालय के लिए एक न्यायाधिकारी की नियुक्ति करेगी ।

6. न्यायाधिकारी की नियुक्ति के लिए अर्हताएं – (1) कोई व्यक्ति न्यायाधिकारी के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए तभी अर्हित होगा, जब वह प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए पात्र हो ।

(2) न्यायाधिकारी की नियुक्ति करते समय, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, स्त्रियों तथा ऐसे अन्य वर्गों या समुदायों के सदस्यों को प्रतिनिधित्व दिया जाएगा, जो राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

7. न्यायाधिकारी का वेतन, भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें – न्यायाधिकारी को संदेय वेतन और अन्य भत्ते तथा उसकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को लागू हों ।

8. न्यायाधिकारी का उन कार्यवाहियों में पीठासीन न होना, जिनमें वह हितबद्ध है – न्यायाधिकारी ग्राम न्यायालय की उन कार्यवाहियों में पीठासीन नहीं होगा जिनमें उसका कोई हित है या वह विवाद की विषय-वस्तु में अन्यथा अंतर्वलित है या उसका ऐसी कार्यवाहियों के किसी पक्षकार से संबंध है और ऐसे मामले में न्यायाधिकारी मामले को, किसी अन्य न्यायाधिकारी को अंतरित किए जाने के लिए, यथास्थिति, जिला न्यायालय या सेशन न्यायालय को भेजेगा ।

9. न्यायाधिकारी का ग्रामों में चल न्यायालय लगाना और कार्यवाहियां करना – (1) न्यायाधिकारी अपनी अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले ग्रामों का आवधिक रूप से दौरा करेगा और ऐसे किसी स्थान पर विचारण या कार्यवाहियां करेगा, जिसे वह उस स्थान के निकट समझता है जहां पक्षकार सामान्यतया निवास करते हैं या जहां संपूर्ण वाद हेतुक या उसका कोई भाग उद्भूत हुआ था :

परन्तु जहां ग्राम न्यायालय अपने मुख्यालय से बाहर चल न्यायालय लगाने का विनिश्चय करता है वहां वह उस तारीख और स्थान के बारे में, जहां वह चल न्यायालय लगाने का प्रस्ताव करता है, व्यापक प्रचार करेगा ।

(2) राज्य सरकार, ग्राम न्यायालय को सभी सुविधाएं प्रदान करेगी जिनके अंतर्गत उसके मुख्यालय से बाहर विचारण या कार्यवाहियां करते समय न्यायाधिकारी द्वारा चल न्यायालय लगाने के लिए वाहनों की व्यवस्था भी है ।

10. ग्राम न्यायालय की मुद्रा – इस अधिनियम के अधीन स्थापित प्रत्येक ग्राम न्यायालय, न्यायालय की मुद्रा का उपयोग ऐसे आकार और विमाओं में करेगा जो उच्च न्यायालय द्वारा राज्य सरकार के अनुमोदन से विहित की जाएं ।

अध्याय 3

ग्राम न्यायालय की अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार

11. ग्राम न्यायालय की अधिकारिता – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम

न्यायालय सिविल और दांडिक, दोनों अधिकारिता का प्रयोग इस अधिनियम के अधीन उपबंधित रीति में और सीमा तक करेगा ।

12. दांडिक अधिकारिता – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय किसी परिवाद पर या पुलिस रिपोर्ट पर किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा और –

(क) पहली अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट सभी अपराधों का विचारण करेगा ; और

(ख) उस अनुसूची के भाग 2 में सम्मिलित अधिनियमितियों के अधीन विनिर्दिष्ट सभी अपराधों का विचारण करेगा और अनुतोष, यदि कोई हो, प्रदान करेगा ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ग्राम न्यायालय उन राज्य अधिनियमों के अधीन ऐसे सभी अपराधों का भी विचारण करेगा या ऐसा अनुतोष प्रदान करेगा, जो धारा 14 की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

13. सिविल अधिकारिता – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी और उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय की निम्नलिखित अधिकारिता होगी, –

(क) दूसरी अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट वर्गों के विवादों के अधीन आने वाले सिविल प्रकृति के सभी वादों या कार्यवाहियों का विचारण करना ;

(ख) उन सभी वर्गों के दावों और विवादों का विचारण करना, जो धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा और उक्त धारा की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

(2) ग्राम न्यायालय की धनीय सीमाएं वे होंगी, जो उच्च न्यायालय द्वारा, राज्य सरकार के परामर्श से समय-समय पर अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट की जाएं ।

14. अनुसूचियों का संशोधन करने की शक्ति – (1) जहां केन्द्रीय

सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, वहां वह अधिसूचना द्वारा, यथास्थिति, पहली अनुसूची के भाग 1 या भाग 2 अथवा दूसरी अनुसूची के भाग 2 में किसी मद को जोड़ सकेगी या उससे लोप कर सकेगी और वह तदनुसार संशोधित की गई समझी जाएगी।

(2) उपधारा (1) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी।

(3) यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह उच्च न्यायालय के परामर्श से अधिसूचना द्वारा, पहली अनुसूची के भाग 3 या दूसरी अनुसूची के भाग 3 में किसी मद को जोड़ सकेगी या उससे किसी ऐसी मद का लोप कर सकेगी, जिसकी बाबत राज्य विधान-मंडल विधियां बनाने के लिए सक्षम है और तदुपरि, यथास्थिति, पहली अनुसूची या दूसरी अनुसूची तदनुसार संशोधित की गई समझी जाएगी।

(4) उपधारा (3) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी।

15. परिसीमा – (1) परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) के उपबंध ग्राम न्यायालय द्वारा विचारणीय वादों को लागू होंगे।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 36 के उपबंध ग्राम न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराधों के संबंध में लागू होंगे।

16. लंबित कार्यवाहियों का अंतरण – (1) यथास्थिति, जिला न्यायालय या सेशन न्यायालय ऐसी तारीख से, जो उच्च न्यायालय द्वारा अधिसूचित की जाए, अपने अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष लंबित सभी सिविल या दांडिक मामलों को, ऐसे मामलों का विचारण या निपटारा करने के लिए सक्षम ग्राम न्यायालय को अंतरित कर सकेगा।

(2) ग्राम न्यायालय अपने विवेकानुसार उन मामलों का या तो पुनःविचारण कर सकेगा या उन पर उस प्रक्रम से आगे कार्यवाही कर सकेगा, जिस पर वे उसे अंतरित किए गए थे।

17. अनुसचिवीय अधिकारियों के कर्तव्य – (1) राज्य सरकार, ग्राम न्यायालय को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने के लिए अपेक्षित अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की प्रकृति और प्रवर्गों का अवधारण करेगी

और ग्राम न्यायालय को उतने अधिकारी और अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराएगी, जितने वह ठीक समझे ।

(2) ग्राम न्यायालय के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(3) ग्राम न्यायालय के अधिकारी और अन्य कर्मचारी ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे जो, समय-समय पर, न्यायाधिकारी द्वारा उन्हें समनुदेशित किए जाएं ।

अध्याय 4

दांडिक मामलों में प्रक्रिया

18. दांडिक विचारण में अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव – इस अधिनियम के उपबंध, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे, किंतु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय संहिता के उपबंध, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू होंगे और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय को प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय समझा जाएगा ।

19. ग्राम न्यायालय द्वारा संक्षिप्त विचारण प्रक्रिया का अपनाया जाना –

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 260 की उपधारा (1) या धारा 262 की उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय अपराधों का विचारण उक्त संहिता के अध्याय 21 में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार संक्षिप्त रूप में करेगा और उक्त संहिता की धारा 262 की उपधारा (1) तथा धारा 263 से धारा 265 के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसे विचारण को लागू होंगे ।

(2) जब संक्षिप्त विचारण के दौरान न्यायाधिकारी को यह प्रतीत हो कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि उसका संक्षिप्त विचारण करना अवांछनीय है तो न्यायाधिकारी ऐसे किसी साक्षी को पुनः बुलाएगा, जिसकी परीक्षा हो चुकी हो और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन उपबंधित रीति में मामले की पुनः सुनवाई के लिए अग्रसर होगा ।

20. ग्राम न्यायालय के समक्ष सौदा अभिवाक् – अपराध में अभियुक्त

व्यक्ति उस ग्राम न्यायालय में, जिसमें ऐसे अपराध का विचारण लंबित है, सौदा अभिवाक् के लिए आवेदन फाइल कर सकेगा और ग्राम न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 21क के उपबंधों के अनुसार मामले का निपटारा करेगा ।

21. ग्राम न्यायालयों में मामलों का संचालन और पक्षकारों को विधिक सहायता – (1) सरकार की ओर से ग्राम न्यायालय में दांडिक मामलों का संचालन करने के प्रयोजन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 25 के उपबंध लागू होंगे ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय के समक्ष दांडिक कार्यवाही में परिवादी अभियोजन के मामले को प्रस्तुत करने के लिए ग्राम न्यायालय की इजाजत से अपने खर्चे पर अपनी पसंद के किसी अधिवक्ता को नियुक्त कर सकेगा ।

(3) विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) की धारा 6 के अधीन गठित राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण अधिवक्ताओं का एक पैनल तैयार करेगा और उनमें से कम-से-कम दो को प्रत्येक ग्राम न्यायालय के साथ लगाए जाने के लिए समनुदेशित करेगा जिससे कि ग्राम न्यायालय द्वारा उनकी सेवाएं अधिवक्ता की नियुक्ति करने में असमर्थ रहने वाले अभियुक्त को उपलब्ध कराई जा सकें ।

22. निर्णय का सुनाया जाना – (1) प्रत्येक विचारण में निर्णय, न्यायाधिकारी द्वारा विचारण के समाप्त होने के ठीक पश्चात् या पन्द्रह दिन से अनधिक ऐसे किसी पश्चात्वर्ती समय पर, जिसकी सूचना पक्षकारों को दी जाएगी, खुले न्यायालय में सुनाया जाएगा ।

(2) ग्राम न्यायालय अपने निर्णय की एक प्रति दोनों पक्षकारों को तत्काल निःशुल्क प्रदान करेगा ।

अध्याय 5

सिविल मामलों में प्रक्रिया

23. सिविल कार्यवाहियों में अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव – इस अधिनियम के उपबंध, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे, किंतु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, संहिता के उपबंध, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, ग्राम

न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय को सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

24. सिविल विवादों में विशेष प्रक्रिया – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक वाद, दावा या विवाद ग्राम न्यायालय में ऐसे प्ररूप में, ऐसी रीति में और एक सौ रुपए से अनधिक की ऐसी फीस के साथ, जो उच्च न्यायालय द्वारा, समय-समय पर राज्य सरकार के परामर्श से, विहित की जाए, आवेदन करके संस्थित किया जाएगा ।

(2) जहां कोई वाद, दावा या विवाद सम्यक् रूप से संस्थित किया गया है, वहां ग्राम न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन की प्रति के साथ विरोधी पक्षकार को ऐसी तारीख तक, जो समनों में विनिर्दिष्ट की जाए, हाजिर होने और दावे का उत्तर देने के लिए समन जारी किए जाएंगे और उनकी तामील ऐसी रीति में की जाएगी जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जाए ।

(3) विरोधी पक्षकार द्वारा अपना लिखित कथन फाइल कर दिए जाने के पश्चात्, ग्राम न्यायालय सुनवाई के लिए तारीख नियत करेगा और सभी पक्षकारों को व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से हाजिर होने की सूचना देगा ।

(4) सुनवाई के लिए नियत तारीख को ग्राम न्यायालय दोनों पक्षकारों की उनके अपने-अपने प्रतिविरोधों के संबंध में सुनवाई करेगा और जहां विवाद में कोई साक्ष्य अभिलिखित करना अपेक्षित नहीं है वहां निर्णय सुनाएगा और ऐसे मामले में जहां साक्ष्य अभिलिखित करना अपेक्षित है वहां ग्राम न्यायालय आगे कार्यवाही करेगा ।

(5) ग्राम न्यायालय को निम्नलिखित की शक्ति भी होगी,—

(क) व्यतिक्रम के लिए किसी मामले को खारिज करना या एकपक्षीय कार्यवाही करना ; और

(ख) व्यतिक्रम के लिए खारिजी के ऐसे किसी आदेश या मामले की एकपक्षीय सुनवाई के लिए उसके द्वारा पारित किसी आदेश को अपास्त करना ।

(6) किसी ऐसे आनुषंगिक विषय के संबंध में, जो कार्यवाहियों के दौरान उत्पन्न हो, ग्राम न्यायालय ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो वह न्याय के

हित में न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे ।

(7) कार्यवाहियां, जहां तक व्यवहार्य हों, न्याय के हितों से संगत होंगी और सुनवाई दिन-प्रतिदिन के आधार पर उसके निष्कर्ष तक जारी रहेगी, जब तक कि ग्राम न्यायालय ऐसे कारणों से, जिन्हें लेखबद्ध किया जाएगा, सुनवाई को अगले दिन से परे स्थगित करना आवश्यक नहीं पाता ।

(8) ग्राम न्यायालय उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन का निपटारा उसके संस्थित किए जाने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर करेगा ।

(9) प्रत्येक वाद, दावे या विवाद में निर्णय ग्राम न्यायालय द्वारा सुनवाई के समाप्त होने के ठीक पश्चात् या पन्द्रह दिन से अनधिक ऐसे किसी पश्चात्वर्ती समय पर, जिसकी सूचना पक्षकारों को दी जाएगी, खुले न्यायालय में सुनाया जाएगा ।

(10) निर्णय में मामले का संक्षिप्त विवरण, अवधारण के लिए प्रश्न, उस पर विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय के कारण अंतर्विष्ट होंगे ।

(11) निर्णय की एक प्रति दोनों पक्षकारों को निर्णय सुनाए जाने की तारीख से तीन दिन के भीतर निःशुल्क परिदान की जाएगी ।

25. ग्राम न्यायालय की डिक्रियों और आदेशों का निष्पादन – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एक डिक्री समझा जाएगा और उसका निष्पादन ग्राम न्यायालय द्वारा सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में किया जाएगा और इस प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय को सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी ।

(2) ग्राम न्यायालय, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में यथा उपबंधित किसी डिक्री के निष्पादन के संबंध में प्रक्रिया से आबद्ध नहीं होगा और वह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से मार्गदर्शित होगा ।

(3) डिक्री का निष्पादन या तो उस ग्राम न्यायालय द्वारा, जिसने उसे पारित किया है या ऐसे किसी अन्य ग्राम न्यायालय द्वारा, जिसे निष्पादन के लिए वह भेजी गई है, किया जा सकेगा ।

26. सिविल विवादों के सुलह और समझौते के लिए प्रयास करने का ग्राम न्यायालय का कर्तव्य – (1) प्रत्येक वाद या कार्यवाही में ग्राम

न्यायालय द्वारा प्रथम अवसर पर यह प्रयास किया जाएगा कि जहां मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत ऐसा करना संभव हो, वहां वह वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु के संबंध में किसी समझौते पर पहुंचने में पक्षकारों की सहायता करे, उन्हें मनाए और उनमें सुलह कराए और इस प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जाए ।

(2) जहां किसी वाद या कार्यवाही में किसी प्रक्रम पर ग्राम न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच समझौते की युक्तियुक्त संभावना है वहां ग्राम न्यायालय कार्यवाहियों को ऐसी अवधि के लिए स्थगित कर सकेगा जिसे वह ऐसा समझौता करने का प्रयास करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए ठीक समझे ।

(3) जहां उपधारा (2) के अधीन किसी कार्यवाही को स्थगित किया जाता है वहां ग्राम न्यायालय, अपने विवेकानुसार, पक्षकारों के बीच समझौता कराने के लिए मामले को एक या अधिक सुलहकारों को निर्देशित कर सकेगा ।

(4) उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त शक्ति कार्यवाहियों को स्थगित करने की ग्राम न्यायालय की किसी अन्य शक्ति के अतिरिक्त होगी, न कि उसके अल्पीकरण में ।

27. सुलहकारों की नियुक्ति – (1) धारा 26 के प्रयोजनों के लिए, जिला न्यायालय, जिला मजिस्ट्रेट के परामर्श से, सुलहकारों के रूप में नियुक्ति के लिए ग्राम स्तर पर सत्यनिष्ठा रखने वाले ऐसे सामाजिक कार्यकर्ताओं के नामों का एक पैनल तैयार करेगा, जिनके पास ऐसी अर्हताएं और अनुभव हों, जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित किए जाएं ।

(2) सुलहकारों को संदेय बैठक फीस और अन्य भत्ते तथा उनके नियोजन के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

28. सिविल विवादों का अंतरण – अधिकारिता रखने वाला जिला न्यायालय, किसी पक्षकार द्वारा किए गए आवेदन पर या जब किसी एक ग्राम न्यायालय के पास काफी मामले लंबित हों या जब कभी वह न्याय के हित में ऐसा आवश्यक समझे, किसी ग्राम न्यायालय के समक्ष लंबित किसी मामले को अपनी अधिकारिता के भीतर किसी अन्य ग्राम न्यायालय को अंतरित कर सकेगा ।

अध्याय 6 साधारणतः प्रक्रिया

29. कार्यवाहियों का राज्य की राजभाषा में होना – ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां और उसका निर्णय, जहां तक व्यवहार्य हो, अंग्रेजी भाषा से भिन्न राज्य की राजभाषाओं में से किसी एक में होंगे ।

30. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का लागू होना – ग्राम न्यायालय साक्ष्य के रूप में ऐसी किसी रिपोर्ट, कथन, दस्तावेज, सूचना या विषय को ग्रहण कर सकेगा जो, उसकी राय में, किसी विवाद को प्रभावी रूप से निपटाने में उसकी सहायता करता हो, चाहे वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) के अधीन अन्यथा सुसंगत या ग्राह्य हो या नहीं ।

31. मौखिक साक्ष्य का लेखबद्ध किया जाना – ग्राम न्यायालय के समक्ष वादों या कार्यवाहियों में साक्षियों के साक्ष्य को विस्तार से लेखबद्ध करना आवश्यक नहीं होगा, किंतु न्यायाधिकारी, जैसे ही प्रत्येक साक्षी की परीक्षा अग्रसर होती है, साक्षी द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य के सार का ज्ञापन लेखबद्ध करेगा या लेखबद्ध कराएगा और ऐसे ज्ञापन पर साक्षी और न्यायाधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे तथा वह अभिलेख का भाग बनेगा ।

32. औपचारिक प्रकृति के साक्ष्य का शपथ-पत्र पर होना – (1) किसी व्यक्ति का साक्ष्य, जहां ऐसा साक्ष्य औपचारिक प्रकृति का है, शपथ-पत्र द्वारा दिया जा सकेगा और सभी न्यायसंगत अपवादों के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के समक्ष किसी वाद या कार्यवाही में साक्ष्य में पढ़ा जा सकेगा ।

(2) ग्राम न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, वाद या कार्यवाही में किसी पक्षकार के आवेदन पर ऐसे किसी व्यक्ति को समन कर सकेगा और उसके शपथ-पत्र में अंतर्विष्ट तथ्यों के बारे में उसकी परीक्षा करेगा ।

अध्याय 7 अपीलें

33. दंडिक मामलों में अपील – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध कोई अपील इसमें यथा उपबंधित के सिवाय नहीं होगी ।

(2) कोई अपील उस दशा में नहीं होगी जहां, –

(क) अभियुक्त व्यक्ति ने दोषी होने का अभिवाक् किया है और उसे उस अभिवाक् पर दोषसिद्ध किया गया है ;

(ख) ग्राम न्यायालय ने केवल एक हजार रुपए से अनधिक के जुर्माने का दंडादेश पारित किया है ।

(3) उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के किसी अन्य निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध अपील सेशन न्यायालय को होगी ।

(4) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील ग्राम न्यायालय के निर्णय, दंडादेश या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर होगी :

परंतु यदि सेशन न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की उक्त अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था तो वह उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

(5) उपधारा (3) के अधीन की गई अपील की सेशन न्यायालय द्वारा सुनवाई और ऐसी अपील का निपटारा उसके फाइल किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किया जाएगा ।

(6) सेशन न्यायालय, अपील के निपटारे के लंबित रहने के दौरान, उस दंडादेश या आदेश के निलंबन का निदेश दे सकेगा, जिसके विरुद्ध अपील की गई है ।

(7) उपधारा (5) के अधीन सेशन न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा और सेशन न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध न्यायिक उपचारों का उपभोग करने से नहीं रोकेगी ।

34. सिविल मामलों में अपील – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी और उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के प्रत्येक निर्णय या ऐसे आदेश से, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, अपील जिला न्यायालय को होगी ।

(2) ग्राम न्यायालय द्वारा पारित किसी निर्णय या आदेश के विरुद्ध कोई अपील, –

(क) पक्षकारों की सहमति से नहीं होगी ;

(ख) जहां किसी वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु की रकम या मूल्य एक हजार रुपए से अधिक नहीं है, वहां नहीं होगी ;

(ग) जहां ऐसे वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु की रकम या मूल्य पांच हजार रुपए से अधिक नहीं है, वहां विधि के किसी प्रश्न के सिवाय नहीं होगी ।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील ग्राम न्यायालय के निर्णय या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर की जाएगी :

परंतु यदि जिला न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की उक्त अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था तो वह उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन की गई अपील की जिला न्यायालय द्वारा सुनवाई और ऐसी अपील का निपटारा उसके फाइल किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किया जाएगा ।

(5) जिला न्यायालय, अपील के निपटारे के लंबित रहने के दौरान उस निर्णय या आदेश के निष्पादन पर रोक लगा सकेगा, जिसके विरुद्ध अपील की गई है ।

(6) उपधारा (4) के अधीन जिला न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा और जिला न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध न्यायिक उपचारों का उपभोग करने से नहीं रोकेगी ।

अध्याय 8

प्रकीर्ण

35. ग्राम न्यायालयों को पुलिस की सहायता – (1) ग्राम न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर कार्यरत प्रत्येक पुलिस अधिकारी ग्राम न्यायालय की उसके विधिपूर्ण प्राधिकार के प्रयोग में सहायता करने के लिए आबद्ध होगा ।

(2) जब कभी ग्राम न्यायालय, अपने कृत्यों के निर्वहन में, किसी

राजस्व अधिकारी या पुलिस अधिकारी या सरकारी सेवक को ग्राम न्यायालय की सहायता करने का निदेश देगा तब वह ऐसी सहायता करने के लिए आबद्ध होगा ।

36. न्यायाधिकारियों और कर्मचारियों आदि का लोक सेवक होना – न्यायाधिकारियों और ग्राम न्यायालयों के अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों के बारे में, जब वे इस अधिनियम के किसी उपबंध के अनुसरण में कार्य कर रहे हैं या उनका कार्य करना तात्पर्यित है, यह समझा जाएगा कि वे भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ के भीतर लोक सेवक हैं ।

37. ग्राम न्यायालयों का निरीक्षण – उच्च न्यायालय, न्यायाधिकारी की पंक्ति से वरिष्ठ किसी न्यायिक अधिकारी को प्रत्येक छह मास में एक बार या ऐसी अन्य अवधि में, जो उच्च न्यायालय विहित करे, अपनी अधिकारिता के भीतर ग्राम न्यायालयों का निरीक्षण करने और ऐसे अनुदेश जारी करने के लिए, जो वह आवश्यक समझे, तथा उच्च न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा ।

38. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो उसे कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों :

परंतु इस धारा के अधीन कोई भी आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, उसके किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

39. उच्च न्यायालय की नियम बनाने की शक्ति – (1) उच्च न्यायालय, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम अधिसूचना द्वारा, बना सकेगा ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :-

(क) धारा 10 के अधीन ग्राम न्यायालय की मुद्रा का आकार

और विमाएं ;

(ख) धारा 24 की उपधारा (1) के अधीन वाद, दावा या कार्यवाही संस्थित किए जाने के लिए प्ररूप, रीति और फीस ;

(ग) धारा 24 की उपधारा (2) के अधीन विरोधी पक्षकार पर तामील की रीति ;

(घ) धारा 26 की उपधारा (1) के अधीन सुलह के लिए प्रक्रिया ;

(ङ) धारा 27 की उपधारा (1) के अधीन सुलहकारों की अर्हताएं और अनुभव ;

(च) धारा 37 के अधीन ग्राम न्यायालय के निरीक्षण के लिए अवधि ।

(3) उच्च न्यायालय द्वारा जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित की जाएगी ।

40. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) राज्य सरकार इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :-

(क) धारा 17 की उपधारा (2) के अधीन ग्राम न्यायालयों के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) धारा 27 की उपधारा (2) के अधीन सुलहकारों को संदेय बैठक फीस और अन्य भत्ते तथा उनके नियोजन के अन्य निबंधन और शर्तें ।

(3) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।

पहली अनुसूची

(धारा 12 और धारा 14 देखिए)

भाग 1**भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन अपराध, आदि**

(i) ऐसे अपराध जो मृत्युदंड, आजीवन कारावास या दो वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय नहीं है ;

(ii) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379, धारा 380 या धारा 381 के अधीन चोरी, जहां चुराई गई संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(iii) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 411 के अधीन, चुराई गई संपत्ति को प्राप्त करना या प्रतिधारित करना, जहां ऐसी संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(iv) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 414 के अधीन, चुराई गई संपत्ति को छुपाने या उसके व्ययन में सहायता करना, जहां ऐसी संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 454 और धारा 456 के अधीन अपराध ;

(vi) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 504 के अधीन शांति भंग कराने को प्रकोपित करने के आशय से अपमान और धारा 506 के अधीन ऐसी अवधि के, जो दो वर्ष तक की हो सकेगी, कारावास से या जुर्माने से या दोनों से दंडनीय आपराधिक अभिप्रास ;

(vii) पूर्वोक्त अपराधों में से किसी का दुष्प्रेरण ;

(viii) पूर्वोक्त अपराधों में से कोई अपराध करने का प्रयत्न, जब ऐसा प्रयत्न अपराध हो ।

भाग 2**अन्य केन्द्रीय अधिनियमों के अधीन अपराध और अनुतोष**

(i) ऐसे किसी कार्य द्वारा गठित कोई अपराध, जिसकी बाबत पशु अतिचार अधिनियम, 1871 (1871 का 1) की धारा 20 के अधीन परिवाद किया जा सकेगा ;

- (ii) मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) ;
- (iii) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (1948 का 11) ;
- (iv) सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 (1955 का 22) ;
- (v) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पत्नियों, बालकों और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश ;
- (vi) बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976 (1976 का 19) ;
- (vii) समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 (1976 का 25) ;
- (viii) घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) ।

भाग 3

राज्य अधिनियमों के अधीन अपराध और अनुतोष

(राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

दूसरी अनुसूची

(धारा 13 और धारा 14 देखिए)

भाग 1

ग्राम न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर सिविल प्रकृति के वाद

(i) सिविल विवाद :

- (क) संपत्ति क्रय करने का अधिकार ;
- (ख) सामान्य चरागाहों का उपयोग ;
- (ग) सिंचाई सरणियों से जल लेने का विनियमन और समय ;

(ii) संपत्ति विवाद :

- (क) ग्राम और फार्म हाउस (कब्जा) ;
- (ख) जलसरणियां ;
- (ग) कुएं या नलकूप से जल लेने का अधिकार ;

(iii) अन्य विवाद :

- (क) मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) के अधीन दावे ;
- (ख) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (1948 का 11) के अधीन दावे ;
- (ग) व्यापार संब्यवहार या साहूकारी से उद्भूत धन संबंधी वाद ;
- (घ) भूमि पर खेती में भागीदारी से उद्भूत विवाद ;
- (ङ) ग्राम पंचायतों के निवासियों द्वारा वन उपज के उपयोग के संबंध में विवाद ।

भाग 2

केन्द्रीय सरकार द्वारा धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित केन्द्रीय अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद

(केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

भाग 3

राज्य सरकार द्वारा धारा 14 की उपधारा (3) के अधीन अधिसूचित राज्य अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद

(राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)